इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

MSK 001
संस्कृत साहित्यशास्त्र एवं साहित्य

संस्कृत साहित्यशास्त्र एवं साहित्य

खंड 4

मेघदूत – महाकवि कालिदास

खंड 5

मृच्छकटिक – शूद्रक

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रो. रमेश कुमार पाण्डेय कुलपति, श्री लाल बहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।	
प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र भूतपूर्व कुलपति, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।	
प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी भूतपूर्व कुलपति, केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।	
प्रो. दीप्ति त्रिपाठी भूतपूर्व अध्यक्ष संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।	
प्रो. रमाकान्त पाण्डेय प्रोफेसर, केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।	
प्रो. सत्यकाम, हिन्दी संकाय, मानविकी विद्यापीठ इग्नू, नई दिल्ली।	

कार्यक्रम संयोजक	**पाठ्यक्रम सम्पादक**
प्रो. सत्यकाम, प्रोफेसर, हिन्दी संकाय, मानविकी विद्यापीठ इग्नू, नई दिल्ली	प्रो. रमाकान्त पाण्डेय प्रोफेसर, केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर परिसर, जयपुर।

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

पाठ लेखक	**इकाई संख्या**	**पाठ्यक्रम संयोजक** प्रो. सत्यकाम डॉ. अर्पिता त्रिपाठी **संपादन सहयोग** डॉ. अर्पिता त्रिपाठी परामर्शदाता संस्कृत, मानविकी विद्यापीठ इग्नू, मैदानगढ़ी।
डॉ. रंजन कुमार त्रिपाठी एसो. प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।	21,24,25,26	
डॉ. नन्दिनी रघुवंशी असि. प्रोफेसर, दयालबाग एजुकेशनल इंस्टिट्यूट, आगरा।	16	
प्रो. नीलाभ तिवारी प्रोफेसर, केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय,भोपाल परिसर,भोपाल।	17,18	
डॉ. नितिन जैन असि. प्रोफेसर, केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय,भोपाल परिसर,भोपाल।	19,20	
डॉ. अजय कुमार मिश्र असि. प्रोफेसर, केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय,भोपाल परिसर,भोपाल। **संशोधन –** डॉ. अर्पिता त्रिपाठी	22	

परामर्शदाता संस्कृत, मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, मैदानगढ़ी।		
डॉ. अर्पिता त्रिपाठी परामर्शदाता संस्कृत, मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, मैदानगढ़ी।	23	

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

MSK 001
संस्कृत साहित्यशास्त्र एवं साहित्य

खंड

4

मेघदूत – महाकवि कालिदास

इकाई 16

मेघदूत का वैशिष्ट्य

इकाई 17

पूर्वमेघ – श्लोक 1-29

इकाई 18

पूर्वमेघ – श्लोक 30-63

इकाई 19

उत्तरमेघ – श्लोक 1-24

इकाई 20

उत्तरमेघ – श्लोक 25-52

खण्ड 4 का परिचय

MSK-001 'संस्कृत साहित्यशास्त्र एवं साहित्य' पाठ्यक्रम का यह चतुर्थ खण्ड है। इस खण्ड में आप महाकवि कालिदास प्रणीत 'मेघदूतम्' नामक खण्डकाव्य का अध्ययन करेंगे। इस खण्ड में पाँच इकाइयाँ है। महाकवि कालिदास ने इस खण्डकाव्य में मेघ को दूत बनाया है जो रामगिरि पर्वत से यक्ष के सन्देश को यक्षिणी के पास अलकापुरी पहुँचाता है। इस खण्डकाव्य में महाकवि ने नदियों, पहाड़ों और मेघ के मार्ग में पड़ने वाले नगरों का सुन्दर वर्णन किया है।

मेघदूत खण्डकाव्य से सम्बन्धित इस खण्ड की 16वीं इकाई में आप महाकवि कालिदास एवं मेघदूत के वैशिष्ट्य का अध्ययन करेंगे। इसके साथ ही पूर्वमेघ एवं उत्तरमेघ के श्लोकों को अन्वय, शब्दार्थ प्रसंग, अनुवाद एवं व्याकरणात्मक टिप्पणियों के साथ इकाइयों में व्याख्यायित किया गया है जिसका अध्ययन आप इकाई सं. 17 पूर्वमेघ श्लोक 1-29 तक, इकाई सं. 18 पूर्वमेघ श्लोक 30-63 तक, इकाई सं. 19 उत्तरमेघ श्लोक सं. 1-24 तक, इकाई सं. 20 उत्तरमेघ श्लोक 25-52 में करेंगे।

आशा है कि पाठ्यक्रम का यह खण्ड आपके लिए मेघदूत खण्डकाव्य को जानने एवं समझने में उपयोगी होगा।

इकाई 16 मेघदूत का वैशिष्ट्य

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 महाकवि कालिदास (व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व)

16.3 मेघदूत का वैशिष्ट्य

16.3.1 मेघदूत का कथानक

16.3.2 मेघदूत में रस, छन्द, अलङ्कार एवं शैली

16.3.3 मेघदूत में प्रकृति-चित्रण

16.3.4 मेघदूत में नगरों का वर्णन

16.4 मेघदूत के पात्रों का चरित्र-चित्रण

16.4.1 यक्ष

16.4.2 यक्षिणी

16.4.3 मेघ

16.5 सारांश

16.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

16.7 अभ्यास प्रश्न

16.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- महाकवि कालिदास के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व से परिचित होंगे।
- मेघदूत की कथावस्तु से परिचित होंगे।
- मेघदूत के साहित्यिक तथा सामाजिक महत्त्व को समझ सकेंगे।
- मेघदूत के प्रमुख पात्रों की चारित्रिक विशिष्टताओं का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

16.1 प्रस्तावना

''वाल्मीकि व्यास तथा कालिदास प्राचीन भारतीय इतिहास की अन्तरात्मा के प्रतिनिधि हैं, और सब कुछ नष्ट हो जाने के बाद भी इनकी कृतियों में हमारी संस्कृति के प्राण तत्त्व सुरक्षित रहेंगे'' महर्षि अरविन्द का यह कथन महाकवि कालिदास के महत्त्व को समझने के लिए पर्याप्त है। महाकवि कालिदास अपनी कृतियों में सत्यम्-शिवम्-सुंदरम् का सामञ्जस्य स्थापित

करने वाले महान् कलाकार हैं। कवि कालिदास ने अपनी कृतियों में जितना सुन्दर वर्णन बाह्य जगत् का किया है उतना ही मार्मिक व जीवन्त वर्णन आन्तरिक जगत् का किया है। वे भाव और कला दोनों के प्रयोग में सिद्धहस्त हैं। यद्यपि कवि कालिदास की उत्तरवर्ती काव्यपरम्परा कला प्रधान होती गई, प्रायशः कवि बाह्य पक्ष को तो संवारते गए परन्तु अन्तःपक्ष पर उनका उतना अधिकार नहीं दिखता जितना कि महाकवि कालिदास का।

अतः वर्तमान समय में साहित्य की इस परम्परा को पूर्ववत् गरिमामय तथा अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए महाकवि कालिदास जैसे प्राचीन कवियों की कृतियों का सिंहावलोकन अनिवार्य हो जाता है। इसी परम्परा में हम प्रस्तुत इकाई में महाकवि कालिदासकृत मेघदूत नामक काव्य का वैशिष्ट्य जानने का प्रयास करेंगे।

16.2 महाकवि कालिदास (व्यक्तित्व एवं कृतित्व)

सरस्वती के वरदपुत्र कविकुलकमलदिवाकर महाकवि कालिदास की रचनाएं काव्य तथा नाटक के रूप में सतत भारतीय साहित्य को आध्यात्मिक बल प्रदान करती रहती हैं। यही कारण है कि इनकी प्रसिद्धि विश्व के समस्त देशों में महाकवि के रूप में है। विविध देशों के विद्वानों ने इनकी रचनाओं का अपनी भाषाओं में रूपान्तरित करके इनका सादर प्रचार एवं प्रसार किया है। ऐसा स्नेह अन्य किसी कवि की रचना को प्राप्त नहीं हुआ। लाक्षणिक आचार्यों ने काव्य के जिन-जिन लक्षणों का उल्लेख अपने लक्षण-ग्रन्थों में किया है उन सबका समानरूपेण अस्तित्व कालिदास के कृतियों में निहित है।

जन्मस्थान – यशस्वी व्यक्ति से अपना सम्बन्ध जोड़ने की लालसा सबके हृदय में रहती है, यही स्थिति कालिदास की जन्मभूमि-निर्णय के सम्बन्ध में भारतीय विद्वानों की रही है। रघुवंश इनका सुप्रसिद्ध महाकाव्य है। इसमें वर्णित रघु की दिग्विजय यात्रा विद्वानों को इनकी जन्मभूमि विवेचन के लिए प्रेरित करती है। उक्त यात्रा प्रसंग में इन्होंने जिन-जिन स्थलों का सूक्ष्म परिचय प्रस्तुत किया है, विद्वानों की दृष्टि वहाँ-वहाँ टिक जाती है परन्तु यह सम्भव नहीं है कि एक व्यक्ति इतने स्थानों का मूलनिवासी हो। इस प्रसंग में प्रमुख रूप से बंगाल और कश्मीर के नाम लिए जाते हैं। इसके बाद मेघदूत जो (खण्डकाव्य) के रूप में रचित इनकी कृति है, उसमें कवि ने मेघ को अपनी विरहिणी पत्नी के नाम सन्देश प्रेषित करने के सन्दर्भ में उज्जयिनी का जो वर्णन प्रस्तुत किया है, उसको पढ़कर कालिदास के परिपुष्ट

भौगोलिक ज्ञान तथा उज्जयिनी नगरी के प्रति उनका नैसर्गिक स्नेह सुतरां अभिव्यक्त होता है। इसमें सर्वाधिक विवेचनीय स्थल वह है, जहाँ यक्ष मेघ से कहता है– रास्ता तिर्यग् होने पर भी उज्जयिनी को अवश्य देखना। यदि तुम उसको ना देख पाए तो तुमको आँखों का फल नहीं प्राप्त होगा। अधिकांश विद्वानों का मानना है कि ये उज्जैन के निवासी थे परन्तु मेघदूत में आए हुए 'क्रौञ्चरन्ध्र' के वर्णन को देख गढ़वाल देश के निवासी विद्वान् कालिदास को 'अस्तयुत्तरस्यां दिशि' में ले जाते हैं, क्योंकि वहाँ 'क्रौञ्चरन्ध्र' नाम से एक प्रसिद्ध स्थान है।

कालिदास परम शिवभक्त थे। रघुवंश का मंगलाचरणपद्य, कुमारसम्भव का शिवराजधानीवर्णन, अभिज्ञानशाकुन्तलम् का अष्टप्रकृतिशिवस्वरूप-चित्रण एवं भरतवाक्य, विक्रमोर्वशीयम् का

मंगलाचरणपद्य और मालविकाग्निमित्रम् का मंगलाचरण पद्य यह इनकी नैष्ठिक शिवभक्ति को प्रकट करते हैं। इसके अतिरिक्त रघुवंशमहाकाव्य में इन्होंने उस राम की चर्चा की है जिन्होंने स्वयं विष्णु का अवतार होते हुए भी श्री रामेश्वरम् की स्थापना के बहाने अपने को शिवभक्त प्रसिद्ध किया।

कालिदास का काल – देश-काल आदि सम्बन्धी परिचय देने के अभाव की परम्परा में भी कालिदास अग्रगण्य हैं। अतः उनका स्थान एवं कालनिर्धारण एक दुरूह कृत्य है। यह प्रसिद्धि रही है कि महाकवि कालिदास श्रीविक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में अन्यतम थे। कुछ विद्वान चन्द्रगुप्त द्वितीय को कालिदास का आश्रयदाता मानते हैं। प्रो. लक्ष्मीधर कल्ला मेघदूत में आए उत्तरदिशा के स्थानों के वर्णनपाटव तथा सटीक भौगोलिक वर्णन के कारण इनको कश्मीर का निवासी मानते हैं। तृतीय मतानुसार कालिदास को मगधनिवासी माना गया है, जिसका आधार रघुवंशस्थ मगध के प्रति इनके द्वारा अत्यादर को स्पष्ट करना है परन्तु यह मत उतना विश्वासभाजक नहीं है। कतिपय विद्वान् 'कालिदास' इस नाम के कारण इनको बंगाल का निवासी मानते हैं परन्तु कवि ने रघु-दिग्विजय में बंगाल की पराजय का वर्णन जिस निर्ममता से किया है उससे स्पष्ट होता है कि बंगाल उनकी जन्मभूमि नहीं है, क्योंकि मातृभूमि के प्रति स्वाभाविक प्रेम अगाध होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि महाकवि कालिदास के जन्म स्थान के सम्बन्ध में प्रायः प्रामाणिक तथ्यों का अभाव है परन्तु जिस प्रकार विविध विद्वानों के द्वारा विभिन्नि प्रदेशों से उनका सम्बन्ध जोड़ा गया उससे यह स्पष्ट होता है कि महाकवि कालिदास समस्त भारत के आदरणीय तथा स्पृहणीय कवि हैं। वे भारत में जहाँ भी उत्पन्न हुए, वे भारत के अपूर्व गौरव हैं।

महाकवि कालिदास ने कितने ग्रन्थों की रचना की, यह ठीक-ठीक रूप से कहना असम्भव है। इनके नाम से इतिहासकारों ने अनेक रचनाओं का निराधार उल्लेख किया है तथा उनके सम्बन्ध में कहीं कोई प्रमाण नहीं प्राप्त होता है। हाँ कुछ कृतियाँ ऐसी हैं जिनकी रचना उस महाकवि की ओजस्विनी लेखनी के अतिरिक्त दूसरे की लेखनी में सर्वथा असमर्थ समझी जाती है। वे रचनाएं निम्नलिखित हैं –

कुमारसम्भवम्, मेघदूतम्, रघुवंशमहाकाव्यम्, मालविकाग्निमित्रम्, विक्रमोर्वशीयम् तथा अभिज्ञानशाकुन्तलम्।

ऋतुसंहारम् – यह कालिदास की प्रथम काव्यकृति मानी जाती है किन्तु इसके ऋतुसम्बन्धी क्रम के सन्दर्भ में सबका एक मत नहीं है। इसमें कवि ने ग्रीष्म से आरम्भ कर छः ऋतुओं का मनोरम वर्णन किया है। अतः ऋतुसंहार कालिदास की कृति है इसके समर्थन में विद्वान् जो प्रमाण उपस्थित करते हैं, वह है ग्रीष्म ऋतु के संध्या काल का वर्णन। इसी को उन्होंने अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक के प्रथम अंक में भी दोहराया है।

कुमारसम्भवम् – यह कालिदास की रचना है इसमें किसी का मतभेद नहीं है। इसमें कवि ने कुमार कार्तिकेय की उत्पत्ति का संकल्प लिया है। यह प्रथम सर्ग से लेकर अष्टम सर्ग तक की कालिदास की कृति है उसके आगे नहीं। जो कवि प्रथम सर्ग में हिमालय की

गुणवत्ता का वर्णन करते नहीं थकता जो तृतीय सर्ग में शिव जी की समाधि का कितना ओजस्वी वर्णन कर सकता है वह इसके 17वें सर्ग तक अपनी विशिष्ट प्रतिभा का परिचय ना दे, यह कालिदास जैसे विद्वान् के लिए अनहोनी सी बात है। अतः इन सर्गों को विद्वान् अन्य कवि की रचना के रूप में प्रक्षेप मात्र स्वीकार करते हैं।

मेघदूतम् – यह कालिदास की मौलिक प्रतिभा का अनुपम निदर्शन है। इसमें विरहविधुरा नवपरिणीता अपनी प्रिया के पास अभिशप्त यक्ष मेघ द्वारा सन्देश प्रेषित कर रहा है। यह महाकवि की अनूठी प्रज्ञा का परिणाम है। कालिदास की रचनाओं के सुप्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ ने लिखा है कि कालिदास की इस कल्पना का आधार रामायण का हनुमत् अथवा महाभारत का हंस रहा हो। इसमें पति पत्नी का विप्रलम्भ-शृंगार पूर्ण रूप से स्पष्ट एवं सफल हुआ है। कथानक के सौन्दर्य के साथ ही साथ उज्जयिनी जाने के मार्ग का सही भौगोलिक चित्रण, महाकाल का पूजन तथा श्रीविशाला उज्जैन की समृद्धि का वर्णन इसके मुख्य आकर्षण हैं। यह दूतकाव्य पूर्वमेघ एवं उत्तरमेघ दो भागों में विभक्त है।

रघुवंशम् – 19 सर्गों में विभक्त यह महाकाव्य कालिदास की उत्कृष्ट रचना है। परवर्ती कवियों के लिए यह आदर्शकाव्य है। वास्तव में यहाँ कवि का उद्देश्य काव्य वर्णन रहा है ना कि वंशावली वर्णन। इसमें रघुवंशियों की वंशावली वाल्मीकि रामायण के वास्तविक क्रम से विपरीत चित्रित है। इसमें रघुवंशियों के उदात्त चरित्रों (गोपालन, प्रजावत्सलता, दानशीलता आदि) का लोकोत्तर वर्णन किया गया है। सबसे महान् संदेश है– राजा अथवा शासक वही योग्य है जो प्रजा के हृदय को जीत सके।

मालविकाग्निमित्रम् – इस नाटक में राजा अग्निमित्र तथा मालविका के परस्पर प्रेम का उत्तम चित्रण किया गया है। कवि ने राजा के अन्तःपुर में होने वाले प्रेम-ईर्ष्या-कामुकता-कामक्रीडा आदि विषयों का श्रेष्ठ वर्णन किया है। यह नाटक 5 अंको में विभक्त है।

विक्रमोर्वशीयम् – यह 5 अंकों का त्रोटक है। इसमें कालिदास ने एक वैदिक प्रेमाख्यान (जो ऋग्वेद 10/15 तथा शतपथ ब्राह्मण 11/01 में निर्देशित है) को पुरुरवा तथा उर्वशी की प्रणयपूर्ण कथा के रूप में परिवर्तित किया है। पुरुरवा परोपकारी राजा हैं उन्होंने राक्षस से उर्वशी की रक्षा की। उर्वशी पुरुरवा की रानी बन जाती है। बाद में पुरुरवा उर्वशी के विरह में पागल हो जाता है। यही प्रणयोन्माद कवि का मूल वर्ण्य विषय रहा है।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् – यह 7 अंकों में विस्तृत कालिदास की यशस्वी कृति है। जिसकी रमणीयता से आकृष्ट हो विदेशी विद्वान् भी इसकी प्रशंसा करते हुए तृप्त नहीं होते। इसके अनुवाद प्रायः संसार की सभी भाषाओं में हो चुके हैं। इससे अधिक इसकी लोकप्रियता का दूसरा उदाहरण नहीं दिया जा सकता। जर्मन कवि गेटे का कथन है कि यदि तीनों लोकों का ऐश्वर्य एक स्थान पर प्राप्त करने की इच्छा हो तो इस नाटक का अध्ययन एवं मनन करना चाहिए। कामुक दुष्यन्त की लाज रखने तथा उनके चरित्र को उदात्त दिखलाने के अभिप्राय से ही महाकवि ने दुर्वासा के शाप की कृत्रिम कल्पना की है। अभिज्ञान=परिचय के लिए अर्थात् यदि मैं तुम्हें भूल जाऊँ तो मुझे अपनी अंगूठी देखकर सारी बातें याद आ जाएंगी इति।दी गई अंगूठी का सम्बन्ध शकुन्तला से होने के कारण इस नाटक का नाम अभिज्ञानशाकुन्तलम् रखा गया।

16.3 मेघदूत का वैशिष्ट्य

16.3.1 मेघदूत का कथानक

संस्कृत साहित्य में गीतिकाव्य का स्थान प्रमुख है। संस्कृत साहित्य के महान् कवि कालिदास की परिपक्वकला, कल्पना की ऊँची उड़ान, परिष्कृत माधुरी से युक्त शैली, विषय की धारावाहिक गति एवं गीति की एकतानता इनके अद्भुत प्रमाण हैं। मेघदूत मन्दाक्रान्ता छन्द में निबद्ध लघु काव्य है। मेघदूत कुबेर के शाप से प्रिया से पृथक् हुए यक्ष के व्यथित हृदय की वेदना भरी कहानी है। साथ ही हृदय को द्रवित कर देने वाली विप्रलम्भ श्रृंगार से युक्त यह करुणगीतिका दो भागों में विभक्त की गई है, पूर्वमेघ तथा उत्तरमेघ। पूर्वमेघ में श्लोकों की संख्या 63 तथा उत्तरमेघ में 52 है। इस प्रकार कुल 115 श्लोक हैं तथा इनसे अतिरिक्त 5 अन्य प्रक्षिप्त श्लोक भी हैं।

पूर्वमेघ – प्रिया के प्रति अत्यधिक अन्धप्रेम होने के कारण अपने स्वामी यक्षेश्वर कुबेर द्वारा शाप के रूप में वर्ष भर के लिए कर्तव्य से प्रमाद करने के कारण यक्ष को अलकापुरी से निष्कासित किया जाता है। यक्ष अपने स्वामी कुबेर की आज्ञा से विन्ध्याचल में रामगिरि पर्वत पर रहने लगता है, आषाढ़ मास के आरम्भ में ही उसे रामगिरि पर्वत की चोटी पर उमड़ा हुआ बादल दिखाई देता है। तभी सहसा ही यक्ष का हृदय करुणा से द्रवित होता है क्योंकि मेघ के दिखाई देने पर सुखी मानव का भी हृदय द्रवित हो जाता है फिर उस प्रेमी यक्ष विरही का तो कहना ही क्या जो प्रिया के आलिङ्गन के लिए अत्यधिक उत्सुक है। यक्ष अपनी प्रिया यक्षिणी, जो वियोग के दिन के खत्म होने की आशा में लगी हुई है उसके पास मेघ द्वारा अपने कुशल होने का समाचार देने के लिए प्रार्थना करता है और याचना करते हुए कहता है कि हे भाई! सन्तप्तों के तुम ही एकमात्र सहारा हो। तुम उत्तर दिशा की ओर जाकर अलकापुरी में मेरी प्रिया तक मेरे कुशल होने का सन्देश पहुंचाने की कृपा करो।

यक्ष मेघ से कहता है कि देखो इतनी मन्द-मन्द पवन चल रही है, चातक पक्षी बोल रहा है, बगुलों की पंक्तियाँ आकाश में उड़ रही हैं और साथ ही बाँबी से इन्द्रधनुष स्पष्ट दिखाई दे रहा है। ये सभी शुभ संकेत के सूचक हैं। मैं सन्देश बताने से पहले बताना चाहता हूँ कि ग्रामीण भोली-भाली युवतियों द्वारा आनन्द से युक्त आँखों से पिए जाते हुए तुम माल देश को पार करके आम्रकूट पर्वत पर पहुँचना। वहाँ से कुछ दूरी पर विन्ध्याचल की उन्नतावनत तलहटी में विभिन्न धारा बनाकर बहती हुई रेवा नदी मिलेगी। वहाँ से तुम दशार्ण देश को जाना वहाँ पर जामुन के वन पके हुए फलों से काले बने होंगे। उसकी राजधानी में प्रवेश करके तुम प्रिया के भ्रूभंगयुक्त मुख की तरह चंचल तरंगों वाली वेत्रवती का जल पीना और 'नीचै'नाम वाले पर्वत पर अत्यधिक थकने के कारण विश्राम करना। वहाँ से कुछ विश्राम करके उज्जयिनी का मार्ग अत्यधिक टेढ़ा होने पर भी वहाँ जाना मत भूलना क्योंकि उज्जयिनी अत्यधिक सौन्दर्य से युक्त होने के कारण ऐसी प्रतीत होती है जैसे मानो वह स्वर्ग की एक टुकड़ी (नगरी) भूभाग पर प्रतिष्ठित हो गई हो। अन्यथा यहाँ की अटरियों में रहने वाली स्त्रियों से तुम्हारी आँखें वञ्चित ही रह जाएँगी। साथ ही निर्विन्ध्या को पार करके तुम अवन्तिदेश में प्रविष्ट होना। वही उज्जयिनी जाने का मार्ग है। उज्जैन के बाजार में उपस्थित हीरे पन्ने को देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो समुद्र में जल के अतिरिक्त कुछ शेष ही न

रहा हो। समीप में ही महाकाल शिव का मन्दिर है। वहाँ शिव जी की सायंकालीन पूजा के समय बज रहे नगाड़ों को अपनी दृष्टि से स्वयं देखना। वह क्षण उज्जयिनी में बिताकर प्रातःकाल होते ही गम्भीरा नदी को पार करके देवगिरी को पहुँचना। वहाँ पहुँचकर पुष्पमेघ बनकर इस पर्वत के स्कन्धों पर मेघों की वर्षा करना।

इसके पश्चात् चर्मण्वती नदी पर पहुँचना। उसी के समीप सुन्दर स्त्रियों से युक्त दशपुर को जाना। वहाँ से कुछ आगे ही अर्जुन ने क्षत्रियों पर जहाँ बाण बरसाए थे उस कुरुक्षेत्र को प्राप्त करोगे। हे मेघ! तुम वहाँ सरस्वती के जल को प्राप्त करोगे। वहीं पर कनखल है, जहाँ परम पावनी गंगा मैदान में बहने के लिए हिमालय से उतरती हैं। वहाँ देवदारु वृक्षों के घने वन मिलते हैं। कहीं कस्तूरीमृग की सुगन्ध शोभायमान हो रही है तो कहीं शरभ तुम्हारी गर्जना सुनकर तुम्हारे साथ के लिए आकाश में उछलते हुए प्रतीत हो रहे हैं। कहीं मीठे स्वर गाती हुई किन्नरियाँ तथा कहीं मायूसी भरे हुए बाँस अपनी बाँसुरी बजा रहे होंगे। उस समय तुम्हारी गर्जना मृदंग के समान प्रतीत होगी। फिर वहाँ से कुछ उत्तर दिशा में क्रौंचरन्ध्र से युक्त तुम कैलाश पहुँच जाओगे, जो शिवजी का निवास स्थान है। उस पर्वत की गोद में उपस्थित अलकापुरी को ऊँचे-ऊँचे प्रसाद से युक्त होने के कारण तुम सहसा ही पहचान लोगे।

उत्तरमेघ – यक्ष मेघ को उत्तर दिशा में उपस्थित ऊँचे-ऊँचे प्रसादों से युक्त अलकापुरी की भव्यता को बताता है। अलकापुरी के फर्श मणियों, दीवारें विभिन्न प्रकार के चित्रों से सज्जित तथा रत्नों से युक्त हैं। अलकापुरी नगरी के वृक्षों पर 12 महीने फल लगे रहते हैं, जहाँ प्रत्येक साँझ नित्यप्रति चाँदनी से उज्जवल रहती है। जहाँ आनन्द के कारण आँसू, काम के कारण ताप, प्रेम के कारण कलह होती है। जहाँ सभी प्राणी यौवन अवस्था को प्राप्त किए हुए हैं। गृहों में सब प्रकार की विभूतियाँ एवं सामग्रियाँ प्राप्त होती हैं। वहाँ सर्वत्र प्रेम और आनन्द का साम्राज्य है।

अलकापुरी में कुबेर के भवन से उत्तर की ओर मेरा घर है। जिसमें विविध रत्न-जटित बहिर्द्वार तुम्हें दूर से ही इन्द्रधनुष सा चमकता हुआ प्रतीत होगा। उसके अन्दर ही मेरी प्रिय द्वारा पाले गए मन्दार वृक्ष हैं। समीप में ही एक बावड़ी है, जिसकी सीढ़ियाँ मरकत मणियों से निर्मित हैं। जिसके किनारे पर तुम्हारे समान ही क्रीडा-पर्वत है। उद्यान में एक रक्त अशोक और एक बकुल वृक्ष है। समस्त चिह्न एवं द्वार पर चित्रित शंख और पद्म से मेरी अनुपस्थिति के कारण चुने हुए मेरे घर को तुम सहसा ही पहचान लोगे। घर में ही तुम्हें ब्रह्मा की आदि-सृष्टि के समान एक सुन्दरी दिखलाई देगी। जो दुर्बल शरीर, पतली कमर और जिसकी आँखें डरी हुई हिरनी की तरह चंचल प्रतीत होगी, किन्तु चाल नितम्बभार के कारण अलसाई हुई सी प्रतीत होगी। उसे ही तुम मेरी पत्नी मानना। वह उस ग्रह के अन्दर चक्रवाकी के समान अकेली निवास कर रही है क्योंकि उसका सहचर मैं दूर यहाँ रामगिरी आश्रम में उपस्थित हूँ। मेरे वियोग के दुख में वह तुषार-पात से मारी हुई पद्मिनी की तरह प्रतीत हो रही होगी।

उसे तुम कभी चित्र बनाने से विफल, गोद में वीणा रखकर गीतिका द्वारा व्यर्थ मनोविनोद, कभी मैना से बात करती हुई 'ओ मीठा बोलने वाली क्या तुझे कभी अपने स्वामी की याद

आती है, तू उनके लिए बहुत ही प्यारी थी', कभी वह वियोग के शेष महीनों को देहली पर रखे हुए पुष्पों से गिनती हुई प्रतीत होगी। मेघ! तुम मेरी वियोगिनी पत्नी यक्षिणी को मेरे मित्र होने के विषय में बताते हुए सन्देश कहना– 'प्रिय! मैं प्रियंगु लताओं में तुम्हारे शरीर की, भयभीत हुई मृगियों की दृष्टि में तुम्हारे चितवन की, चन्द्रमा में तुम्हारे मुख सौन्दर्य की, मयूरों की पूछों में तुम्हारे केश-पाश की और नदियों की लहरों में तुम्हारे विलास की कल्पना करता रहता हूँ परन्तु दुःख की बात यह है कि उनमें से किसी में भी तुम्हारे अंगों की क्षमता प्राप्त नहीं होती। एक वियोगिनी जिस प्रकार हृदय में कितनी आशाएं रखे रहती है वैसे ही मैं भी तो अकेला इन वियोग की घड़ियों को किसी तरह काट रहा हूँ। हे यक्षिणी! निराश नहीं होना क्योंकि दुःख और सुख निरन्तर लगे रहते हैं भाग्य का चक्र कभी ऊपर चला जाता है तो कभी नीचे चला जाता है। मेरे शाप के भी चार महीने ही शेष रह गए हैं। शरद् की चाँदनी रातों में वियोग के कारण बढ़ी हुई इच्छाएं सहसा ही पूर्ण होंगी।

अपना सन्देश देकर अन्त में यक्ष मेघ से बोला 'भाई यह मेरा सन्देश चाहे मित्रता के नाते बोलो चाहे मुझे दुःखी के प्रति दया के नाते बोलो' इस तरह मेघ से निवेदन करते हैं।

16.3.2 मेघदूत में रस, छन्द, अलंकार एवं शैली

रस – रस काव्य का आत्मभूत तत्त्व है। रसयुक्त पद ही सहृदय के चित्त को आह्लादित करता है। महाकवि कालिदास प्रायः सभी रसों के प्रयोग में सिद्धहस्त थे। मेघदूत गीतिकाव्य का प्रधान रस विप्रलम्भ शृंगार है क्योंकि इसमें विरह व्याकुल यक्ष-यक्षिणी की काम दशाओं का सजीव चित्रण किया गया है। विप्रलम्भ शृंगार रस के वर्णन में भी महाकवि कालिदास पूर्ण पटु हैं। यथा–

नूनं तस्याः प्रबलरुदितोच्छूननेत्रं प्रियाया

निःश्वासानामशिशिरतया भिन्नवर्णाधरोष्ठम्।

हस्तन्यस्तं मुखमसकलव्यक्ति लम्बालकत्वा–

दिन्दोर्दैन्यं त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेर्बिभर्ति।।(उ.मे.21)

अर्थात् अधिक रोने के कारण सूजे हुए नयनों वाला, लम्बी-लम्बी साँसों की गर्मी के कारण कान्तिहीन निचले होंठ वाला, हाथ पर रखा हुआ तथा लटकते हुए केशों के कारण पुराना दिखने वाला उस मेरी प्रिया का मुख तुम्हारे द्वारा ढंके जाने के कारण क्षीण कान्ति वाले चन्द्रमा की विवर्णता को निश्चित रूप से धारण कर रहा होगा। प्रकृत श्लोक में विरह की अवस्थाओं का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया गया है।

आलोके ते निपतति पुरा सा बलिव्याकुला वा

मत्सादृश्यं विरहतनु वा भावगम्यं लिखन्ती।

पृच्छन्ती वा मधुरवचनां सारिकां पञ्जरस्थां

कच्चिद्भर्तुः स्मरसि? रसिके! त्वं हि तस्य प्रियेति।।(उ.मे.22)

अर्थात् विरह से व्याकुल मेरी यक्षिणी या तो मेरी पूजा में व्यस्त होगी अथवा अर्धचेतन वह मूक सारिका से वार्तालाप कर रही होगी। इस प्रकार प्रेषितभर्ता की याद में यक्षिणी की कामावस्थाओं का विप्रलम्भ शृंगार में श्रेष्ठतम निदर्शन है। इस प्रकार प्रायः सम्पूर्ण काव्य में विप्रलम्भ शृंगार की मनोरम छटा द्रष्टव्य है।

छन्द – काव्य में रस सिद्धि के लिए सुन्दर शब्दार्थ योजना ही पर्याप्त नहीं है, अपितु छन्द योजना भी अत्यन्त आवश्यक है। महाकवि ने वस्तु एवं रस के अनुकूल ही छन्दों का प्रयोग कर अपनी छन्द योजना शक्ति का परिचय दिया है। मेघदूत में सर्वत्र मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग किया गया है। इसका लक्षण है– ''**मन्दाक्रान्ताऽम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम्''।** छन्द योजना का अर्थ के उत्कर्ष में विशिष्ट स्थान है। मन्दाक्रान्ता छन्द अपनी गेयात्मकता के लिए प्रसिद्ध है, अतः इस छन्द का प्रयोग शृंगार रस के वर्णन में अधिक प्रभावोत्पादक होता है इसीलिए महाकवि कालिदास ने सम्पूर्ण मेघदूत में मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग किया है। निदर्शनार्थ यथा–

कश्चित् कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्तः

शापेनास्तङ्गमितमहिमा वर्षभोग्येण भर्त्तुः।

यक्षश्चक्रे जनकतनया स्नानपुण्योदकेषु

स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु।।(पू.मे.01)

प्रस्तुत श्लोक में क्रमशः मगण, भगण, नगण, तगण, तगण तथा दो गुरु वर्ण हैं, साथ ही 4, 6, 7वें अक्षर पर यति अर्थात् विराम है। इस प्रकार उक्त श्लोक में मन्दाक्रान्ता छन्द का लक्षण पूर्णतः घटित होता है। मानव के अन्तः मानस भावों का सम्बन्ध आत्मा से होता है यह मनोविकार में प्रयुक्त शब्दों की स्वर लहरी में चलायमान होते हैं और यही ईश्वर लहरी छन्द की आत्मा है। कवि की कुशल काव्य कला का परिचय इनके छन्दों में देखने को मिलता है और महाकवि कालिदास इस कला के निपुणतम कवि हैं।

अलङ्कार – 'अलङ्कुर्वन्तीति अलङ्काराः' काव्य के उत्कर्षाधायक तत्त्व अलङ्कार कहलाते हैं। महाकवि कालिदास ने अपने ग्रन्थ मेघदूत में यथाप्रसंग विविध अलङ्कारों का प्रयोग कर अपने विशिष्ट नैपुण्य का परिचय दिया है। उन्होंने उपमा, अर्थान्तरन्यास, उत्प्रेक्षा, अप्रस्तुतप्रशंसा एवं स्वाभावोक्ति, रूपक, विशेषोक्ति आदि का अधिक प्रयोग किया है। यत्र-तत्र काव्यलिंग, समासोक्ति, दृष्टान्त, अनुमान, अतिशयोक्ति आदि अलंकार भी प्रयोग हुए हैं। कवि को अनुप्रास के साथ ही उपमा तथा अर्थातरन्यास के प्रयोग में सर्वाधिक सफलता प्राप्त हुई है इसलिए कालिदास को उपमा सम्राट स्वीकार करते हैं, **''उपमा कालिदासस्य''**। कवि कालिदास ने अपने साहित्य में सभी अलंकारों का प्रयोग किया है। कुछ विशिष्ट उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

स्थित्वा तस्मिन्वनचरवधूभुक्तकुञ्जे मुहूर्तं

तोयोत्सर्गद्रुततरगतिस्तत्परं वर्त्म तीर्णः।

रेवां द्रक्षस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णां

भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमङ्गे गजस्य।।(पू.मे.19)

प्रकृत श्लोक में विन्ध्य पर्वत की ऊबड़-खाबड़ तलहटी में बिखरी नर्मदा नदी हाथी के शरीर पर बनी रेखाओं की चित्रकारी के समान बतायी गयी है। इस आधार पर यहाँ उपमा अलङ्कार की छटा देखते ही बनती है–

नीचैराख्यं गिरिमधिवसेस्तत्र विश्रामहेतो–

स्त्वत्सम्पर्कात् पुलकितमिव प्रौढपुष्पैः कदम्बैः।

यः पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिर्नागराणा–

मुद्दामानि प्रथयति शिलावेश्मभिर्यौवनानि।।(पू.मे.25)

प्रस्तुत श्लोक में पुलकितमिव इस क्रियापद के साथ इव का प्रयोग करके सम्भावना व्यक्त की गयी है जिससे यहाँ उत्प्रेक्षा अलङ्कार स्पष्ट है–

तस्मिन्काले नयनसलिलं योषितां खण्डितानां

शान्तिं नेयं प्रणयिभिरतो वर्त्म भानोस्त्यजाशु।

प्रालेयास्त्रं कमलवदनात्सोऽपि हर्तुं नलिन्याः

प्रत्यावृत्तस्त्वयि कररुधि स्यादनल्पाभ्यसूयः।।(पू.मे.39)

उज्जयिनी में उस समय अर्थात् सूर्योदय के समय प्रिय पतियों को अपनी खण्डता नायिकाओं को शान्ति प्रदान करना होता है। इस कारण तुम सूर्य के मार्ग को छोड़ देना, सूर्य को मत रोकना। वह सूर्य कमलिनी के मुख से आँसू पोंछने के लिए आया हुआ है। तुम यदि उस सूर्य के किरण रूपी हाथों को रोक लोगे तो वह तुम्हारे प्रति क्रोधित हो जाएगा। इस श्लोक का पूर्वार्ध है– सूर्य का मार्ग ना रोकना। उसका कारण श्लोक के उत्तरार्ध में बताया गया है इस आधार पर यहाँ पर काव्यलिंग अलंकार होता है। सूर्य पर नायक तथा कमलिनी पर नायिका का आरोप होने के कारण समासोक्ति अलंकार है। करोरुधि शब्द के कर का अर्थ हाथ और किरण दोनों होने से यहाँ पर श्लेष अलंकार भी है। इस प्रकार मेघदूत में सर्वत्र विविध अलंकारों का सुष्ठु प्रयोग दृष्टिगोचर होता है, जो कवि के प्रौढ अलंकारात्मक ज्ञान का परिचायक तथा काव्य के उत्कर्ष को सर्वथा बढाने वाला है।

शैली – महाकवि कालिदास की शैली संस्कृत साहित्य में अपना विशेष स्थान रखती है। इस प्रतिष्ठा का श्रेय उनकी शैली को मिलता है। कितना भी नीरस कथानक क्यों ना हो कवि उसे अपने अनुकूल कल्पनाप्रसूत अथवा सृष्टि नैपुण्य से अत्यधिक चमत्कृत कर देते हैं। इन्होंने अपने काव्य में इतिहास से संग्रहित कथानक लिए और उन्हें अपनी काव्यकला से सजीव बनाकर सदा के लिए अमर कर दिया। कालिदास ने मेघदूत में वैदर्भी शैली का प्रयोग किया है। आचार्य दण्डी ने 'तेनेदं वर्त्म वैदर्भं कालिदासेन शोधितम्' ऐसा कहकर वैदर्भी रीति के प्रति कालिदास के प्रयोग-बाहुल्य तथा प्रेम को दर्शाया है। साहित्यदर्पण के अनुसार वैदर्भी रीति का लक्षण इस प्रकार है –

माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णै रचना ललितात्मिका।

अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते।।(सा.द.)

अर्थात् ऐसी ललित रचना जिसमें माधुर्य व्यञ्जक वर्ण रहें और वृत्ति ना हो अथवा हो तो अति लघु हो। मेघदूत की भाषा ललित, स्वाभाविक तथा अत्यन्त सरल है, जो कानों को सुनने में अत्यन्त मनोहर लगती है तथा अर्थ का बोध कराती है। कालिदास की सभी रचनाओं में ललित परिष्कृत प्रसाद गुण पूर्ण शैली ही अधिक प्राप्त होती है। वे शब्दों की व्यंजना शक्ति पर अधिक बल देते हैं तथा अभिधा शक्ति का कम प्रयोग करते हैं इस कारण इनके भाव सदैव व्यंग्य ही रहते हैं।

16.3.3 मेघदूत में प्रकृति-चित्रण

महाकवि कालिदास के ग्रन्थों में प्रकृति-चित्रण के वैविध्य को देखकर प्रकृति के प्रति उनके अगाध प्रेम तथा सौन्दर्यानुभूति का ज्ञान होता है। वे प्रकृति के पुजारी थे। कालिदास ने प्रमुख रूप से प्रकृति के भव्य मनोरम रूप एवं सौन्दर्य का उद्घाटन किया है। मानव और प्रकृति दोनों का ही मञ्जुल सम्बन्ध तथा अद्भुत एकरसता का प्रदर्शन करके महाकवि ने प्रकृति के अन्दर स्फुरित होने वाले हृदय की पहचान की है। इस प्रकार कालिदास ने प्राकृतिक-चित्रण में प्रकृति को सजीव बना दिया है इसलिए कालिदास को प्रकृति का सुकुमार कवि कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। वे प्रकृति के बाह्यरूप का जितना विवेचन करते हैं अन्तःप्रकृति के भी उतने ही पारखी हैं। वे अनुभवजन्य ज्ञान के आधार पर प्राकृतिक दृश्यों का सफल चित्रण करते हैं। उनका प्रकृति वर्णन वैज्ञानिक होने के साथ-साथ प्रतिभा मण्डित है। उनके काव्य में सर्वत्र प्रकृति के रमणीय चित्र उपस्थित होते हैं।

महाकवि कालिदास ने मेघदूत में प्रकृति के मनोरम सौन्दर्य का अद्भुत चित्रण किया है। मेघदूत में हिमालय के परिसर का अत्यन्त सुन्दर वर्णन मिलता है। यहाँ गंगा स्वर्ग की सीढ़ी के समान ऊपर उठा देने वाली है–

तस्माद् गच्छेरनुकनखलं शैलराजावतीर्णां

जह्नोः कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपानपंक्तिम्।

गौरीवक्त्रभ्रकुटिरचनां या विहस्येव फेनैः

शम्भोः केशग्रहणमकरोदिन्दुलग्नोर्मिहस्ता।।(पू.मे. 50)

आम्रकूट पर्वत के वर्णन में कवि का उपमा प्रयोग अत्यन्त चामत्कारिक बन उठा है –

छन्नोपान्तः परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रै–

स्त्वय्यारूढे शिखरमचलः स्निग्धवेणीसवर्णे।

नूनं यास्यत्यमरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्थां

मध्ये श्यामः स्तन इव भुवः शेषविस्तारपाण्डुः।।(पू.मे.18)

अर्थात् पके हुए फलों से लदे आम के वृक्षों से घिरा हुआ आम्रकूट पर्वत पीला सा हो गया है। उसकी मेघाछन्न चोटी कोमल बालों के जूड़े के समान श्यामल होकर पृथ्वी के स्तन की भाँति प्रतीत होगी। मेघदूत में वर्णित प्रकृति मानव जीवन का अंग बन कर रह गई है। मेघदूत अमर गीतिकाव्य है। इसमें बाह्य प्रकृति की मनोरम झाँकी प्रस्तुत है। इस गीतिकाव्य में मानव जगत् को प्राकृतिक जगत् से सम्बद्ध किया गया है। वर्षा ऋतु और उसमें होने वाली प्राणियों की विविध उत्कण्ठा का जैसा चित्रण मेघदूत में है वह अन्यत्र दुर्लभ है। भोली भाली ग्राम वधुएँ मेघ को उत्सुकता से देखते हैं और चतुर पौर वधुएँ मेघ को अपने चंचल कटाक्षों का विषय बनाती हैं।

महाकवि कालिदास ने अपने प्रकृति चित्रण में समस्त जगत् के स्वाभाविक प्रवृत्तियों का प्रतिबिम्ब देखा। वे प्रकृति को मानव का अभिन्न मित्र मानते हैं और उनका मानना है कि मानवीय भावों का प्रकृति के साथ गम्भीर सम्बन्ध रहता है –

तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः कौतुकाधानहेतो–

रन्तर्बाष्पश्चिरमनुचरो राजराजस्य दध्यौ।

मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः

कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे।।(पू.मे.03)

प्रकृति-वर्णन के अतिरिक्त प्राकृतिक तत्त्वों के संरचनात्मक स्वरूप का भी महाकवि कालिदास ने पर्याप्त रूप से वर्णन किया है–

धूमज्योतिःसलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः

सन्देशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः।

इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन्गुह्यकस्तं ययाचे

कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु।।(पू.मे.5)

उक्त प्राकृतिक वर्णन को पढ़कर महाकवि कालिदास की प्राकृतिक संवेदना की गम्भीरता का भान होता है। साथ ही पाठक प्रकृति में सजीवता का अनुभव करता है तथा पाठक में प्रकृति के प्रति प्रेम, श्रद्धा तथा संवेदनाएं झंकृत हो उठती है।

16.3.4 मेघदूत में नगरों का वर्णन

संस्कृत साहित्य का प्रथम खण्डकाव्य मेघदूत अपनी तरह का एकमात्र खण्डकाव्य है जहाँ पर महाकवि की संवेदनशीलता अपने उच्च शिखर पर प्राप्त होती है। इस खण्डकाव्य में मेघ के माध्यम से जिस मार्ग का वर्णन किया गया है वह पूर्णता भौगोलिक एवं प्रामाणिक है। मेघ अपना मार्ग रामगिरी से प्रारम्भ करके अलकापुरी तक पूरा करता है। मेघमार्ग के माध्यम से कवि ने मार्गगत नगरों का बहुत ही भव्य वर्णन किया है।

माल देश – अलकापुरी तक के मार्ग का वर्णन करते हुए यक्ष मेघ से कहता है कि रामगिरी के पश्चात् सर्वप्रथम तुम माल देश जाओगे, जहाँ पर कृषि का फल मेघ के अधीन होने से

वहाँ की भोली-भाली स्त्रियाँ स्नेहपूर्ण दृष्टि से तुमको देखेंगी और तुम वहाँ पर कुछ बरस कर वहाँ की भूमि को सुगन्धित कर देना –

त्वय्यायत्तं कृषिफलमिति भ्रूविलासानभिज्ञैः

प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनैः पीयमानः।

सद्यः सीरोत्कषणसुरभि क्षेत्रमारुह्य मालं

किञ्चित्पश्चाद् व्रज लघुगतिर्भूय एवोत्तरेण।।(पू.मे.16)

दशार्ण-प्रदेश, विदिशानगरी – यक्ष दशार्ण प्रदेश के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन करता हुआ कहता है, दशार्ण देश कलियों के अग्रभाग में विकसित केतकी के पुष्पों के कारण पीले रंग की कान्ति वाले उपवनों से घिरा हुआ है। घरों में बल-वैश्वदेव नामक धार्मिक कार्य द्वारा समर्पित अन्य को खाने वाले पक्षियों द्वारा घोंसलों की रचना से व्याप्त, गाँव की गलियों में खड़े पवित्र पीपल आदि वृक्षों वाला, जामुन के पके हुए फलों से युक्त है। इस प्रकार वर्षा ऋतु में विविध रंगों वाले, सभी दिशाओं में प्रसिद्ध दशार्ण देश में कुछ दिनों के लिए ठहरना–

पाण्डुच्छायोपवनवृतयः केतकैः सूचिभिन्नै–

नीडारम्भैर्गृहबलिभुजामाकुलग्रामचैत्याः।

त्वय्यासन्ने परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः

सम्पत्स्यन्ते कतिपयदिनस्थायिहंसा दशार्णाः।।(पू.मे.23)

वर्तमान मध्य-प्रदेश में स्थित भेलसा नगरी दक्षिण प्रदेश की राजधानी विदिशा थी। विदिशा के प्रसंग में यक्ष कहता है कि विदिशा नगरी के पास पहुँचकर वेत्रवती नदी से मिलकर तुम्हें कामुकता का पूर्ण फल मिलेगा। महाकवि कालिदास ने चंचल तरंगों वाली वेत्रवती नदी के लहरों वाले तटवर्ती जल को नदीरूपी सुन्दरी के मुख के रूप में प्रस्तुत किया है।

उज्जयिनी नगरी –

प्राप्यावन्तीनुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान्

पूर्वोद्दिष्टामनुसर पुरीं श्रीविशालां विशालाम्।

स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणां गां गतानां

शेषैः पुण्यैर्हृतमिव दिवः कान्तिमत् खण्डमेकम्।।(पू.मे.30)

प्रकृत खण्डकाव्य में उज्जयिनी नगरी के प्रति महाकवि कालिदास का कुछ विशेष ही अनुग्रह दिखाई देता है। यद्यपि मेघ को उत्तर की ओर जाना है फिर भी यक्ष उससे कहता है कि आप कृपा करके उज्जयिनी अवश्य जाएं। यक्ष के अनुसार उज्जयिनी नगरी का अपना ही विशेष आकर्षण है। तुम उज्जयिनी के प्रासादों की शोभा से परिचय अवश्य प्राप्त करना। उज्जयिनी की नगरों के महलों के ऊपर वाले खंडों की शोभा अवश्य देखना। जब बिजली चमकेगी तब उज्जयिनी की सुन्दरियों की आँखें आश्चर्य से चंचल हो उठेंगी, वे तुम्हें चंचल

और तिरछी चितवनों से देखेंगी। अगर तुमने उस चितवन को नहीं देखा तो कुछ नहीं देखा। तुम्हारा जीवन उनको देखे बिना व्यर्थ ही रहेगा। राजा उदयन कि यह उज्जयिनी नगरी अत्यधिक धन-संपत्ति से युक्त है। यक्ष के अनुसार ऐसा प्रतीत होता है कि मानो स्वर्गवासियों के रहने के लिए एक स्वर्ग का टुकड़ा ही जैसे भूस्थल पर लाया गया हो। उज्जयिनी नगरी के वर्णन प्रसंग में शिप्रा नदी का भी उल्लेख किया गया है। महाकवि के अनुसार मार्ग की थकान को दूर करने के लिए शिप्रा की वायु पर्याप्त है। जिस प्रकार शिप्रा नदी रमणी की थकान को दूर करती है उसी प्रकार से तुम्हारे मार्ग के श्रम को भी इस नदी की वायु दूर कर देगी। उज्जयिनी के वैभव का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं की उज्जयिनी नगरी के बाजारों में विविध रत्न मणियाँ, शंख, सीपियाँ आदि सजाए हुए हैं और सभी को देखकर ऐसा लग रहा है जैसे सागर के रत्न यहीं पर आ गए हों और सभी समुद्र रत्नविहीन हो गए हैं। भौतिक सौन्दर्य का वर्णन करके महाकवि उज्जयिनी के आध्यात्मिक तेज का वर्णन करते हुए कहते हैं कि यह महाकाल की नगरी है। अतः उज्जयिनी में स्थित महाकाल के मन्दिर में अगर तुम सन्ध्या के अतिरिक्त किसी अन्य समय पहुंचे तो तुम्हें तब तक वहीं ठहरना चाहिए जब तक सूर्य दिखाई देते रहे, क्योंकि शूलपाणी शिव जी की सन्ध्याकालीन पूजा आरती में नगाड़े का काम करते हुए अपने गम्भीर गर्जनों के पुण्य फल को प्राप्त करना। शिव पूजा में सम्मिलित होकर अपनी गर्जना द्वारा नगाड़े का कार्य करने से तुम्हें शिवजी की पूजा का विशेष फल प्राप्त होगा। इस प्रकार उज्जयिनी के विविध सौन्दर्य का वर्णन महाकवि के उज्जयिनी प्रेम को दर्शाता है। इसी उज्जयिनी वर्णन के कारण कतिपय विद्वान् महाकवि कालिदास को उज्जैन का वासी भी स्वीकार करते हैं।

अलकापुरी–

विद्युत्वन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः

सङ्गीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगम्भीरघोषम्।

अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुङ्गमभ्रंलिहाग्राः

प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः।।(उ.मे.01)

मेघदूत खण्डकाव्य के अनुसार अलकापुरी ही मेघ का अन्तिम गन्तव्य है। विविध नगरों का वर्णन करते हुए यक्ष मेघ से कहता है कि जब तुम अलकापुरी पहुँच जाओगे तब वहाँ का सौन्दर्य देखकर ही तुम यह अनुमान कर सकते हो कि तुम अलकापुरी पहुँच गए हो। वहाँ गगनचुम्बी भवन मिलेंगे, उनमें निवास करने वाली सुन्दर स्त्रियाँ अपनी चपलता के कारण तुम्हारे भीतर से चमकने वाली बिजलियों भित्तियों पर चित्रित चित्र तुम्हारे इन्द्रधनुष से तथा संगीत के लिए बजने वाले नगाड़े जल धारण किए तुम्हारी गर्जना से समानता रखने में समर्थ हैं। अलकापुरी देवों के कोषाध्यक्ष कुबेर की राजधानी है। इस कारण वहाँ पर अत्यधिक सम्पन्नता है। वहाँ की स्त्रियाँ बहुत सुन्दर हैं तथा अपने सौन्दर्य की वृद्धि के लिए अनेक प्रकार के शृंगार करती हैं। अपने हाथ में लीलाकमल लिए रहती हैं। उनके केशों में नवीन पुष्प गुँथे हुए रहते हैं। स्वभाविक रूप से उनका वर्ण गोरा है और अपने गोरेपन की वृद्धि करने के लिए अपने मुख पर लोध्र के पुष्पों की धूलि लगाती हैं। उनकी माँग में कदम्ब के

फूल हैं जिनका जन्म तुम्हारे आने के कारण से होता है। अलकापुरी का वर्णन करते हुए यक्ष कहता है– यहाँ के पौधे और वृक्ष पुष्पों से लदे रहते हैं। यहाँ सरोवर नित्य कमलों से युक्त रहते हैं जिन पर हंससमूह ऐसी शोभा देते हैं मानो वे कमलिनियाँ अपने कमर पर करधनियाँ धारण की हुई हैं। यहाँ सदा शुक्ल पक्ष रहता है इसलिए अन्धकार के प्रसार से सदा के लिए निवृत्त रहने के कारण यहाँ की रात्रियाँ अत्यधिक रमणीय होती हैं।

आनन्दोत्थं नयनसलिलं यत्र नान्यैर्निमित्तै–

र्नान्यस्तापः कुसुमशरजादिष्टसंयोगसाध्यात्।

नाप्यन्यस्मात्प्रणयकलहाद् विप्रयोगोपपत्तिः

वित्तेशानां न च खलु वयो यौवनादन्यदस्ति।।(उ.मे.02)

यक्षों के सुखमय जीवन का परिचय कराते हुए यक्ष कहता है कि अलकापुरी में निवास करने वाले यक्षों की आँखों से आँसू प्रसन्नता के कारण ही निकलते हैं किसी कष्ट के कारण नहीं निकलते। अलकापुरी निवासी कामदेव के बाणों से ही आहत होते हैं इसके अतिरिक्त किसी प्रकार से उनको कोई भय नहीं है। अलकापुरी में होने वाले वियोग भी प्रेम में विरह के कारण होते हैं। यक्ष जाति के लोग सदा युवा रहते हैं। अलकापुरी में युवा के अतिरिक्त कोई अवस्था ही नहीं है। इस प्रकार अलकापुरी निवासी सभी प्रकार से सन्तुष्ट हैं और सभी प्रकार का ऐश्वर्य अलकापुरी में विद्यमान है।

16.4 मेघदूत के पात्रों का चरित्र-चित्रण

16.4.1 यक्ष

यक्ष मेघदूत खण्डकाव्य का नायक है। महाकवि कालिदास ने यक्ष के पात्र का सृजन कर सहृदय वियोगी के मनोभावों का जितना मार्मिक विश्लेषण किया है उतना अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलता है। प्रिया के वियोग में विफल होकर यक्ष मेघ से ही प्रार्थना कर उठता है कि मेरी प्रिया तक मेरी कुशलता के समाचार पहुँचा देना। एक जड़ वस्तु से दीनता में प्रार्थना कर उठना ही उसके शोक का उच्च शिखर है, जिसमें उसे जड़ चेतन का भी भान नहीं रहता। मेघदूत खण्डकाव्य का यक्ष कर्तव्यच्युत प्रवृत्ति का है।

कश्चित् कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्तः

शापेनास्तङ्गमितमहिमा वर्षभोग्येण भर्त्तुः।.....(पू.मे.01)

यक्ष अपने स्वामी कुबेर की पूजा अर्चना के निमित्त लाए जाने वाले पुष्पों को न लाने के कारण क्रोधित कुबेर के द्वारा शापित है। प्रिया के साथ रमण में वह इतना लीन हो गया कि स्वामी के द्वारा दिए गई कर्तव्य का भी भान नहीं रहा। अब अपने ही कर्मों के फल को भोगता हुआ रामगिरी के आश्रम में अपने शाप की अवधि को बिता रहा है। मेघदूत का यक्ष एकपत्नी व्रत धारण किए हुए है। प्रिया के प्रति ईमानदार है। वियोग की स्थिति में भी वह निरन्तर अपनी पत्नी यक्षिणी को याद करके अपने दिन व्यतीत कर रहा है। उसके विरह से निरन्तर विकल रहता है। खण्डकाव्य का नायक यक्ष बहुत अधिक व्यवहारपटु भी है। वह मेघ

को विभिन्न मार्गों पर होने वाली क्रियाओं तथा उनकी प्रतिक्रियाओं तथा कैसे वहाँ पर व्यवहार करना है इन सबका ज्ञान देता है। मेघदूत का यक्ष कुशल भूगोलवेत्ता इतिहासवेत्ता भी है। उसने रामगिरि से अलकापुरी तक के मार्ग का अत्यन्त सटीक वर्णन किया है। जो आज के परिप्रेक्ष्य में भी एकदम सही है साथ ही विविध प्रसंगों में पौराणिक ऐतिहासिक सन्दर्भों का भी उल्लेख करता है। इससे यह प्रतीत होता है कि यक्ष का इतिहास सम्बन्धी ज्ञान भी उच्चकोटि का है। साथ ही वह शिव भक्त भी है। उज्जयिनी के वर्णन के प्रसंग में यक्ष से विशेष आग्रह करता है कि यदि आप सायंकाल की आरती से पहले उज्जयिनी पहुँच जाएं तब कुछ देर विश्राम करके सायंकाल की आरती में उपस्थित होकर के ही आगे बढ़ें। सायंकाल की आरती में अपने गर्जन से नगाड़े की प्रतिध्वनि को उत्पन्न करते हुए भगवान शिव के प्रति अपनी अर्चना को व्यक्त करना। इससे शिव के प्रति उसकी अपार भक्ति व्यक्त होती है।

अप्यन्यस्मिञ्जलधर! महाकालमासाद्य काले

स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदत्येति भानुः।

कुर्वन्संध्याबलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीया–

मामन्द्राणां फलमविकलं लप्स्यते गर्जितानाम्।।(पू.मे.34)

यक्ष विविध गुणों से युक्त है। वह स्वामिभक्त, प्रकृतिप्रिय, रहस्यज्ञाता, करुणप्रवृत्ति, विलासप्रिय, रतिकुशल तथा प्रकृतिकृपण भी है।

16.4.2 यक्षिणी

मेघदूत खण्डकाव्य की नायिका यक्षिणी अपने पति की प्रिया है तथा उसका निवास अलकापुरी में है। शाप के कारण यक्ष एक वर्ष की अवधि के लिए अपनी प्रिया से दूर है। उस समय यक्षिणी भी वियोग के समय पालन किए जाने वाले नियमों का कठोरता से पालन करती है। यह उसके अपने पति के प्रति अगाध प्रेम को दर्शाता है। यक्ष की पत्नी यक्षिणी पूर्ण पतिव्रता है। पति के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष का मन में भी ध्यान नहीं करती है। पति के वियोग में उसने साज-सज्जा केशविन्यासादि सभी शृंगार त्याग दिए हैं। साथ ही पति के प्रति उसका सम्मान इस बात से स्पष्ट होता है कि कुबेर द्वारा दिए गए शाप के कारण वह पति को जाने से नहीं रोकती है तथा स्वामी की आज्ञा का पालन ना करने के कारण मिले हुए दण्ड में स्वयं भी भागी बनती हुई कष्ट को भोग कर रही है। यक्ष की पत्नी अपूर्व सौन्दर्यशालिनी है जिसका वर्णन यक्ष ने किया है

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी

मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः।

श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां

या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः।।(उ.मे.19)

यक्षिणी वियोग से अत्यधिक व्याकुल है शरीर कृशकाय हो गया है। मुख विवर्णत्व को प्राप्त हो गया है तथा समय-समय पर कृशता के कारण मूर्च्छा को प्राप्त करती रहती है। यक्षिणी एक मुग्धा नायिका है।

उत्सङ्गे वा मलिनवसने सौम्य! निक्षिप्य वीणां

मद्गोत्राङ्कं विरचितपदं गेयमुद्गातुकामा।

तन्त्रीमार्द्रां नयनसलिलैः सारयित्वा कथञ्चिद्

भूयो भूयः स्वयमपि कृतां मूर्च्छनां विस्मरन्ती।।(उ.मे.23)

अलकापुरी गन्धर्व की नगरी होने के कारण सुख समृद्धि तथा ललित कलाओं में समृद्ध है। अतः यक्षिणी भी संगीत कला में अत्यधिक निपुण है। यक्ष के कथन के अनुसार यद्यपि यक्षिणी संगीत कला में अतिनिपुण है फिर भी विरह के कारण उसका स्वर किंचित् शिथिल हो गया है। मेघदूत की यक्षिणी शापावधि में पति के वियोग में साज-सज्जा आभूषण आदि का त्याग करके योगिनी की भाँति अपने जीवन का यापन कर रही है। साथ ही धैर्य के साथ अपने पति यक्ष की प्रतीक्षा में रत रहते हुए अपने स्वामी की आज्ञा का पालन कर रही है। इस प्रकार वह एक स्वामिभक्त, पतिव्रता, दृढप्रतिज्ञ नारी है।

16.4.3 मेघ

समस्त सृष्टि के पालनहार मेघ इस मेघदूत नामक खण्डकाव्य के भी आधार हैं। यक्ष में जीवन की आशा का संचार करने वाले हैं। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट होता है कि इस खण्डकाव्य में मेघ को दूत बनाया गया है, यह नामकरण ही मेघ की उपादेयता को सिद्ध करता है। मेघ इस संसार में सभी का नियामक है फिर वह चाहे अन्न की उत्पत्ति हो या किसी वियोगी के सन्देश का वाहकत्व। मेघदूत खण्डकाव्य में मेघ की स्तुति बहुधा की गई है।

जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां

जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः।

तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद् दूरबन्धुर्गतोऽहं

याञ्चा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा।।(पू.मे.06)

महाकवि कालिदास के अनुसार यह मेघ पुष्कर वंश में उत्पन्न उच्च संस्कारों से युक्त है। साथ ही एक अनुकूलतम सन्देशवाहक है। मेघ हमेशा से ही लोकप्रिय रहे हैं चाहे उनको देखकर प्राणियों को होने वाली प्रसन्नता हो या फिर सहयोगी के वियोग में उनको देखकर होने वाली उत्कण्ठा दोनों ही स्थितियों में मेघ रोमाञ्च के साथ-साथ शरण प्रदान करने वाले हैं।

मेघालोके भवति सुखिनोप्यन्यथावृत्ति चेतः

कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे।।(पू.मे.03)

जो कोई भी मेघ की शरण में आता है वे उन्मुक्त होकर उनका स्वागत करते हैं तथा उनकी सहायता करते हैं। मेघ सभी के द्वारा पूज्य है स्तुत्य है। पर्वत भी उसे सिर पर धारण करते हैं

त्वामासारप्रशमितवनोपप्लवं साधु मूर्ध्ना

वक्ष्त्यध्वश्रमपरिगतं सानुमानाम्रकूटः।(पू.मे.17)

लोक में भी देखा जाता है कि मेघ का आना शुभ शकुन माना जाता है। यह एक अच्छा श्रोता है तथा धैर्यवान् है। इस प्रकार मेघदूत का मेघ दूतकार्य के लिए परम विश्वसनीय तथा सर्वतः उपयुक्त है।

16.5 सारांश

आन्तरिक मनोभावों को शब्द प्रदान कर उनको सर्वसाधारण के लिए अनुभूति योग्य बना देना ही महाकवि कालिदास की विशेषता है और अपने इस वैशिष्ट्य का प्रदर्शन महाकवि कालिदास ने अपने मेघदूत नामक खण्डकाव्य में किया है। मेघदूत मनुष्य के भावों के चरमोत्कर्ष को दर्शाते हुए यथार्थ के धरातल पर उनका वर्णन करता है। पूर्वमेघ तथा उत्तरमेघ इन दो भागों में विभक्त यह मेघदूत आन्तरिक भावों की अभिव्यक्ति करते हुए बाह्य जगत् से आपका परिचय कराता है। प्रस्तुत खण्डकाव्य में साहित्यिक विवेचन के साथ-साथ ऐतिहासिक भौगोलिक तथा पौराणिक सन्दर्भों का भी यथोचित रीति से निवेश किया गया है। महाकवि कालिदास की यह कृति साहित्यिक रूप से जितनी महत्त्वपूर्ण है उतनी ही तत्कालीन भौगोलिक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को भी समृद्ध करती है। प्रकृत खण्डकाव्य में एक यक्ष प्रकृतिकृपण होकर मेघ से प्रार्थना करता है कि वह उसके विरह सन्देश को उसकी प्रिया यक्षिणी तक अलकापुरी में पहुँचा दे। मेघदूत खण्डकाव्य का शीर्षक ही इस ग्रन्थ के महत्त्व को बताने के लिए पर्याप्त है। शीर्षक का अध्ययन मात्र करने से ही सहृदय पाठक में उत्कण्ठा हो जाती है कि कैसे कोई मेघ दूत का कार्य कर सकता है और कोई व्यक्ति कैसे और क्या सन्देश मेघ के माध्यम से भेज सकता है। मेघदूत नामकरण ही अपने आप में एक चमत्कार है। कवि की कल्पना अभूतपूर्व उपमा विविध उत्कर्षाधायक अलंकारों से युक्त अनुपम कृति है। यक्ष के माध्यम से कवि जहाँ कहीं मनुष्य के विरह का स्वाभाविक वर्णन करता है वहीं रामगिरी से अलकापुरी तक मेघ मार्ग के वर्णन में अपनी भौगोलिक निपुणता का भी परिचय देता है। वास्तविकता में मेघदूत खण्डकाव्य की परम्परा का उद्वाहक है। मेघदूत से प्रेरणा लेकर कितने ही कवियों ने दूतकाव्य, सन्देश काव्य का प्रणयन किया। मेघदूत की 50 से अधिक संस्कृत व्याख्याएं अब तक हो चुकी हैं। साथ ही विश्व की अनेक भाषाओं में इसका गद्य और पद्य दोनों ही रूपों में अनुवाद हुआ है। एक आदर्श खण्डकाव्य गीतिकाव्य के जितने भी नियम निर्धारित किए गए हैं मेघदूत उन सभी कसौटी पर खरा उतरता है। महाकवि कालिदास की कल्पना, भावयोजना, भाषा, छन्द विधान सभी चरमोत्कर्ष पर है। महाकवि कालिदास की एकमात्र कृति मेघदूत ही उन्हें संसार में सर्वश्रेष्ठ कवि ख्यापित करने में पर्याप्त है।

16.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास– प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी।

मेघदूत– डा. बिजेन्द्र कुमार सिंह(सम्पा.),साहित्य भण्डार, मेरठ।

मेघदूत– डा. संसारचन्द्र एवं पं. मोहनदेव, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

16.7 अभ्यास प्रश्न

1 मेघदूत के काव्यसौष्ठव को स्पष्ट कीजिए।

2 मेघदूत में प्रकृति-वर्णन पर प्रकाश डालिए।

3 मेघदूत के अनुसार मेघमार्ग का वर्णन कीजिए।

4 मेघदूत के अलङ्कार-सौन्दर्य का वर्णन कीजिए।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 17 पूर्वमेघ – श्लोक 1-29

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 पूर्वमेघ – श्लोक 1-29

17.3 सारांश

17.4 कुछ उपयोगी पुस्तकें

17.5 अभ्यास प्रश्न

17.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप–

- महाकवि कालिदास की वर्णन चातुरी से परिचित होंगे।
- मेघ के मार्ग से परिचित होंगे।
- मार्ग में पड़ने वाले विभिन्न पर्वतों एवं नदियों के सौन्दर्य से परिचित होंगे।
- भौगोलिक परिवेश का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

17.1 प्रस्तावना

महाकवि कालिदास प्रणीत 'मेघदूतम्' संस्कृत साहित्य का एक प्रसिद्ध खण्डकाव्य है। यह खण्डकाव्य दो भागों में विभक्त है – पूर्वमेघ एवं उत्तरमेघ। इस खण्डकाव्य में महाकवि कालिदास ने मेघ को दूत बनाकर अलकापुरी भेजा है। पूर्वमेघ में यक्ष मेघ को अलका जाने का मार्ग बताता है। वह मेघ को बताता है कि तुम्हें मार्ग में नर्मदा, निर्वन्ध्या, वेत्रवती आदि नदियाँ मिलेंगी जिनका जल तुम अवश्य ग्रहण करना। वह मेघ को यह भी बताता है कि मार्ग में तुम्हें विन्ध्य, आमकूट, नीचैः आदि पर्वत मिलेंगे जिन पर तुम अपना जल बरसाकर उनकी उष्णता को शान्त करना। इस प्रकार इस इकाई में आप पूर्वमेघ के श्लोक सं. 1 से 29 तक का अध्ययन करेंगे।

17.2 पूर्वमेघ – श्लोक 1-29

इकाई के इस अंश में आप पूर्वमेघ के श्लोक 1-29 तक का अन्वय, अनुवाद, शब्दार्थ आदि विषयों का अध्ययन करेंगे।

कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्तः

शापेनास्तङ्गमितमहिमा वर्षभोग्येण भर्तुः।

यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु

स्निग्धच्छाया तरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु।।1।।

अन्वयः – स्वाधिकारात् प्रमत्तः कान्ताविरहगुरुणा वर्षभोग्येण भर्तुः शापेन अस्तङ्गमितमहिमा कश्चित् यक्षः जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु स्निग्धच्छायातरुषु रामगिर्याश्रमेषु वसतिं चक्रे।

प्रसङ्ग – कालिदास वस्तुनिर्देशात्मक मङ्गलाचरण करते हुए यक्ष के शाप का विवरण देते हैं।

शब्दार्थ – स्वाधिकारात् – स्वयं के लिये निर्धारित कर्तव्यपालन से, प्रमत्तः – प्रमाद (आलस्य) करने वाला, कान्ताविरहगुरुणा – प्रेयसी (पत्नी) के विरह से दुःसह्य, वर्षभोग्येण – एक वर्ष तक भोगे जाने वाले, भर्तुः – स्वामी (कुबेर) के, शापेन – शाप से, अस्तङ्गमितमहिमा – जिसकी महिमा अर्थात शक्तियाँ अस्त अर्थात विनष्ट कर दी गई हों, कश्चित् – कोई अज्ञात नाम वाले, यक्ष – देवयोनि विशेष ने, जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु – जनक की पुत्री के द्वारा किये स्नान से पवित्र हुए जल वाले, स्निग्धच्छायातरुषु – घने और छायादार वृक्षों से युक्त, रामगिर्याश्रमेषु – रामगिरि (रामटेक पर्वत) पर्वत के आश्रमों में, वसतिम् – निवास, चक्रे – किया।

अनुवाद – अपने कर्तव्य से प्रमाद करने के कारण, अपनी पत्नी के वियोग से अत्यन्त दुसह्य, एक वर्ष भोगे जाने वाले स्वामी कुबेर के शाप से जिसकी सारी शक्तियाँ नष्ट कर दी गईं हैं, ऐसे किसी यक्ष ने जनक पुत्री सीता के स्नान करने से पवित्र हुए जल से और शीतल घने छायादार वृक्षों से युक्त रामगिरी पर्वत पर स्थित आश्रमों में निवास किया।

व्याख्या – यक्ष जो एक देवयोनिविशेष है। वह यक्ष अपने कर्तव्यपालन से च्युत होने के कारण अर्थात् प्रमाद करने के कारण उसके स्वामी कुबेर के कोपभाजन का विषय बना। स्वामी कुबेर ने उसे उसकी प्रियतमा के वियोग को एक वर्ष तक भोगने का शाप दिया और उसकी सारी शक्तियाँ विनष्ट कर दीं, जिससे उसका देवत्व नष्ट हो गया। अतः वह यक्ष अपनी शाप की अवधि को बिताने के लिये रामगिरी पर्वत के आश्रमों में डेरा डालता है। जहाँ जनक की पुत्री सीता के द्वारा किये गये स्नान से पवित्र हुआ जल और घने छायादार अत्यन्त आनन्ददायी वृक्ष हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – कान्ताविरहगुरुणा – कान्तायाः (षष्ठी त.) विरहेण (तृ.त.) गुरुणा। **अस्तंगमितमहिमा –** अस्तं (अव्यय) गमितो महिमा यस्य (बहुव्रीहि)। **स्निग्धच्छाया –** छाया-प्रधानाय तरवः छायातरवः, मध्यमपदलोपी कर्म.। स्निग्धाः छायातरवः येषु बहुव्रीहिः। **रामगिर्याश्रमेषु –** रामगिरेराश्रमेषु (षष्ठी तत्पु.)।

विशेष – कहा जाता है कि यक्ष का यह काम था कि प्रतिदिन प्रातः वह अपने स्वामी कुबेर के लिये खिले हुए ताजे पुष्पों को चुनकर लाए, पर एक दिन वह अपनी प्रेयसी के साथ सुबह समय बिताने की इच्छा से वह रात के समय में ही कमल पुष्प की कलियों को ले आया जिन्हें दूसरे दिन खिल जाना था। अगले ही दिन प्रातः पूजन करते समय जब कुबेर इन्हें शिव जी पर चढा रहे थे तब एक भ्रमर ने उनकी अङ्गुली पर डंक मारा जो कि किसी कली में छुपा हुआ था। क्रोधित होकर स्वामी कुबेर ने यक्ष को शाप दिया की "जिस कान्ता के प्रेम में तूने अपने कर्तव्य से प्रमाद किया है उससे तू एक वर्षपर्यन्त अलग रहेगा।" इसके अलावा विभिन्न व्याख्याकारों के और भी मत हैं। प्रस्तुत पद्य में विप्रलम्भ शृङ्गार रस है क्योंकि यहाँ यक्ष का उसकी पत्नी के साथ वियोग सूचित है। प्रस्तुत पद्य में परिकरालङ्कार है क्योंकि ग्रन्थकार ने पत्नी को भार्या न कहकर कान्ता अर्थात् प्रेयसी कहा है। अतः विशेष्य जहाँ साभिप्राय होता है वहाँ परिकरालङ्कार होता है **'उक्तैर्विशेषणैः साभिप्रायैः परिकरो मतः।'** इस पद्य में काव्यलिङ्ग अलङ्कार भी है क्योंकि यहाँ शाप का हेतु स्पष्ट है "स्वाधिकारात् प्रमत्तः" और जहाँ हेतु उक्त हो उसे काव्यलिङ्ग या हेतु अलङ्कार कहते हैं **'हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गं निगद्यते।'** प्रस्तुत पद्य में मन्दाक्रान्ता छन्द है और यही मन्दाक्रान्ता छन्द सम्पूर्ण मेघदूत में है। मन्दाक्रान्ता छन्द का लक्षण इस प्रकार है– **'मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैम्भौ नतौ ताद् गुरु चेत्।'**

तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबलाविप्रयुक्तः स कामी

नीत्वा मासान्कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः।

आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुं

वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श।।2।।

अन्वयः – अबलाविप्रयुक्तः कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः स कामी तस्मिन् अद्रौ कतिचित् मासान् नीत्वा आषाढस्य प्रथमदिवसे आश्लिष्टसानुं वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं मेघं ददर्श।

प्रसङ्ग – आषाढ मास में यक्ष मेघ के स्वरूप को देखता है।

शब्दार्थ – अबलाविप्रयुक्तः – प्रियतमा से बिछड़ा हुआ, कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः – (दुर्बलतावश) स्वर्णिम् कंकण के कलाई से खिसक जाने के कारण सूनी कलाई वाला, स कामी – प्रियाविषयक कामनाओं वाले उस यक्ष ने, अद्रौ – पर्वत पर, कतिचित् – कुछ, मासान् – महीनों को, नीत्वा – बिताकर, आषाढस्य – आषाढ मास के, प्रथमदिवसे – पहले दिन, आश्लिष्टसानुम् – पर्वत के शिखर पर व्याप्त, वप्रक्रीडापरिणतगज – टीले की मिट्टी को

उखाड़ने में तिरछे दाँतों से प्रहार करते हुए हाथी के जैसे दिखने वाला, प्रेक्षणीयम् – देखने योग्य, दर्शनीय, मेघम् – बादल को, ददर्श – देखा।

अनुवाद – अपनी प्रियतमा (अबला) से बिछड़े हुए, दुर्बलतावश सोने के कंगन के कलाई से गिर जाने के कारण सूनी कलाई वाले उस कामी यक्ष ने, पर्वत पर कुछ महीने बिताकर आषाढ मास के पहले दिन पर्वत से सटे हुए, मिट्टी से खेलते हुए हाथी के जैसे दिखने वाले दर्शनीय मेघ को देखा।

व्याख्या – अपनी प्रियतमा से वियुक्त हो चुका यक्ष उस असह्य दुःख से अत्यन्त दुर्बल हो चुका है। अतः उसकी कलाईयां सिकुड़ गई हैं। उसके हाथों के सोने के कंगनों के गिरने से सूनी कलाई हो गई है। ऐसी स्थिति वाले उस कामी यक्ष ने उस पर्वत पर कुछ महीने बिताकर आषाढ मास के पहले दिन पर्वत के शिखर पर व्याप्त एक ऐसे मेघ को देखा जो कि वप्रक्रीड़ा में रत गज के समान प्रतीत हो रहा था, अर्थात् टीले से मिट्टी उखाड़ते समय तिरछे दाँतों से प्रहार करते हुए देखने योग्य गज के समान दिखाई पड़ रहा था।

व्याकरणात्मक टिप्पणी– अबलाविप्रयुक्तः – अबलया विप्रयुक्तः (तृ.तत्पु.)। **कामी** – कम्+इन् (णिनि) कर्तरि अथवा कम्+घञ् भावे कामः सः अस्ति अस्य इति काम+इनि (मत्वर्थ)। **कतिचित्** – कति+चित्। **प्रथमदिवसे** – प्रथमः दिवसः (कर्मधा.) तस्मिन्, अधिकरणे सप्तमी। **आश्लिष्टसानुम्** – आ+श्लिष्+क्त। आश्लिष्टः सानुः येन (ब.व्री.) तम्। **कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः** – कनकस्य वलयः कनकवलयः (ष.तत्पु.) तस्य भ्रंशेन रिक्तः प्रकोष्ठः यस्य सः (ब.व्री.)। **वप्रक्रीडापरिणत** – वप्रक्रीडासु परिणतः स चासौ गजः (कर्मधा.) सः इव।

विशेष – प्रस्तुत पद्य में लुप्तोपमा अलङ्कार है, क्योंकि (वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयम्) मिट्टी पर खेलने में परिणत हाथी के समान दिखाई देने वाला कहा गया है। यहाँ पर उपमावाचक पद इव का लोप है। अतः उपमा अलङ्कार का ही भेद लुप्तोपमा है। रस विप्रलम्भ श्रृङ्गार है।

तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः कौतुकाधानहेतो–

रन्तर्बाष्पश्चिरमनुचरो राजराजस्य दध्यौ।

मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः

कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे।।3।।

अन्वयः – राजराजस्य अनुचरः अन्तर्बाष्पः (सन्) कौतुकाधानहेतोः तस्य पुरः कथमपि स्थित्वा चिरं दध्यौ। मेघालोके (सति) सुखिनः अपि चेतः अन्यथा वृत्ति भवति, कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने दूरसंस्थे (सति) किं पुनः?

प्रसङ्ग – मेघ को देखकर यक्षविचार करता है कि –

शब्दार्थ – राजराजस्य – कुबेर के, अनुचरः – सेवक ने, अन्तर्बाष्प – भीतर ही आँसुओं को रोके हुए, कौतुकाधानहेतोः – उत्कण्ठा उत्पादन के हेतु, तस्य – उसके (मेघ के), पुरः – सम्मुख, कथमपि स्थित्वा – किसी तरह ठहरकर, चिरं दध्यौ – देर तक सोचा, मेघालोके – बादल के दिखाई पड़ने पर, सुखिनः अपि – सुखी व्यक्ति का भी, चेतः – चित्त, अन्यथावृत्ति – भिन्न ही वृत्ति वाला (विकारयुक्त), कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने – जिसे गले लगाने की अभिलाषा हो उस व्यक्ति के, दूरसंस्थे – दूर होने पर, किं पुनः – कहना ही क्या।

अनुवाद – कुबेर के सेवक यक्ष ने अन्दर ही अन्दर अपने अश्रुओं को रोके हुए उत्कण्ठा उत्पादन के कारणीभूत उस मेघ के सम्मुख किसी तरह ठहरकर देर तक सोचा कि बादल के दिखाई पड़ने पर तो सुखी व्यक्ति का हृदय भी भिन्न ही वृत्ति वाला हो जाता है और जब जिसे गले लगाने की इच्छा हो (कान्ता) उस व्यक्ति के दूर रहने पर तो कहना ही क्या?

व्याख्या – राजाओं के भी राजा कुबेर के सेवक यक्षदेव ने प्रेमिका से विरह के कारण निकल रहे अश्रुओं को अन्दर ही अन्दर रोके हुए, चित्त में उत्कण्ठा उत्पन्न कर देने वाले उस बादल के सामने बड़ी कठिनाई से बहुत देर तक खड़े रहकर सोचा कि ऐसे कामोत्पादक मेघ के दिख जाने पर तो सुखी व्यक्ति का भी (जिसके साथ उसकी प्रेयसी हो) हृदय आह्लादित हो जाता है, उसमें भी विकार उत्पन्न होते हैं, वह भी प्रेमविषयक वासनाओं से घिर जाता है। ऐसे सुखी व्यक्ति का जब ये हाल है तो मेरे (यक्ष के) जैसे का क्या? जो जिस (यक्षिणी,प्रियतमा को) अपने गले से लगाना चाहता है, उस व्यक्ति के दूर रहने पर तो कहना ही क्या?

व्याकरणात्मक टिप्पणी – राजराजस्य – राजा (यक्षाणां) राजा (ष.तत्प.) राजराजः। **अन्तर्बाष्पः –** अन्तः स्तम्भित बाष्पं (मध्यमपदलोपी कर्म.) यस्य सः (ब.व्री)। **कौतुकाधानहेतोः –** कौतुकस्य आधानम् तस्य हेतोः (षष्ठी.त.), आधान – आ+धा, ल्युट भावे आधानम्। **स्थित्वा –** स्था, क्त्वा। **दध्यौ –** ध्यै, लिट् प्र.पु.एक.। **मेघालोके –** मेघस्य आलोकः तस्मिन् (स.त.)। **आलोक –** आ+लोक्+घञ्, भावे। **अन्यथावृत्ति –** अन्यथा वृत्तिः यस्य (ब.व्री.)। **कण्ठाश्लेषः –** कण्ठस्य आश्लेषः तस्य।

विशेष – प्रस्तुत पद्य में विप्रलम्भ शृङ्गार रस है क्योंकि मेघ शृङ्गार रस का उद्दीपक है। इस पद्य में अर्थान्तरन्यास एवं अर्थापत्ति अलङ्कार है, क्योंकि यहाँ पहले पंक्ति में वर्णित विरह दशा के वर्णन का बाद की पंक्ति के द्वारा समर्थन किया गया है। 'किंपुनर्दूरसंस्थे' में अर्थापत्ति अलङ्कार है।

प्रत्यासन्ने नभसि दयिताजीवितालम्बनार्थी

जीमूतेन स्वकुशलमयीं हारयिष्यन्प्रवृत्तिम्।

स प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै

प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार।।4।।

अन्वयः – सः नभसि प्रत्यासन्ने दयिताजीविताऽलम्बनार्थी जीमूतेन स्वकुशलमयीं प्रवृत्तिं हारयिष्यन् प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै(जीमूताय) प्रीतः प्रीति प्रमुख वचनं स्वागतं व्याजहार।

प्रसङ्ग – यक्ष मेघ को देखकर उसके स्वागत की अभिलाषा करता है।

शब्दार्थ – सः – यक्ष, नभसि – श्रावणमास के, प्रत्यासन्ने – निकट आने पर, दयिताजीवितालम्बनार्थी – दयिता (पत्नी) के जीवन का आलम्बन करने का इच्छुक होने पर, जीमूतेन – उस मेघ के द्वारा, स्वकुशलमयीम् – स्वयं की कुशलता के, प्रवृत्तिम् – समाचार को, हारयिष्यन् – पहुँचाना चाहता हुआ, प्रत्यग्रैः – अभिनव, ताजे, कुटजकुसमैः – गिरिमल्लिका (चमेली) के फूलों से, कल्पितार्घाय – जो अर्घ (पूजा) के लिये तैयार किये गये हैं, स्वागतं व्याजहार – स्वागत किया।

अनुवाद – उस यक्ष ने श्रावण मास के निकट आने पर अपनी पत्नी के जीवन के आलम्बन की कामना रखते हुए, उस मेघ द्वारा अपनी कुशलता के समाचार को पहुँचाने की अभिलाषा से ताजे खिले हुए चमेली के फूलों से अर्घ की सामग्री तैयार की और प्रसन्नचित्त होकर उस मेघ को प्रेमपूर्वक शब्दों में 'स्वागत' कहा।

व्याख्या – कुबेर के शाप से पत्नी का विरह भोग रहा यक्ष अब भी उसी रामगिरी के पर्वत पर है, जब वह मेघ का दर्शन करता है तो वह श्रावण मास के निकट आने पर प्रेयसी के आलम्बन की कल्पना करता है और सोचता है की क्यों न यह मेघ ही मेरा समाचार मेरी पत्नी तक पहुँचा दे। बस इसी अभिलाषा से वह यक्ष ताजे गिरिमल्लिका के पुष्पों से मेघ के पूजन की सामग्री तैयार करता है और प्रसन्न होकर प्रेमपूर्वक उस मेघ को 'स्वागतम्' ऐसा कहता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – प्रत्यासन्ने – प्रति+आ+सद्+क्त। **नभसि** – नभस् (नपुं०) सप्तमी एक.। **दयिताजीविताल्म्बनार्थी** – दयिताया जीवितं (ष.तत्पु.) दयिताजीवितं तस्य आलम्बनं तस्य अर्थी। **जीमूतेन** – जीवनस्य उदकस्य मूतः पटबन्धः जीमूतः (पृषोदरादित्वात्साधुः)। स्वकुशलमयीम् – स्वस्य कुशलम् (ष.तत्पु.) तेन प्रकृतमिति स्वकुशल+मयट् स्त्रियाम्। **प्रत्यग्रैः** – अग्रं प्रति गतः प्रत्यग्रः तैः। **स्वागतम्** – सु+आ+गम्+क्त, भावे आगतं, सुशोभनमागतम्।

धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः?

सन्देशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः?।

इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन्गुह्यकस्तं ययाचे

कामाऽऽर्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु।।5।।

अन्वयः – धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः मेघः क्व। पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः सन्देशार्थाः क्व। इति औत्सुक्यात् अपरिगणयन् गुह्यकः तं ययाचे। हि कामार्ताः चेतनाचेतनेषु प्रकृतिकृपणाः (भवन्ति)।

प्रसङ्ग – यक्ष मेघ को सन्देशवाहक बनाने का कारण स्पष्ट करता है।

शब्दार्थ – धूमज्योतिः सलिलमरुताम् – धुआँ, प्रकाश, जल एवं वायु का, सन्निपातः – मिश्रण, मेघः क्व – मेघ कहाँ, पटुकरणैः प्राणिभिः – सक्षम इन्द्रियों वाले प्राणियों के द्वारा, प्रापणीयाः – प्राप्त होने वाले, सन्देशार्थाः क्व – सन्देश की बातें कहाँ, इति – इस, औत्सुक्यात् – उत्सुकता से, गुह्यकः – यक्ष ने, तं ययाचे – उससे (मेघ से) याचना की, कामार्ताः – काम से पीड़ित, चेतनाचेतनेषु – सजीव एवं निर्जीव तत्त्वों के प्रति, प्रकृतिकृपणाः – विवेकशून्य, स्वभाव से दीन होते हैं।

अनुवाद – कहाँ धुआँ, प्रकाश, जल और वायु का मिश्रण मेघ और कहाँ समर्थ इन्द्रियों वाले प्राणियों द्वारा ले जा सकने वाली सन्देश की बातें। ऐसा सोचे बगैर ही यक्ष ने उस मेघ से प्रार्थना की, क्योंकि काम से ग्रस्त प्राणियों की प्रकृति जड़ एवं चेतन पदार्थों के प्रति विवेकशून्य हो जाया करती है।

व्याख्या – एक मेघ की संदेशवाहक के रूप में कल्पना करना अपने आप में ही उपहसनीय प्रतीत होता है, क्योंकि कहाँ धुएँ, प्रकाश, जल एवं वायु का सम्मिश्रण मेघ और कहाँ जीवन्त और सशक्त इन्द्रियों वालों के (सजीवों) द्वारा ले जा सकने वाली संदेश की बातें, लेकिन ऐसा संभव भी है, क्योंकि जब कामरूपी ज्वर से कोई पीड़ित होता है तो सजीव एवं निर्जीव तत्त्वों के प्रति वह काम से पीड़ित व्यक्ति विवेकशून्य हो जाता है अर्थात् उसे सजीव और निर्जीव तत्त्वों में कोई भेद नहीं दिखलाई पड़ता। इसी तरह से यक्ष भी कामपीड़ित हो कर जड़ चेतन का भेद किये बिना ही उत्कण्ठा से उस मेघ से प्रार्थना करता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – धूमज्योतिः सलिलमरुतां – धूमश्च ज्योतिश्च सलिलं च मरुच्च (द्वन्द्वसमास) तेषां संनिपातः (ष.तत्पु.)। **संनिपातः** – सम्+नि+पत्+घञ्। **पटुकरणैः** – पटूनि करणानि (इन्द्रियाणि) येषाम् तैः (ब.व्री.)। **प्रापणीयाः** – प्र+आप्+णिच्+अनीयर्। **औत्सुक्यात्** – उत्सुकस्य भावः औत्सुक्यम् तस्मात् कारणात्। अपरिगणयन् – न+परि+गण+अत् (शतृ)। **ययाचे** – याच्, लिट् लकार, प्र.पु.एक.। **कामार्ताः** – कामेन आर्ताः (तृ.तत्पु.)। **प्रकृतिकृपणाः** – प्रकृत्या कृपणाः (तृ.तत्पु.)। **चेतनाचेतनेषु** – चेतनाश्चाचेतनाश्च (द्वन्द्व) तेषु। गुह्यकः – गुह+अक् (ण्वुल)।

विशेष – प्रस्तुत पद्य में 'कामार्ता हि प्रकृति' यहाँ पर अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है, क्योंकि विशेष का सामान्य से समर्थन किया गया है और अर्थान्तरन्यास अलङ्कार में सामान्य का विशेष से अथवा विशेष का सामान्य से समर्थन होता है। क्व..क्व के द्वारा विषमता का बोध होता है अतः प्रस्तुत पद्य में विषमालङ्कार भी है।

जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां

जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः।

तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद् दूरबन्धुर्गतोऽहं

याञ्चा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा।।6।।

अन्वयः – हे मेघ! त्वां भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां वंशे जातं कामरूपं मघोनः प्रकृतिपुरुषं जानामि, तेन विधिवशात् दूरबन्धुः अहम् त्वयि अर्थित्वं गतः। अधिगुणे याञ्चा मोघा वरम् अधमे लब्धकामा न वरम्।

प्रसङ्ग – यक्ष मेघ के कुल का वर्णन करते हुए उससे सन्देश निर्वहन का कारण स्पष्ट करता है।

शब्दार्थ – त्वां भुवनविदिते – तुम भुवनों में प्रसिद्ध, पुष्करावर्तकानां वंशे जातम् – पुष्कर और आवर्तकों के कुल में जन्मे हो, कामरूपम् – इच्छानुसार रुप धारण करने वाले हो, मघोनः – इन्द्र के, प्रकृतिपुरुषम् – प्रकृति पुरुष हो, जानामि – जानता हूँ, विधिवशात् – भाग्यवश, दूरबन्धुः – दूर जिसके बन्धु (स्त्री) हैं ऐसा, अर्थित्वं गतः – याचक हुआ हूँ, अधिगुणे – अधिक गुण वाले से, मोघा (अपि) – निष्फल भी, अधमे – नीच के प्रति, लब्धकामा – पूर्ण हुई कामना भी, न वरम् –अच्छी नहीं होती।

अनुवाद – हे मेघ! तुम भुवनों में प्रसिद्ध पुष्कर और आवर्तक वंशो में उत्पन्न हुए हो। अपनी इच्छानुसार रूप भी धारण कर सकते हो। इन्द्र के प्रधान पुरुष हो यह भी जानता हूँ। इसलिये भाग्यवश दूर प्रेयसी वाला मैं (यक्ष) तुम्हारा याचक हुआ हूँ क्योंकि अधिक गुण वाले से की गई कोई कामना यदि निष्फल होती है तो भी अच्छी होती है, लेकिन किसी नीच से की गई कामना तो सफल भी अच्छी नहीं होती।

व्याख्या – यक्ष अपने सम्मुख स्थित उस मेघ की प्रंशसा करते हुए उसके कुल का वर्णन करता है जो कि सारे भुवनों में प्रसिद्ध है। कहता है कि मैं यह भी जानता हूँ कि तुम (मेघ) इन्द्र के खास हो इसलिये मैं यक्ष जो दुर्भाग्यवश अपनी पत्नी से दूर हो चला हूँ, तुम्हारी शरण में आया हूँ। यक्ष के सम्मुख उपस्थित मेघ गुणवान् है और याचना सर्वदा गुणवान् से ही करनी चाहिये चाहे वह सफल ना भी हो तो कोई फर्क नहीं पड़ता, लेकिन किसी अधम प्रवृत्ति या नीच कोटि वाले से की गई याचना कभी सफल भी हो जाये तो भी अच्छी नहीं कहलाती।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – कामरूपम् – कामकृतानि रूपाणि (मध्यमपदलोपी कर्म.) यस्य (ब. व्री.)। **मघोनः** – 'मघवत्' शब्द का ष.एक.। **प्रकृतिपुरुषम्** – प्रकृतिषु पुरुषः (प्रधानभूतः) (स. तत्पु.), अथवा प्रकृतिश्चासौ पुरुषश्च (कर्म. समास)। **दूरबन्धुः** – दूरः बन्धुर्यस्य सः (यक्षः), (ब. व्री.)। **अधिगुणे** – गुणमधिगतः प्रादि तत्पु. अथवा अधि (अधिकः) गुणो यस्य तस्मिन् (ब. व्री.)।

विशेष – प्रस्तुत पद्य में (याञ्चा मोघा वरमधिगुणे) इसमें विशेष का सामान्य से समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

सन्तप्तानां त्वमसि शरणं तत्पयोद! प्रियायाः

सन्देशं मे हर धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य।

गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणां

बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या।।7।।

अन्वयः – हे पयोद! त्वं सन्तप्तानां शरणं असि, तत् धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य मे सन्देशं प्रियायाः हर। ते यक्षेश्वराणां बाह्योद्यान-स्थित-हर-शिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या अलका नाम वसतिः गन्तव्या।

प्रसङ्ग – यक्ष मेघ को सन्देश के प्राप्तिस्थल के बारे में बताता है।

शब्दार्थ – हे पयोद! – हे मेघ, त्वं सन्तप्तानाम् – तुम ताप से पीड़ित लोगों की, शरणं असि – शरण हो, धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य मे – कुबेर के क्रोध से वियुक्त हुए मेरे, सन्देशं प्रियायाः – सन्देश को प्रिया तक, यक्षेश्वराणाम् – यक्षेश्वरों की, बाह्योद्यान – बाहर के उद्यान में, स्थित – रहने वाले, हरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या – शिव के सिर पर स्थित चन्द्रिका की चाँदनी से जहाँ के महल प्रकाशमान, धुले हुए हैं, अलका नाम वसतिः गन्तव्या – अलका नामक नगरी बसती है, जहाँ जाना है।

अनुवाद – हे मेघ! तुम सन्तप्त अर्थात ताप से पीड़ित लोगों की शरण हो। कुबेर के क्रोध से वियुक्त हो चुके मेरे सन्देश को मेरी प्रिया तक ले जाओ। तुम्हें यक्षेश्वरों की बाहर के उद्यान में स्थित शिव के सिर की चन्द्रमा की चाँदनी से प्रकाशित महलों वाली अलकापुरी नामक नगरी में जाना है।

व्याख्या – पुनः यक्ष उस मेघ की प्रंशसा करते हुए उसे अपना संदेश ले जाने के लिये कहता है। वह कहता है कि हे मेघ! तुम अत्यधिक ताप से पीड़ित लोगों की शरण हो क्योंकि जब भी कोई अधिक ताप का शिकार होता है तब वह यही कामना करता है कि कहीं से मेघ आये और उस ताप को दूर करे। ताप का कारण धूप भी हो सकती है और अपने प्रेमी या प्रेमिका से विरह भी। दोनों ही अवस्थाओं में मेघ सहायक होता है। अतः तुम सन्तप्तों की शरण हो। मैं (यक्ष) जो की धनराज कुबेर के शापवश अपनी प्रियतमा से वियुक्त हो चुका हूँ। अतः मेरे (यक्ष के) सन्देश को मेरी प्रियतमा तक ले जाओ। पुनः यक्ष मेघ को गन्तव्य स्थल बताते हुए कहता है की तुम्हें यक्षेश्वरों की ऐसी अलकापुरी नामक नगरी जाना है जहाँ बाहर उद्यान में शिव रहते हैं और उन शिव के सिर पर सदैव चन्द्रमा की चाँदनी होती है, जिससे वहाँ के महल धवल रहते हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – **पयोद** – पयः ददाति इति दा+क, सम्बोधन। **सन्तप्तानाम्** –सम्+तप्+क्त। **धनपतिक्रोध** – धनपतेः क्रोधेन। **विश्लेषितस्य** – वि+श्लिष्+णिच्+क्त, तस्य। **बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या** – बाह्य उद्याने स्थितस्य हरस्य शिरसि या चन्द्रिका तया धौतानि हर्म्याणि यस्यां सा तथोक्ता (ब.व्री.)।

विशेष – अलका कुबेर की राजधानी है। यह कैलाश पर्वत पर स्थित है जो कि हिमालय की एक चोटी है। प्रस्तुत पद्य में उदात्त अलङ्कार है।

त्वामारूढं पवनपदवीमुद्गृहीतालकान्ताः

प्रेक्षिष्यन्ते पथिकवनिताः प्रत्ययादाश्वसन्त्यः।

कः सन्नद्धे विरहविधुरां त्वय्युपेक्षेत जायां

न स्यादन्योऽप्यहमिव जनो यः पराधीनवृत्तिः।।8।।

अन्वयः – पवनपदवीम् आरूढं त्वां पथिकवनिताः प्रत्ययात् आश्वसन्त्यः उद्गृहीतालकान्ताः प्रेक्षिष्यन्ते। त्वयि संनद्धे विरहविधुरां जायां कः उपेक्षेत अन्यः अपि यः जनः अहम् इव पराधीनवृत्तिः न स्यात्।

प्रसङ्ग – मेघ को देखकर विरही जनों की स्थिति का वर्णन करते हैं।

शब्दार्थ – पवनपदवीम् – वायु मार्ग में, आरूढम् – चढे हुए, पथिकवनिताः – पथिकों की स्त्रियां, प्रत्ययात् – (पथिकों के घर वापस आने के) विश्वास से, आश्वसन्त्यः – आश्वासन रखे हुए, उद्गृहीतालकान्ताः – बालों के अगले भाग को उपर किये हुए, प्रेक्षिष्यन्ते – देखेंगी, त्वयि संनद्धे – तुम्हारे उमड़ आने पर, विरहविधुराम् – विरह से व्याकुल, जायाम् – पत्नी को, कः उपेक्षेत – कौन उपेक्षित करेगा, अन्यः अपि यः जनः – अन्य भी कौन व्यक्ति, पराधीनवृत्तिः न स्यात् – जिसकी आजीविका दूसरे के अधीन न हो।

अनुवाद – तुम्हें आकाश में चढे हुए परदेश गए हुए व्यक्तियों की स्त्रियां उनके घर वापस लौटने के विश्वास से अपने हाथ से बालों के अग्रभाग को उपर कर आशापूर्वक देखेंगी। तुम्हारे उमड़ आने पर विरह से व्याकुल पत्नी की उपेक्षा कौन व्यक्ति करेगा? जिसकी आजीविका मेरी तरह दूसरे के अधीन न हो।

व्याख्या – यक्ष का यह मेघ से कथन है की जब तुम अपने चरमोत्कर्ष पर होते हो, वायुमार्ग में व्याप्त होते हो तब बाहर गये हुए पथिकों की पत्नियां खुद के बालों को संवारती हुईं अपने हाथ से बालों के अग्रभाग को उपर उठाती हुईं, तुम्हें आशापूर्वक इस विश्वास से देखेंगी कि उनके पति घर वापस लौट कर आयेंगे। तुम्हारे उमड़ आने अर्थात् अपना चरम रूप धारण करने पर विरहज्वर से जो स्त्रियां पीड़ित हो जाती हैं उनकी उपेक्षा कौन पति करेगा? जो मेरी तरह दूसरे के अधीन न हो अर्थात् जो स्वतंत्र हैं वो कभी विरह से व्याकुल स्त्रियों की उपेक्षा नहीं करेंगे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – आरूढम् – आ+रुह्+क्त। **उद्गृहीतालकान्ताः** – उद्गृहीता अलकानामन्ताः याभिः ताः (ब.व्री.) उद्गृहीत उद्+ग्रह+ई+क्त। **पथिकवनिताः** – पन्थानं गच्छन्ति ते पथिकाः (ष्कन् प्रत्ययः) तेषां वनिताः प्रोषितभर्तृकाः। **प्रत्ययात् –** प्रति+इ+अच् भावे प्रत्ययः तस्मात्। **प्रेक्षिष्यन्ते –** प्र+ईक्ष्, लुट् प्र.पु.बहु.। **विरहविधुराम् –** विरहेण विधुरा ताम् (तृ. त.)। **पराधीनवृत्तिः –** परस्मिन्नधीना पराधीना वृत्तिर्यस्य (ब.व्री.)।

विशेष – प्रस्तुत पद्य में उत्तरार्ध में वर्णित प्रसिद्ध तथ्य के द्वारा पूर्वार्ध की विशेष बात का समर्थन किया गया है। अतः अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां

वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगन्धः।

गर्भाधानक्षणपरिचयान्नूनमाबद्धमालाः

सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः।।9।।

अन्वयः – अनुकूलः पवनः त्वां मन्दं मन्दं यथा नुदति। अयं सगन्धः चातकः ते वामः मधुरं नदति। गर्भाधानक्षणपरिचयात् खे आबद्धमालाः बलाकाः नयनसुभगं भवन्तं नूनं सेविष्यन्ते।

प्रसङ्ग – कालिदास आकाश गमन करते हुए वायु और पक्षियों से युक्त मेघ का बिम्ब उपस्थित करते हैं।

शब्दार्थ – अनुकूलः पवनः – अनुकूल वायु, त्वां मन्दं मन्दम् – तुम्हें धीरे-धीरे, यथा नुदति – जैसे ले जा रही है, ते वामः – तुम्हारे बाँईं ओर, मधुरं नदति – मधुर शब्द कर रहा है, गर्भाधानक्षणपरिचयात् – गर्भधारण (संभोग) के क्षण के आनन्द का परिचय होने से, खे – आकाश में, आबद्धमालाः – पंक्तियाँ बनाये हुए, बलाकाः – बगुलियाँ, नयनसुभगम् – आंखों को सुन्दर लगने वाले, भवन्तम् – आपकी (मेघ की), नूनम् – अवश्य, सेविष्यन्ते – सेवा करेंगी।

अनुवाद – अनुकूल पवन जैसे तुम्हें धीरे-धीरे ले जा रही है। यह चातक पक्षी तुम्हारे बाँयी ओर मधुर शब्द कर रहा है। गर्भाधान के आनन्द के अभ्यास के कारण, आकाश में पंक्तिबद्ध बगुलियाँ नयनों को सुन्दर लगने वाले तुम्हारी (मेघ की) अवश्य सेवा करेंगी।

व्याख्या – यक्ष मेघ को सन्देश ले जाते समय मार्ग में होने वाली अप्रतिम अनुभूति का वर्णन करते हुए कहता है कि जैसे हवा तूम्हारे अनुकूल होकर तुम्हें धीरे-धीरे ले जा रही है। यह अभिमानी चातक पक्षी तुम्हारे बाँयीं और मीठी ध्वनि उत्पन्न कर रहा है। मोर चातक आदि पक्षियों का बाँईं ओर से जाना शुभ माना जाता है। वे बगुलियाँ जिन्हें कि गर्भाधान अर्थात् संभोग से प्राप्त होने वाले आनन्द का अभ्यास है। संभोग से प्राप्त होने वाले उस आनन्द से परिचित वे तुम्हारे जैसे नयनों को सुन्दर लगने वाले मेघ को देखकर खुद को कैसे रोक

पाएंगी। अतः वह बगुलियाँ तुम्हें देखकर आकाश में पंक्तिबद्ध होकर अवश्य ही तुम्हारी सेवा करेंगी।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – मन्दं मन्दम् – इसका अर्थ 'बहुत धीरे' है। **वामः** – वामस्थः। **नुदति** – नुद्, लट् प्र.पु.एक.। **नदति** – नुद् (अव्यक्त शब्द करना) लट् प्र.पु.एक.। **गर्भाधानक्षण** – गर्भस्य आधानं तदेव क्षणः (उत्सवः) तस्मिन् परिचयात् (स.तत्पु.)। **आबद्धमालाः** – आबद्धाः मालाः याभिः (ब.व्री.) ताः। **नयनसुभगम्** – नयनयोः सुभगः (शेषषष्ठ्या समासः) तम्, **सेविष्यन्ते** – सेव्, लट्, प्र.पु.एक.।

विशेष – 'सगर्वः' इस पद का पाठान्तर 'सगन्धः' भी प्राप्त होता है। गन्ध का अर्थ है–'गर्व'। इसका एक और अर्थ है– 'सम्बन्धी'। यह भी उपर्युक्त पद्य में सङ्गत ही है क्योंकि बादल और चातक का आपस में सम्बन्ध माना जाता है। वर्षाकाल में बगुलियाँ पंक्तिबद्ध होकर गर्भ धारण करती हैं और इसके लिये वह मेघ के समीप जाकर प्रसन्न होती हैं।

तां चावश्यं दिवसगणनातत्परामेकपत्नी–

मव्यापन्नामविहतगतिर्द्रक्ष्यसि भ्रातृजायाम्।

आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां

सद्यः पाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि।।10।।

अन्वयः – (हे मेघ) दिवस-गणना-तत्पराम् अव्यापन्नाम् एकपत्नीं तां भ्रातृजायाम् अविहतगतिः अवश्यं द्रक्ष्यसि। आशाबन्धः कुसुमसदृशं विप्रयोगे सद्यः पाति अङ्गनानां प्रणयि हृदयं प्रायशः रुणद्धि।

प्रसङ्ग – कालिदास यक्षिणी की स्थिति का वर्णन करते हुए आशाबन्ध के बारे में बताते हैं।

शब्दार्थ – दिवसगणनातत्पराम् –दिनों की गणना में लगी हुई, अव्यापन्नाम् –जीवित (आशा में), एकपत्नीम् – पतिव्रता, तां भ्रातृजायाम् – उस भाई की पत्नी को, अविहतगतिः – बिना रुके जाता हुआ, अवश्यं द्रक्ष्यसि – अवश्य देखेगा, आशाबन्धः – आशा का बन्धन, कुसुमसदृ शम् – फूल की तरह, विप्रयोगे – वियोग में, सद्यः पाति – शीघ्र ही टूटने वाले, अङ्गनानाम् – स्त्रियों के, प्रणयि – प्रेम से युक्त, हृदयम् – हृदय को, प्रायशः – प्रायः, रुणद्धि – रोके रखता है।

अनुवाद – (हे मेघ!) दिन गिनने में तत्पर, आशा के कारण जीवित, पतिव्रता, उस भाई की पत्नी अर्थात भाभी को बिना रुके जाता हुआ अवश्य देखेगा। क्योंकि आशा का बन्धन फूलों की तरह वियोग (पति से) में जल्द टूट जाने वाले स्त्रियों के प्रेम से भरे हुए हृदय को प्रायः रोके रखता है।

व्याख्या – यक्ष मेघ को स्वयं की पत्नी की स्थिति बताते हुए कहता है कि हे मेघ! जब तुम अविहत गति अर्थात निरन्तर बिना रुके हुए जाओगे तो शाप की अवधि के दिन गिनने में तत्पर अर्थात् मेरे वियोग के दिनों की गणना करने में लगी हुई बस इस इंतजार में की यह एक वर्ष कब खत्म होगा और मैं उनसे मिलूंगी, मात्र मुझसे मिलने की आशा के कारण जीवित, पतिव्रता, तुम्हारे भाई की पत्नी अर्थात् तुम्हारी भाभी को तुम अवश्य देखोगे। यहाँ यक्ष ने कहा है की उसकी पत्नी आशामात्र से जीवित है, क्योंकि आशा ऐसा बन्धन है जो स्त्रियों के हृदय को टूटने से रोके रखता है, वरना उनका हृदय पति के वियोग में फूलों की तरह शीघ्र ही टूट जाता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – दिवसगणनातत्पराम् – दिवसानां गणनायां तत्परा ताम् (स. तत्पु.)। **अव्यापन्नाम् –** अ (नञ्) वि+आ+पद्,+क्त। **एकपत्नीम् –** एकः पतिः यस्याः इति (ब. व्री.)। **अविहतगतिः –** न विहता गतिर्यस्य (ब.व्री)। **विहत –** वि+हन्+त(क्त)। **द्रक्ष्यसि** – दृश, लृट् म.पु.एक.। **भ्रातृजायाम् –** भ्रातुः जायाम् (ष.त.)। **कुसुमसदृशम् –** कुसुमेन सदृशम् (तृ. तत्पु.)। **अङ्गनानाम्** – प्रशस्तानि अङ्गानि आसाम्, इति अङ्गनाः तासाम्।

विशेष – 'कुसुमसदृशं' पद में उपमा है। आशाबन्धः इस पद में रूपक है। उत्तरार्ध में वर्णित प्रसिद्ध तथ्य के द्वारा पूर्वार्ध का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलङ्कार भी है।

कर्तुं यच्च प्रभवति महीमुच्छिलीन्ध्रातपत्रां

तच्छ्रुत्वा ते श्रवणसुभगं गर्जितं मानसोत्काः।

आ कैलासाद् बिसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः

सम्पत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसाः सहायाः।।11।।

अन्वयः – यत् च महीम् उच्छिलीन्ध्रातपत्रां कर्तुं प्रभवति, तत् श्रवणसुभगं ते गर्जितं श्रुत्वा मानसोत्काः बिसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः राजहंसाः नभसि आ कैलासात् भवतः सहायाः सम्पत्स्यन्ते।

प्रसङ्ग – कालिदास मेघ के मार्ग में राजहंस को साथी बनाते हैं।

शब्दार्थ – यत् च महीम् – जो कि पृथिवी को, उच्छिलीन्ध्रातपत्राम् – उठी हुई कन्दलिकाओं वाली, कर्तुं प्रभवति – करने में समर्थ है, श्रवणसुभगम् – सुनने में आनन्दरूपी, ते गर्जितम् – तुम्हारा गर्जन, श्रुत्वा – सुनकर, मानसोत्काः – मानसरोवर जाने के लिये उत्सुक, बिसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः – कमल की नाल के अग्रभाग के टुकड़ों को मार्ग का भोजन (पाथेय) बनाये हुए, नभसि – आकाश में, आ कैलासात् – कैलास पर्वत तक, भवतः – तुम्हारे, सहायाः– साथी, सम्पत्स्यन्ते – हो जायेंगे।

अनुवाद – पृथिवी को भी उठी हुई कन्दलिकाओं वाली बना देने में समर्थ, कानों को सुख देने वाला तुम्हारा गर्जन सुनकर मानसरोवर को जाने के इच्छुक, कमलनाल के अग्रभाग के टुकड़ों को मार्ग का भोजन बनाने वाले राजहंस कैलास पर्वत तक तुम्हारे साथ जायेंगे।

व्याख्या – यक्ष मेघ से मार्ग की सुगमता का वर्णन करते हुए कहता है की तुम्हारा गर्जन जो कि पृथिवी को भी उठी हुई कन्दलिकाओं वाली बना देता है और कर्णसुप्रिय भी है। तुम्हारी ऐसी कानों को सुख देने वाली गर्जना को सुनकर, मानसरोवर जाने की इच्छा रखने वाले जो राजहंस हैं, वे राजहंस कमल की नाल के अग्रभाग के टुकड़ों को पाथेय अर्थात् मार्ग का भोजन बनाकर अपने पास रखते हैं। ऐसे राजहंस कैलास पर्वत जो की हिमालय के उत्तर में स्थित है, वहाँ तक तुम्हारे साथ जायेंगे क्योंकि मानस झील कैलास के सन्निकट है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – उच्छिलीन्ध्रातपत्राम् – उद्गतानि शिलीन्ध्राणि एव आतपत्राणि यस्याम् (ब.व्री.)। **प्रभवति** – प्र,भू लट् प्र.पु.एक.। **श्रुत्वा** – श्रु+क्त्वा। मानसोत्काः –मानसे सरसि उत्काः (स.तत्पु.)। **बिसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः** – बिसस्य किसलयानि (प.तत्पु.) तेषां छेदाः (ष.तत्पु.) एव पाथेयं, तदस्ति येषाम् इति (ब.वी.)। **पाथेयवन्तः** – पथि साधु पाथेयं पथि भोज्यं तद्वन्तः। **नभसि** – नभस् शब्द नपुं., सप्त.एक.।

आपृच्छस्व प्रियसखममुं तुङ्गमालिङ्ग्य शैलं

वन्द्यैः पुंसां रघुपतिपदैरङ्कितं मेखलासु।

काले काले भवति भवतो यस्य संयोगमेत्य

स्नेहव्यक्तिश्चिरविरहजं मुञ्चतो बाष्पमुष्णम्।।12।।

अन्वयः – पुंसां वन्द्यैः रघुपतिपदैः मेखलासु अङ्कितं तुङ्गम् अमुं प्रियसखं शैलम् आलिङ्ग्य आपृच्छस्व, काले काले भवतः संयोगम् एत्य यस्य चिर विरहजम् उष्णं बाष्पं मुञ्चतः स्नेहव्यक्तिः भवति।

प्रसङ्ग – यक्ष मेघ को जाने से पहले अपने मित्र रामगिरी पर्वत से अनुमति एवं आलिङ्गन का परामर्श देता है।

शब्दार्थ – पुंसाम् –लोगों के, वन्द्यैः – पूजनीय, रघुपतिपदैः – श्रीराम के चरणों से, मेखलासु – मध्य भाग में, अङ्कितम् – चिह्नित, तुङ्गम् – उँचे, अमुं प्रियसखम् – इस प्रियमित्र, शैलम् – पर्वत (रामगिरी) को, आलिङ्ग्य – गले लगाकर, आपृच्छस्व – जाने की अनुमति लो, काले-काले – प्रत्येक वर्षाकाल में, भवतः संयोगम् – तुम्हारे संयोग को, एत्य – प्राप्त कर, यस्य – जिसका, चिरविरहजम् – लम्बे विरहकाल के यापन से उत्पन्न, बाष्पम् – अश्रु, मुञ्चतः – छोड़ते हुए, स्नेहव्यक्तिः – प्रेम का प्रकाशन, भवति – होता है।

अनुवाद – लोगों के पूज्य श्रीरामचन्द्र के चरणकमल जहाँ मध्यभाग में चिह्नित हों ऐसे प्रियमित्र उँचे पर्वत (रामगिरी) को गले लगाकर (यहाँ से) जाने की अनुमति लो। प्रत्येक वर्षाकाल में तुम्हारे संयोग को पाकर, देर तक विरह पीड़ा को भोगने से उत्पन्न गर्म आंसुओं को छोड़ते हुए जिसका (पर्वत का) प्रेम प्रकाशित होता रहता है।

व्याख्या – यक्ष मेघ से उस रामगिरी पर्वत के माहात्म्य का वर्णन करते हुए कहता है कि ऐसा पर्वत जहाँ की मेखला पर लोगों के पूजनीय प्रभु श्रीराम के पदचिह्न अङ्कित हैं। यक्ष पर्वत को प्रियमित्र कहता है क्योंकि यह पर्वत विरहकाल में उसका आश्रय भी है एवं मेघ के दर्शन का हेतु भी है। यह पर्वत मेघ का भी प्रियमित्र है, क्योंकि यह पर्वत केवल वर्षाकाल में ही मेघ से मिल पाता है शेष काल में पर्वत और मेघ का भी विरह ही रहता है। इस चिरस्थायी अर्थात् देर तक रहने वाले विरह के कष्टदायक होने के कारण जब भी वर्षाकाल में मेघ पर्वत से मिलता है, तो वह विरह काल में अपने दबाए हुए गर्म आँसुओं को बाहर निकालता है। मेघ के सम्मुख अपना प्रेम प्रकट करता है। ऐसे प्रियमित्र को गले लगाकर यहाँ से जाने की आज्ञा लेने के लिये यक्ष मेघ से कहता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – आपृच्छस्व – आ+प्रच्छ्, लोट् म.पु.एक.। 'आ' उपसर्ग के योग में यह धातु 'आङि नु प्रच्छयोः' से आत्मनेपदी हो जाती है। **प्रियसखम्** – प्रियश्चासौ सखा च (कर्मधा.) तम्। **आलिङ्ग्य** – आ+लिङ्ग+य (ल्यप्)। **चिरविरहजम्** – चिरविरहात् जातः चिरविरहजः तम्।

मार्गं तावच्छृणु कथयतस्त्वत्प्रयाणानुरूपं
सन्देशं मे तदनु जलद! श्रोष्यसि श्रोत्रपेयम्।
खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदं न्यस्य गन्तासि यत्र
क्षीणः क्षीणः परिलघु पयः स्रोतसां चोपभुज्य।।13।।

अन्वयः – (हे) जलद! तावत् कथयतः त्वत्प्रयाणानुरूपं मार्गं श्रृणु, यत्र खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदं न्यस्य, क्षीणः क्षीणः स्रोतसां परिलघु पयः उपभुज्य च गन्तासि, तदनु श्रोत्रपेयं मे सन्देशं श्रोष्यसि।

प्रसङ्ग – प्रकृत पद्य में यक्ष मेघ को उसकी यात्रा का सुरुचिकर मार्ग बतला रहा है।

शब्दार्थ – (हे) जलद! – हे मेघ, तावत् – अब पहले, कथयतः – कहने वाले से अर्थात् मुझसे, त्वत्प्रयाणानुरूपम् – तुम्हारी यात्रा के अनुरूप, श्रृणु – (मुझसे) सुन लो, यत्र – जहाँ, खिन्नः खिन्नः – थक थक कर, शिखरिषु – पर्वतों पर, पदं न्यस्य – पैरों को रखकर, क्षीणः क्षीणः – पुनः पुनः दुर्बल हो चुका, स्रोतसाम् –नदियों का, परिलघु – हल्का, उपभुज्य – उपयोग करके, च गन्तासि – जायेगा, श्रोत्रपेयम् – कान से पीने योग्य (कर्णप्रिय)। सन्देशं श्रोष्यसि – सन्देश सुनेगा।

अनुवाद – (हे) मेघ पहले तुम्हारी यात्रा के योग्य मार्ग को मुझसे सुन लो। (मार्ग में) जहाँ थक हारकर पर्वतों पर (अपने) पैरों को रखकर, (पहाड़ों से टकराने के कारण) नदियों के बार-बार दुर्बल हो चुके हल्के जल का भोग करके, तब (रास्ता सुनने के पश्चात्) कर्णों को अत्यन्त प्रिय लगने वाले मेरे सन्देश को सुनना।

व्याख्या – मेघ की यात्रा सुख से बीते इस प्रयोजन से यक्ष मेघ से कहता है कि मेरा सन्देश सुनने से पहले तुम्हें यह जान लेना आवश्यक है कि तुम्हारी यात्रा के अनुरूप मार्ग कैसा और कौन सा होगा। यक्ष कहता है की थक हारकर जब तुम परेशान हो जाओगे तो अपने पैर पर्वतों पर जमा लेना अर्थात् पर्वतों पर विश्राम करना। पर्वतों से निकलने वाली नदियां पत्थरों से टकराने के कारण अत्यन्त दुर्बल हो जातीं हैं और उनका जल बहुत हल्का हो जाता है। अतः जल को परिलघु कहते हुए यक्ष मेघ को उसका पान करने का परामर्श देता है। यक्ष चाहता है मार्ग के विषय में जानने के पश्चात् ही मेघ को सन्देश सुनाया जाये। अतः यक्ष कहता है कि इसके पश्चात् अर्थात् यह सब मार्ग का विवरण जान लेने के बाद ही कानों को अत्यन्त प्रिय लगने वाले मेरे सन्देश को (जिसे मेरी प्रियतमा तक पहुँचाना है) तुम सुनो।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – जलद – जलं ददातीति जलदः। **कथयतः** – कथ्+अतः ष. एक.। **त्वत्प्रयाणानुरूपम्** – तव प्रयाणं तस्य अनुरूपः तम (ष०.तत्पु.)। **खिन्नः खिन्नः** – 'नित्यवीप्सयोः' इति नित्यार्थे द्विर्भावः खिन्नः खिद्+(क्त)। **गन्तासि** – गम् लुट, म.पु.एक.। **श्रोष्यसि** – श्रु, लट्, म.पु.एक.।

अद्रेः शृङ्गं हरति पवनः किंस्विदित्युन्मुखीभि–

र्दृष्टोत्साहश्चकितचकितं मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः।

स्थानादस्मात्सरसनिचुलादुत्पतोदङ्मुखः खं

दिङ्नागानां पथि परिहरन्स्थूलहस्तावलेपान्।।14।।

अन्वयः – पवनः अद्रेः शृङ्गं हरति किंस्वित् इति उन्मुखीभिः मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः चकितचकितं दृष्टोत्साहः सरसनिचुलात् अस्मात् स्थानात् पथि दिङ्नागानां स्थूलहस्तावलेपान् परिहरन् उदङ्मुखः खम् उत्पत्।

प्रसङ्ग – यक्ष मार्ग में सिद्धपुरुषों की पत्नियों द्वारा मेघ के दर्शन और दिङ्नाग रुपी रुकावट का वर्णन करता है।

शब्दार्थ – पवनः – वायु, अद्रेः – पर्वत की, शृङ्गम् – चोटी, शिखर को, हरति – ले जाता है, किंस्वित् – क्या, उन्मुखीभिः – ऊँचा मुंह किये हुए, मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः – भोली भाली सिद्ध (पुरुषों) की स्त्रियों के द्वारा, चकितचकितम् – अत्यन्त आश्चर्य के साथ, दृष्टोत्साहः – देखे गये उत्साह वाला, सरसनिचुलात् – गीली बेतों वाले, अस्मात् स्थानात् – इस स्थान से, पथि – मार्ग में, दिङ्नागानाम् – दिशाओं के गजों से, स्थूलहस्तावलेपान् –

मोटी सूंडों के प्रहारों को, परिहरन् – दूर करता हुआ, उदङ्मुखः – उत्तर दिशा की और मुख किये हुए।

अनुवाद – क्या वायु पर्वत के शिखर अर्थात् चोटी को उड़ा कर ले जा रही है? ऐसा उँचा मुख किये हुए अत्यन्त उत्साह के साथ सिद्ध पुरुषों की भोली भाली स्त्रियों के द्वारा बड़े आश्चर्य से देखे जाने वाले तुम (मेघ), गीली बेंत वाले इस स्थान से दिशाओं के हाथियों (दिग्गजों) की मोटी मोटी सूंडों के प्रहार से बचते हुए उत्तर दिशा की ओर मुख किये हुए आकाश को उड़ जाना।

व्याख्या – यक्ष मेघ से कहता है की सबसे पहले वह उत्तर दिशा की ओर उड़े। जब वह यहाँ से उड़ेगा तब सिद्ध पुरुषों अर्थात् तपस्वियों की पत्नियाँ जो स्वभावतः सरल होती हैं, तुझ बड़े उत्साह वाले मेघ को अपना मुँह उपर उठाये आश्चर्य के साथ देखेंगी एवं सोचेंगी कि क्या यह पवन पर्वत के शिखर को उड़ाये ले जा रही है? यक्ष मेघ को मार्ग में आने वाली कठिनाईयों के बारे में भी बताता है कि दिशाओं के हाथी अपनी बड़ी बड़ी सूंडों से तुम पर प्रहार करेंगे लेकिन उनसे बचते हुए गीली बेंतो से युक्त इस स्थान से उत्तर दिशा की ओर उड़ जाना।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अद्रेः – अद्रि, ष.एक.। किंस्वित् – (अव्यय) किंस्विच्छब्दो वितर्काऽर्थे। **उन्मुखीभिः** – उद्–ऊर्ध्व+मुखं यासां ताः ताभिः (ब.व्री.)। **मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः** – मुग्धाभिः सिद्धानामङ्गनाभिः (ष.तत्पु.)। **दृष्टोत्साहः** – दृष्ट उत्साहः यस्य सः (ब.व्री.)। चकित-चकितम् – 'प्रकारे गुणवचनस्य' इति प्रकारार्थे द्विर्भावः। सरसनिचुलात् – सरसाः निचुलाः यस्मिन् (ब. व्री.)। **दिङ्नागानाम्** – दिशां नागाः हस्तिनस्तेषाम् (ष.त.)। **स्थूलहस्तावलेपान्** – स्थूला ये हस्ताः तेषाम् अवलेपान्।

विशेष – प्रस्तुत पद्य में अभेदोक्ति सन्देहालङ्कार है। प्रस्तुत पद्य में दिङ्नाग से तात्पर्य दिङ्नाग कवि से भी माना जाता है। दिङ्नाग कवि कालिदास के काल में उनके प्रतिद्वन्दी माने जाते थे। अतः कहा जाता है कि कालिदास ने इस पद्य की रचना दिङ्नाग कवि के विषय में की है। यहाँ वे अपनी इस मेघदूत नामक रचना को दिङ्नाग कवि के मोटे मोटे प्रहारों से दूर करते हुए आसमान की ऊँचाईयों तक पहुँचने को प्रेरित करते हैं।

रत्नच्छायाऽऽव्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेतत्पुरस्ता–

द्वल्मीकाग्रात्प्रभवति धनुष्खण्डमाखण्डलस्य।

येन श्यामं वपुरतितरां कान्तिमापत्स्यते ते

बर्हेणेव स्फुरितरुचिना गोपवेषस्य विष्णोः।।15।।

अन्वयः – रत्नच्छायाव्यतिकरः इव प्रेक्ष्यम् आखण्डलस्य एतत् धनुष्खण्डम् पुरस्तात् वल्मीकाग्रात् प्रभवति। येन ते श्यामं वपुः स्फुरितरुचिना बर्हेण गोपवेशस्य विष्णोः (श्यामं वपुः) इव अतितरां कान्तिम् आपत्स्यते।

प्रसङ्ग – इन्द्रधनुष के संपर्क में आकर मेघ की कान्तिमत् शोभा कैसी होगी? यह यक्ष मेघ को बतलाता है।

शब्दार्थ – रत्नच्छायाव्यतिकर – रत्नों की कान्ति के मिश्रण, इव – के समान, प्रेक्ष्यम् – दर्शनीय, आखण्डलस्य – इन्द्र का, एतत् – यह, धनुष्खण्डम् – धनुष का टुकड़ा, पुरस्तात् – सामने से, वल्मीकाग्रात् – वल्मी के अग्रभाग से, प्रभवति – निकल रहा है, श्यामम् – साँवला, वपुः – शरीर, स्फुरितरुचिना – उज्ज्वल कान्ति वाले, बर्हेण – मोरपंख से, गोपवेशस्य – गोपालवेश (कृष्णवेश) को धारण किये हुए, विष्णोः (श्यामं वपुः) इव – विष्णु के समान, अतितराम् – अत्यधिक, कान्तिम् – कान्ति को, आपत्स्यते – प्राप्त करेगा।

अनुवाद – रत्नों की कान्ति के सम्मिश्रण के समान सामने बाम्बी के अग्रभाग से यह इन्द्रधनुष का खण्ड निकल रहा है जिस तरह उज्ज्वल कान्ति वाले मोर पंख से कृष्ण का वेश धारण किये हुए श्रीविष्णु शोभा को प्राप्त होते हैं, उसी तरह तुम्हारा यह साँवला शरीर मार्ग में इस इन्द्रधनुष के टुकड़े से अत्यधिक शोभा को प्राप्त करेगा।

व्याख्या – प्रस्तुत पद्य में इन्द्रधनुष के संसर्ग से मेघ कैसी शोभा को प्राप्त करेगा? यह वर्णन है। अतः सर्वप्रथम इन्द्रधनुष का वर्णन करते हुए यक्ष कहता है कि सामने स्थित यह इन्द्रधनुष रत्नों की शोभा के मिश्रण के समान है। कई प्रकार के रत्नों की शोभा इसमें मिली हुई प्रतीत होती है। यह दर्शनीय है अर्थात् सुंदर एवं देखने योग्य है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह इन्द्रधनुष वल्मी (चींटियों य दीमक द्वारा मिट्टी में बनाया हुआ बड़ा सा घर जिसे बाम्बी भी कहा जाता है) के अग्रभाग से निकल रहा है। यक्ष मेघ से कहता है कि जब मार्ग में इस इन्द्रधनुष के साथ तुम्हारा संसर्ग होगा, तो यह इन्द्रधनुष तुम्हारे साँवले शरीर को उसी तरह शोभायमान कर देगा जिस तरह उज्ज्वल कान्तियुक्त मोरपंख से गोपाल वेष को धारण किये श्रीविष्णु का (अर्थात् श्रीकृष्ण का) साँवला शरीर शोभायमान होता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – **रत्नच्छाया** – रत्नानां छायानां व्यतिकरो मिश्रणम्। **व्यतिकर** – वि+अति+कृअप् भावे। **आखण्डलस्य** – आ समन्तात् खण्डयति पर्वतान् आखण्डलः तस्य। आ+खण्ड+अल (कलच्)। **पुरस्तात्** – पूर्वस्यां दिशि इति अस्ताति स्वार्थे। **स्फुरितरुचिना** – स्फुरिता रुचिर्यस्य (ब.ब्री.)। **गोपवेषस्य** – गाः पाति इति गोपः, गोपस्य वेषो यस्य स तस्य (ब. व्री.)।

त्वय्यायत्तं कृषिफलमिति भ्रूविलासानभिज्ञैः

प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनैः पीयमानः।

सद्यः सीरोत्कषणसुरभि क्षेत्रमारुह्य मालं

किञ्चित्पश्चाद् व्रज लघुगतिर्भूय एवोत्तरेण।।16।।

अन्वयः – कृषिफलं त्वयि आयत्तम् इति भ्रूविलासानभिज्ञैः प्रीतिस्निग्धैः जनपदवधूलोचनैः पीयमानः (सन्) मालं क्षेत्रं सद्यः सीरोत्कषणसुरभि आरुह्य किञ्चित् पश्चात् व्रज, भूयः लघुगतिः (सन्) उत्तरेण एव।

प्रसङ्ग – प्रकृत स्थल पर यक्ष मेघ को सम्मान देते हुए मार्गक्रम का वर्णन करते हैं।

शब्दार्थ – कृषिफलम् – खेती का फल, त्वयि आयत्तम् – तुम्हारे अधीन है, इति – ऐसा, भ्रूविलासानभिज्ञैः – भौहों के आह्लादक सञ्चालन को न जानने वालियों के, प्रीतिस्निग्धैः – स्वाभाविक प्रेम से, जनपदवधूलोचनैः – ग्रामवासियों की पत्नियों के नेत्रों द्वारा, मालं क्षेत्रम् – मालपर्वत के क्षेत्र पर (वर्तमान मालवा क्षेत्र), सद्यः – तुरन्त, सीरोत्कषणसुरभि – हल द्वारा खुदाई से सुगन्धित, आरुह्य – चढकर, किञ्चित् – थोड़ा, पश्चात् – पश्चिम की ओर, व्रज – जाकर, भूयः – फिर, उत्तरेण एव – उत्तरमार्ग की ओर ही चले जाना।

अनुवाद – कृषि का फल तुम्हारे अधीन है इसलिये भौहों के आह्लादक सञ्चालन से अपरिचित ग्रामवासियों की स्त्रियों के नेत्रों द्वारा स्वाभाविक प्रेम से देखे जाते हुए तुम मालपर्वत पर जो की हल चलाने से सुगन्धित हो, चढ जाना। उसके बाद थोड़ा पश्चिम दिशा की और जाकर फिर द्रुतगति से उत्तर दिशा की ओर ही जाना।

व्याख्या – मेघ को मार्ग बतलाता हुआ यक्ष कहता है कि कृषि फल तुम्हारे अधीन है अर्थात् तुमसे ही वर्षा होती है और जब वर्षा होगी तो कृषि फलेगी। इसलिये जब तुम यहाँ से मेरा सन्देश लेकर जाओगे तब मार्ग में ग्रामवासियों की पत्नियाँ तुम्हें अत्यन्त ही प्रेम भरी दृष्टि से देखेंगी, अपने नेत्रों से तुम्हारा पान करेंगी। वे स्त्रियाँ भ्रूविलासों से भी अनभिज्ञ हैं। उन स्त्रियों के द्वारा देखे जाते हुए तुम मालपर्वत (मालवा का पठार) पर चढ़ जाना, जो कि अभी ही जोता गया है। अतः तुम्हारे वहाँ पानी बरसा देने से वहाँ की भूमि अत्यन्त ही सुगन्धित हो जायेगी। तत्पश्चात् कुछ पश्चिम दिशा की ओर जाकर वापस उत्तरमार्ग की ओर प्रवृत्त हो जाना।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – आयत्तम् –आ+यम्+क्त। **भ्रूविलासानभिज्ञैः –** भ्रूवोः विलासानाम् अनभिज्ञैः। न अभिज्ञानि अनभिज्ञानि (लोचनानि) तैः। **प्रीतिस्निग्धैः –** प्रीत्या स्निग्धैः (तृ.तत्पु.)। **जनपदवधूलोचनैः –** जनपदस्य वधूनां लोचनैः (ष.तत्पु.),

त्वामासारप्रशमितवनोपप्लवं साधु मूर्ध्ना

वक्ष्यत्यध्वश्रमपरिगतं सानुमानाम्रकूटः।

न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय

प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किं पुनर्यस्तथोच्चैः।।17।।

अन्वयः – आम्रकूटः सानुमान् आसारप्रशमितवनोपप्लवम् अध्वश्रमपरिगतं त्वाम् साधु मूर्ध्नां वक्ष्यति, क्षुद्रोऽपि संश्रयाय मित्रे प्राप्ते प्रथमसुकृतापेक्षया विमुखो न भवति, यः तथा उच्चैः (सः) किं पुनः।

प्रसङ्ग – प्रकृत पद्य में आम्रकूट पर्वत के द्वारा मेघ के अतिथि सत्कार का वर्णन किया गया है।

शब्दार्थ – सानुमान् – पर्वत (चोटी वाला), आसारप्रशमितवनोपप्लवम् – मूसलाधारवर्षा से वन के उत्पात अर्थात् अग्नि को शान्त कर देने वाले, अध्वश्रमपरिगतम् – मार्ग की थकान से युक्त, त्वाम् – तुम्हें, साधु – अच्छी तरह से, मूर्ध्नाम् – सिर अर्थात् शिखर पर, वक्ष्यति – धारण करेगा, क्षुद्रोऽपि – कोई क्षुद्र भी, संश्रयाय – आश्रय के लिये, मित्रे प्राप्ते – मित्र के आने पर, प्रथमसुकृतापेक्षया – पहले उस पर किये उपकार को याद करके, विमुखो न भवति – पीछे नहीं हटता है।

अनुवाद – मूसलाधारवर्षा से वन की अग्नि को मिटा देने वाले तुम्हें (मेघ को) यात्रा से थके हुए देखकर आम्रकूटपर्वत भली-भाँति तुम्हें अपने सिर पर बैठा लेगा (अतिथिसत्कार करेगा)। (क्योकिं) कोई नीच व्यक्ति भी अपने मित्र के पूर्व में किये हुए उपकार को याद करके विमुख नहीं होता है, और जो उच्च (आम्रकूट पर्वत) हो उसका तो कहना ही क्या?

व्याख्या – यक्ष मेघ को मार्ग बतलाता हुआ कहता है कि वन में लगी भीषण अग्नि और उत्पात का अपनी मूसलाधार वर्षा से नाश कर देने वाले तुम्हें मार्ग में यात्रावश थका हुआ जब आम्रकूट (वर्तमान अमरकंटक) पर्वत देखेगा तो अवश्य ही अपने शिखर अर्थात् चोटी पर तुम्हें स्थान देगा। इस विषय को पुष्ट करते हुए यक्ष कहता है कि पूर्व में किये हुए उपकारों को याद करके कोई क्षुद्र अर्थात् तुच्छ प्राणी भी अपने मित्र को जरूरत पड़ने पर आश्रय अवश्य देता है, फिर यह तो विशालकाय महान् आम्रकूट पर्वत है। यह कैसे तुम्हारा अतिथि सत्कार नहीं करेगा? यहाँ यक्ष स्वयं को भी उपकृत मानकर मेघ को संकेत दे रहा है कि वह मेघ का उपकार कभी नहीं भूलेगा।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – **सानुमान् –** सानूनि अस्य सन्तीति+मतुप्। **आम्रकूटः –** आम्राः आम्रवृक्षाः कूटेषु शृंगेषु यस्य, अथवा आम्राणां कूटः समूहः यत्र (ब.ब्री.) **आसारप्रशमितवनोपप्लवम् –** आसारेण (आ+सृ+घञ्, भावे आसारः) धारापातेन प्रशमितो वनोपप्लवो दावाग्निः येन (ब.वी.)। **वनोपप्लवम् –** उप+प्लु+अप भावे उपप्लवः (उत्पातः)। **अध्वश्रमपरिगतम् –** अध्वनः श्रमेण मार्गस्य खेदेन परिगतं व्याप्तम्।

छन्नोपान्तः परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रै–

स्त्वय्यारूढे शिखरमचलः स्निग्धवेणीसवर्णे।

नूनं यास्यत्यमरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्थां

मध्ये श्यामः स्तन इव भुवः शेषविस्तारपाण्डुः।।18।।

अन्वयः – परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रैः छन्नोपान्तः अचलः स्निग्धवेणीसवर्णे त्वयि शिखरम् आरूढे (सति) मध्ये श्यामः शेषविस्तारपाण्डुः भुवः स्तनः इव नूनम् अमरमिथुनप्रेक्षणीयाम् अवस्थाम् यास्यति।

प्रसङ्ग – यक्ष मेघ को बताता है कि तुम्हारे चारों और आम के पीले वृक्ष और मध्य में तुम काले वर्ण के देवलोक से किस तरह दिखाई दोगे?

शब्दार्थ – परिणतफलद्योतिभिः – पके हुए फलों से सुशोभित, काननाम्रैः – वन के आम्रवृक्षों से, छन्नोपान्तः – आच्छादित पाशर्वभाग, मध्ये श्यामः – मध्यभाग में काला, शेषविस्तारपाण्डुः – शेष विस्तृत भाग पीला (गौरवर्ण), भुवः – पृथ्वी के, नूनम् – अवश्य, अमरमिथुनप्रेक्षणीयाम् – देवदम्पतियों के देखने योग्य।

अनुवाद – पके हुए फलों से सुशोभित वन के आम्रवृक्षों से आच्छादित (घिरा हुआ) आम्रकूटपर्वत, चिकनी बालों की चोटी के समान (काले) रंग वाले तुम्हारे पर्वत की चोटी पर चढ जाने से बीच में काला एवं शेष विस्तृत भाग में पीला (गौरवर्ण), पृथ्वी के स्तन के समान अवश्य ही देवदम्पतियों के द्वारा दर्शनीय अवस्था को प्राप्त होगा।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – स्निग्धवेणीसवर्णे –स्निग्धा तैलचिक्कणा या वेणी केशपाशः तस्याः समानः वर्णः यस्य सः, तस्मिन् (ब.व्री.)। **स्निग्धः –** स्निह्+क्त। **आरूढे –** आ+रुह्+क्त। **काननाः –** काननेषु भवाः आम्राः तैः (मध्यमपदलोपी कर्म.)। **छन्नोपान्तः –** छन्ना आवृता उपान्ताः पार्श्वभागाः यस्य सः (ब.व्री.)।

स्थित्वा तस्मिन्वनचरवधूभुक्तकुञ्जे मुहूर्तं

तोयोत्सर्गद्रुततरगतिस्तत्परं वर्त्म तीर्णः।

रेवां द्रक्ष्यस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णा

भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमङ्गे गजस्य।।19।।

अन्वयः – वनचरवधूभुक्तकुञ्जे तस्मिन् मुहूर्तम् स्थित्वा तोयोत्सर्गद्रुततरगतिः तत्परं वर्त्म तीर्णः उपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णाम् रेवाम् गजस्य अङ्गे भक्तिच्छेदैः विरचिताम् भूतिम् इव द्रक्ष्यसि।

प्रसङ्ग – आम्रकूट पर्वत के उपरान्त यहाँ यक्ष नर्मदा नदी के स्वरूप को बतलाता है।

शब्दार्थ – वनचरवधूभुक्तकुञ्जे – वन में रहने वालों की स्त्रियों द्वारा उपभुक्त लताकुञ्जों वाले, मुहूर्तम् – कुछ क्षण, स्थित्वा – रुककर, तोयोत्सर्गद्रुततरगतिः – जल का उत्सर्ग (वर्षा) कर देने के कारण तीव्र गति वाला, वर्त्म – मार्ग को, तीर्णः – पार करके, उपलविषमे – पत्थरों के कारण उँची नीची, विन्ध्यपादे – विन्ध्याचल की उपत्यका (तलहटी) में, विरचिताम् – बनाई हुई, भूतिम् – सजावट के, इव द्रक्ष्यसि – समान देखोगे।

अनुवाद – वन में रहने वाले (किरात आदि) की पत्नियों द्वारा उपभुक्त लताकुञ्ज वाले उस (आम्रकूट पर्वत पर) कुछ देर रुककर, वहाँ तुम्हारे वर्षा कर देने से तीव्र गति वाले तुम उस (आम्रकूट पर्वत) से परे मार्ग को पार करके पत्थरों के कारण उँची-नीची विन्ध्याचल की तलहटी में फैली हुई नर्मदा को हाथी के अङ्ग पर चित्रकार द्वारा बनाई गई सजावट के समान देखोगे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – तोयोत्सर्गद्रुततरगतिः – तोयस्योत्सर्गः (उत्+सृज्+घञ् भावे) तेन द्रुततरा गतिर्यस्य सः (ब.व्री.)। **तत्परम्** – तस्मात् परम् सुप्सुपा इति समासः। **उपलविषमे**– उपलविषमे (तृ.तत्पु.)। **विन्ध्यपादे** – विन्ध्यस्य पादे (ष.तत्पु.)।

तस्यास्तिक्तैर्वनगजमदैर्वासितं वान्तवृष्टि–

र्जम्बूकुञ्जप्रतिहतरयं तोयमादाय गच्छेः।

अन्तःसारं घन! तुलयितुं नानिलः शक्ष्यति त्वां

रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय।।20।।

अन्वयः – वान्तवृष्टिः (त्वम्) तिक्तैः वनगजमदैः वासितम् जम्बूकुञ्जप्रतिहतरयम् तस्या तोयम् आदाय गच्छेः। घन, अनिलः अन्तःसारम् त्वाम् तुलयितुम् न शक्ष्यति। हि रिक्तः सर्वः लघुः भवति, पूर्णता गौरवाय।

प्रसङ्ग – यक्ष कहता है कि नर्मदा नदी के जल का पान करके अवश्य जाना।

शब्दार्थ – तिक्तैः – सुगन्धित, वनगजमदैः – जंगली हाथियों के मद, वासितम् – सुगन्धि वाले, जम्बूकुञ्जप्रतिहतरयम् – जामुनों के गुच्छों द्वारा रोके गए प्रवाह वाले, तोयम् – जल को, अनिलः – वायु, हि रिक्तः – खाली पदार्थ, सर्वः – सभी, लघुः – हल्के।

अनुवाद – (पहले आम्रकूट पर्वत पर) वर्षा का वमन किये हुए तुम, जङ्गली हाथियों के तिक्त मद से तथा जामुन के वृक्षों के कुञ्ज द्वारा रोके हुए वेग वाले उस (नर्मदा के) जल को पीकर जाना। हे मेघ, अन्तःसार (जल) से युक्त तुम्हें वायु हिला न सकेगी। खाली पदार्थ हल्के होते हैं। भरा होना तो भारीपन का कारण होता है।

व्याख्या – मेघ को मार्ग में नर्मदा के सौंदर्य का वर्णन एवं पान का परामर्श देते हुए यक्ष कहता है कि पहले जब आम्रकूट पर तुमने जो वर्षा की थी उससे तुम्हारा वजन कम हुआ। अब यहाँ (विन्ध्य पर) वन्य हाथियों के जल में उतरने के कारण सुगन्धित मद वाले एवं जामुन के वृक्षों द्वारा रोके गए प्रवाह वाले उस नर्मदा के जल को अवश्य ही पीकर आगे बढना। उस जल को पीने से तुम पुनः भारी हो जाओगे और हे मेघ, भारी हो जाने से आकाशमार्ग में तुम्हें वायु हिला न सकेगी क्योंकि जल ही तुम्हारे बल का सार है, और सार रहित व्यक्ति रिक्त होता है, उसमें लाघव होता है। उसे कोई भी हिला सकता है। सारयुक्त गुणों से पूर्ण

व्यक्ति में पूर्णता होती है और वह गौरव के लिये होती है। अतः वह महान् व्यक्तित्व होता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – वान्त – वम्+क्त (कर्मणि)। वान्तवृष्टिः वान्ता उद्गीर्णा वृष्टिर्येन सः। **वनगजमदैः** – वनस्य गजा वनगजास्तेषां मदैः। **वासितम्** – वस्+क्त। **अन्तःसारम्** – अन्तः सारो बलं यस्य तम् (ब.व्री.)। **तुलयितुम्** – तुलां करोति इति तुला+णिच्+तुमुन्। **शक्ष्यति** – शक् लृट्, प्र.पु.ए०.।

नीपं दृष्ट्वा हरितकपिशं केसरैर्धरूढै–

राविर्भूतप्रथममुकुलाः कन्दलीश्चानुकच्छम्।

जगग्ध्वाऽरण्येष्वधिकसुरभिं गन्धमाघ्राय चोर्व्याः

सारङ्गास्ते जललवमुचः सूचयिष्यन्ति मार्गम्।।21।।

अन्वयः – (मेघ!) सारङ्गाः अर्धरूढैः केसरैः हरितकपिशम् नीपम् दृष्ट्वा अनुकच्छम् आविर्भूतप्रथममुकुलाः कन्दलीः च जग्ध्वा अरण्येषु अधिकसुरभिम् उर्व्याः गन्धम् आघ्राय जललवमुचः ते मार्गम् सूचयिष्यन्ति।

प्रसङ्ग – यक्ष मेघ से कहता है कि हाथी या हिरण अपने ही कार्य से तुम्हें आगे का मार्ग बतलायेंगे।

शब्दार्थ – अर्धरूढैः – आधे खिले हुए, केसरैः – पुष्पतन्तुओं से, हरितकपिशम् – हरे तथा कपिश (काला लाल मिश्रित), नीपम् – कदम्बपुष्प को, दृष्ट्वा – देखकर, अनुकच्छम् – दलदल में, आविर्भूतप्रथममुकुलाः – पहले पहले उद्भूत हुई कलियों वाले, कन्दलीः – केले, अधिकसुरभिम् – अधिक सुगन्ध वाली, सूचयिष्यन्ति – बतलाएंगे।

अनुवाद – हाथी अथवा मृग आधे खिले हुए पुष्पतन्तुओं से (रेशों से) हरे अथवा धूसर कदम्ब के फूल को देखकर और दलदल में सद्यः ही उत्पन्न हुई कलियों वाले केलों को खाकर, पृथ्वी के अत्यधिक सुगन्धित गन्ध को सूंघकर, जल की बूंदे बरसाने वाले (मेघ), तुम्हें मार्ग को बतलायेंगे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अर्धरूढैः – अर्धं यथा स्यात् तथा रूढैः। **हरितकपिशम्** – हरितं च तत् कपिशं च, कर्मधा.। **दृष्ट्वा** – दृश्+क्त्वा। **आविर्भूतप्रथममुकुलाः** – आविर्भूताः प्रथमा मुकुला यासां ताः (ब.व्री.)। **जग्ध्वा** – अद्+क्त्वा।

अम्भोबिन्दुग्रहणचतुरांश्चातकान् वीक्षमाणाः

श्रेणीभूताः परिगणनया निर्दिशन्तो बलाकाः।

त्वामासाद्य स्तनितसमये मानयिष्यन्ति सिद्धाः

सोत्कम्पानि प्रियसहचरीसम्भ्रमालिङ्गितानि।।प्रक्षिप्त/1।।

अन्वयः – अम्भोबिन्दुग्रहणचतुरान् चातकान् वीक्षमाणाः श्रेणीभूताः बलाकाः परिगणनया निर्दिशन्तः सिद्धाः स्तनितसमये सोत्कम्पानि प्रियसहचरीसंभ्रमालिङ्गितानि आसाद्य त्वाम् मानयिष्यन्ति।

प्रसङ्ग – प्रकृत स्थल पर यक्ष कहता है कि तुम्हारे गर्जन से डरी हुई सिद्धों की स्त्रियां जब अपने पतियों का आलिङ्गन करेंगी तो वे तुम्हारा सम्मान करेंगे।

शब्दार्थ – अम्भोबिन्दुग्रहणचतुरान् – मेघ से टपकने वाली बून्दों को ग्रहण करने में दक्ष, चातकान् – चातक पक्षियों को, वीक्षमाणाः – देखते हुए, श्रेणीभूताः – पङ्क्तिबद्ध, बलाकाः – बगुलियों को, परिगणनया – गणना द्वारा, सिद्धाः – सिद्ध पुरुष, सोत्कम्पानि – कम्पनसहित, आसाद्य – प्राप्त करके, मानयिष्यन्ति – मान जायेंगे (सम्मान करेंगे)।

अनुवाद – मेघ से टपकने वाली बून्दों को (जमीन पर गिरने से पहले ही चोंच के द्वारा) ग्रहण करने में कुशल चातक पक्षियों को देखते हुए, पंक्तिबद्ध बगुलियों को (अङ्गुली पर) गणना द्वारा (अपनी स्त्रियों को) दिखलाते हुए सिद्ध पुरुष तुम्हारे (मेघ के) गर्जन के समय, घबरायी और कांपती हुई प्रिया के शीघ्रतापूर्वक किये आलिङ्गन को प्राप्त करके तुम्हारे माहात्म्य को मान जायेंगे।

व्याख्या – इस श्लोक में यक्ष मेघ को उसके माहात्म्य का वर्णन करते हुए उसे स्त्री पुरुष के शृङ्गार का निमित्त बताता है और कहता है कि जल की बूंदो को जमीन पर गिरने से पूर्व ही अपनी चोंच में लेने में दक्ष चातक पक्षियों को देखते हुए और बगुलियां जो कि वर्षा ऋतु में पंक्तिबद्ध होकर ही उड़ती हैं उन्हें अङ्गुलियों पर गणना के द्वारा अपनी पत्नियों को दिखलाते हुए सिद्धपुरुषों को अत्यन्त ही आनन्द की प्राप्ति होगी। जब तुम गर्जन करोगे और उनके साथ बैठी उनकी पत्नीयां सहसा ही भय से कम्पनयुक्त शरीर के साथ अपने पतियों का आलिङ्गन कर लेंगी। तुम्हारे (मेघ) के इस उपकार से उपकृत होकर वे सिद्धपुरुष तुम्हारा माहात्मय समझ ही जायेंगे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अम्भोबिन्दुग्रहणचतुरान् – अम्भसः बिन्दूनां ग्रहणे चतुराः तान्। **वीक्षमाणाः –** वि+ईक्ष्+शानच्, प्र.बहु.। **आसाद्य** – आ+सद्+य (ल्यप्), **मानयिष्यन्ति –** मन् लृट्, प्र.पु.बहु.।

उत्पश्यामि द्रुतमपि सखे मत्प्रियार्थं यियासोः

कालक्षेपं ककुभसुरभौ पर्वते पर्वते ते।

शुक्लापाङ्गैः सजलनयनैः स्वागतीकृत्य केकाः

प्रत्युद्यातः कथमपि भवान् गन्तुमाशु व्यवस्येत्।।22।।

अन्वयः – सखे! मत्प्रियार्थम् द्रुतम् यियासोः अपि ते ककुभसुरभौ पर्वते पर्वते कालक्षेपम् उत्पश्यामि, सजलनयनैः शुक्लापाङ्गैः केकाः स्वागतीकृत्य प्रत्युद्यातः भवान् कथमपि आशु गन्तुम् व्यवस्येत्।

प्रसङ्ग – मार्ग में होने वाले विलम्ब का निर्देश करते हुए, शीघ्र जाने के लिये यक्ष मेघ से कहते हैं।

शब्दार्थ – मत्प्रियार्थम् – मेरे भले के लिये, यियासोः – जाने के इच्छुक (तुम), ककुभसुरभौ – अर्जुन के फूल की सुंगध के कारण, कालक्षेपम् – समय के विलम्ब की, उत्पश्यामि – सम्भावना करता हूँ, सजलनयनैः – अश्रुयुक्त नयनों से, शुक्लापाङ्गैः – मोरों के द्वारा, स्वागतीकृत्य – स्वागत का वचन बनाकर, प्रत्युद्यातः – अभिनन्दित किये गये, आशु – शीघ्र, व्यवस्येत् – उद्योग करें।

अनुवाद – हे मेघ! मेरे भले के लिये तुम्हारे शीघ्रता से जाने के इच्छुक होते हुए भी अर्जुन के फूल की सुगंध के कारण कई पर्वतों पर समय के विलम्ब की सम्भावना हो रही है। आँसू भरे नेत्रों से मोरों की केका ध्वनि के माध्यम से स्वागत किये गये, अभिनन्दित किये गये आप किसी भी तरह से शीघ्रातिशीघ्र (बिना विलम्ब किये) जाने के लिये उद्यत हो जाना।

व्याख्या – यक्ष चाहता है कि मेघ शीघ्र ही उसके सन्देश को उसकी प्रिया तक पहुँचा दे, लेकिन फिर भी यक्ष को लगता है कि मेघ मेरे प्रिय के लिये तीव्रगति से जाने को इच्छुक है मगर तीव्रगति से जाने के इच्छुक होते हुए भी मार्ग में पर्वत पर्वत पर अर्जुनवृक्ष के फूल की सुगन्ध से मेघ के पर्वतों पर रुकने की सम्भावना हो रही है क्योंकि ऐसे रमणीय सुगन्धित पर्वतों की उपेक्षा कौन कर सकता है। अतः यक्ष कहता है कि मोर पक्षी अपनी आंखो में आँसू लिये अपनी केका ध्वनि को स्वागत का वचन बनाकर तुम्हारा स्वागत करेंगे और जिसका स्वागत किया गया है ऐसे तुम किसी भी तरह से जल्द से जल्द वहाँ से आगे जाने के लिये उद्यत हो जाना।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – मत्प्रियार्थम् – मदीया प्रिया मत्प्रिया तस्यै इति अथवा मदीयं प्रियं (कार्यम्) तस्मै इति (नित्यस.)। **ककुभसुरभौ** – ककुभैः–कुटजकुसुमैः सुरभौ सुगन्धिते। **कालक्षेपम्** – कालस्य क्षेपम् (ष.तत्पु.)। **प्रत्युद्यातः** – प्रति+उत्+या+क्त, प्र.एक.।

विशेष – प्रस्तुत श्लोक में परिणाम नामक अलङ्कार है।

पाण्डुच्छायोपवनवृतयः केतकैः सूचिभिन्नै–

र्नीडारम्भैर्गृहबलिभुजामाकुलग्रामचैत्याः।

त्वय्यासन्ने परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः

सम्पत्स्यन्ते कतिपयदिनस्थायिहंसा दशार्णाः।।23।।

अन्वयः – त्वयि आसन्ने दशार्णाः सूचिभिन्नैः केतकैः पाण्डुच्छायोपवनवृतयः गृहबलिभुजाम् नीडारम्भैः आकुलग्रामचैत्याः, परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः, कतिपयदिनस्थायिहंसाः संपत्स्यन्ते।

प्रसङ्ग – प्रकृत स्थल पर यक्ष मेघ को बताता है कि तुम्हारे आ जाने से दशार्ण देश की कैसी अवस्था हो जायेगी?

शब्दार्थ – त्वयि आसन्ने – तुम्हारे आ जाने पर, सूचिभिन्नैः – खिले हुए अग्रभाग वाले, केतकैः – केवड़े के पुष्पों से, नीडारम्भैः – घोंसलों के आरम्भ से, आकुलग्रामचैत्याः – ग्राम की गलियों में व्याप्त वृक्षों (पीपलादि) वाला, परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः – परिपक्व फल वाले काले जामून के वनों से रम्य, कतिपयदिनस्थायिहंसाः – कुछ दिन निवास करने वाले हंसों से, संपत्स्यन्ते – युक्त हो जायेगा।

अनुवाद – (हे मेघ) तुम्हारे उमड़ आने पर दशार्ण नामक देश खिले हुए अग्रभाग वाले केवड़े के पुष्पों से, उद्यान के पीत वर्ण वाले बाड़ों से युक्त, घर की बली (पितृ तर्पण आदि में निकाले जाने वाले भोग) को खाने वाले (कौए आदि) के घोंसलों के निर्माण से ग्राम के मार्ग में व्याप्त वृक्षों वाला, पके हुए फलों से काले जामुनों के वनों से रमणीय (और) कुछ दिन तक निवास करने वाले हंसों से युक्त भी हो जाएगा।

व्याख्या – यक्ष मेघ की प्रशंसा करते हुए कहता है कि हे मेघ! जब तुम उमड़ आओगे अर्थात् अपने चरमोत्कर्ष पर होगे तब दशार्ण देश तुम्हारे कारण अत्यन्त ही चारुत्वशालिता को प्राप्त होगा। खिले हुए अग्रभाग वाले केवड़े के पुष्पों के होने से ग्राम के उद्यान पीतवर्ण होकर रमणीय प्रतीत होंगे। पितृ तर्पण आदि कार्यों में पक्षियों के भोज के लिये निकाला जाने वाला नैवेद्य, बली कहलाता है। अतः उस बली को खाने वाले काक आदि पक्षी ग्राम के मार्गों के वृक्षों को अपने घोंसले के निर्माण से व्याप्त कर देंगे एवं वह दशार्ण देश पके हुए फलों वाले काले जामुन के वनों से अत्यन्त रमणीय प्रतीत होगा साथ ही थोड़े दिनों तक निवास करने वाले हंसों से भी वह दशार्ण देश युक्त हो जायेगा।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – सूचिभिन्नैः – सूच्याकारेषु मुकुलाग्रेषु भिन्नैः विकसितैः। **पाण्डुच्छायोपवनवृतयः** – पाण्डवी छाया यासां ताः (ब.व्री.) पाण्डुच्छाया उपवनानां वृतयः येषु ते (ब.व्री.)। **ग्रहबलिभुजाम्** – गृहेषु बलि भुञ्जते ते गृहबलिभुजः तेषां गृहबलिभुजाम्। **नीडारम्भैः** – नीडानां निलयानाम् आरम्भैः (आ+रभ्+घञ्, भावे आरम्भः तैः) निर्माणः। **आकुलग्रामचैत्याः** – आकुलानि संकीर्णानि ग्रामेषुचैत्यानि येषु (ब.व्री.)। **परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः** – परिणतैः पक्वैः फलैः श्यामा जम्बूवनानाम् अन्ताः येषु ते (ब.व्री.)।

विशेष – मेघ के गुणों से दशार्ण देश के शोभा प्राप्त करने से इस श्लोक में उल्लास अलङ्कार माना गया है।

तेषां दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणां राजधानीं

गत्वा सद्यः फलमविकलं कामुकत्वस्य लब्ध्वा।

तीरोपान्तस्तनितसुभगं पास्यसि स्वादु यस्मात्

सभ्रूभङ्गम् मुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोर्मि।।24।।

अन्वयः – दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणां तेषाम् राजधानीं गत्वा सद्यः कामुकत्वस्य अविकलम् फलम् लब्ध्वा यस्मात् वेत्रवत्याः स्वादुः चलोर्मि पयः सभ्रूभङ्गम् मुखम् इव तीरोपान्तस्तनितसुभगम् पास्यसि।

प्रसङ्ग – यहाँ यक्ष मेघ को दशार्ण देश की राजधानी विदिशा पहुँचकर वेत्रवती नदी के जलपान का निर्देश देता है।

शब्दार्थ – दिक्षु – दिशाओं में, सद्यः – सहसा ही, कामुकत्वस्य – कामुकता के, अविकलम् – अखण्ड, स्वादुः – स्वादिष्ट, चलोर्मि – चञ्चल लहरें, पयः – जल को, सभ्रूभङ्गम् – भौंहों की टेढी आकृति युक्त, तीरोपान्तस्तनितसुभगम् – तट के समीप अपनी सुन्दर गर्जना से, पास्यसि – पियोगे।

अनुवाद – (दशार्ण की) दिशाओं में प्रसिद्ध विदिशा नामक राजधानी जाकर सहसा ही अपनी विलासिता के अखण्ड फल को प्राप्त करोगे, क्योंकि वेत्रवती (बेतवा) के स्वादिष्ट चञ्चल लहरों वाले जल को, भौंहों की विलासितापूर्ण टेढी आकृति से युक्त मुख के समान, तट के समीप अपनी सुन्दर गर्जना से पान करोगे।

व्याख्या – प्रस्तुत पद्य में यक्ष मेघ को वेत्रवती जो अब बेतवा के नाम से जानी जाती है, के जलपान से कान्ता के अधरपान के सुख के समान होने वाली अनुभूति के विषय में बतलाता है। कहता है कि जब तुम उस दशार्ण देश की राजधानी विदिशा में पहुँचोगे तो सहसा ही तुम्हारी कामनाओं का अखण्ड फल तुम्हें प्राप्त होगा क्योंकि वहाँ पर स्थित बेतवा नदी का जल अत्यन्त ही स्वादिष्ट है और उसकी लहरें चञ्चल हैं और वह चञ्चल लहरें (किसी नायिका के) भ्रूविलास की आकृति से युक्त होंगी जब तुम तट के समीप गर्जना से सुन्दर रुप से उसका पान करोगे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – प्रथितविदिशालक्षणाम् – प्रथितं प्रसिद्धं विदिशेति लक्षणं नामधेयं यस्यास्ताम् (ब.व्री.)। **गत्वा** – गम्+क्त्वा। **अविकलम्** – विगता कला यस्य तद्विकलम् (ब. व्री.), न विकलम् अविकलम् (नञ् तत्पु.)।

विशेष – प्रस्तुत श्लोक में नायक (मेघ) तथा नायिका (वेत्रवती) के लिङ्ग का साम्य प्रस्तुत किया है। अतः मेघ एवं वेत्रवती में नायक एवं नायिका के व्यवहार का समारोप हो जाता है और ऐसे स्थल में समासोक्ति अलङ्कार माना जाता है।

नीचैराख्यं गिरिमधिवसेस्तत्र विश्रामहेतो–

स्त्वत्संपर्कात् पुलकितमिव प्रौढपुष्पैः कदम्बैः।

यः पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिर्नागराणा–

मुद्दामानि प्रथयति शिलावेश्मभिर्यौवनानि।।25।।

अन्वयः – तत्र विश्रामहेतोः प्रौढपुष्पैः कदम्बैः त्वत्संपर्कात् पुलकितम् इव नीचैः आख्याम् गिरिम् अधिवसेः यः पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिः शिलावेश्मभिः नागराणाम् उद्दामानि यौवनानि प्रथयति।

प्रसङ्ग – प्रकृत स्थल पर यक्ष मेघ को विदिशा के समीप नीचै नामक पर्वत पर ठहरने का निर्देश देता है।

शब्दार्थ – विश्रामहेतोः – विश्राम करने के लिये, प्रौढपुष्पैः – विकसीत पुष्पों वाले, कदम्बैः – कदम्बों से, त्वत्संपर्कात् – तुम्हारे संपर्क में आने से, पुलकितम् इव – रोमाञ्चित हुए से, अधिवसेः – ठहर जाना, शिलावेश्मभिः – पत्थर की गुफाओं से।

अनुवाद – वहाँ (विदिशा के समीप) विश्राम करने के लिये, पूर्णतः खिले हुए पुष्पों वाले कदम्बों से तुम्हारे संपर्क में आने पर रोमाञ्चित हुए "नीचै" इस नाम वाले पर्वत पर ठहर जाना जो (पर्वत) वेश्याओं की रतिक्रीडा में प्रयुक्त की जाने वाली सुगन्ध को द्योतित करने वाली पत्थर की गुफाओं से, नगरवासियों के उत्कट (उभरे हुए) यौवन को प्रकट (द्योतित) करता है।

व्याख्या – यक्ष मेघ को पुनः किसी पर्वत विशेष पर विश्राम करने के लिये कहता है कि वहीं दशार्ण देश की राजधानी विदिशा के समीपस्थ नीचै नामक पर्वत पर तुम विश्राम करने के लिये ठहर जाना। उस पर्वत के विषय में कहता है कि, वह पूर्णतः परिपक्व पुष्पों वाले कदम्बों से युक्त है और जब उन कदम्बों से तुम सम्पर्क में आओगे तब वह नीचै नामक पर्वत अत्यन्त ही रोमाञ्चित हो उठेगा। वह पर्वत वेश्याओं के साथ रतिक्रीड़ा में उपयुक्त सुगन्धित द्रव्यों को उगलने वाली अपनी पत्थर की गुफाओं द्वारा नागरिकों के तारुण्यातिशय अर्थात् यौवनाधिक्य को प्रकट करता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – विश्रान्तिहेतोः – विश्रान्तेः हेतोः (ष.तत्पु.)। **प्रौढपुष्पैः** – प्र+वह+क्त, कर्तरि प्रौढानि पुष्पाणि येषु (ब.व्री.)। **नीचैराख्यम्** – नीचैः आख्या यस्य (ब.व्री.) तम्। **उद्दामानि** – दाम्नः श्रृंखलाया उद्गतानि इति (प्रादितत्पु.)।

विशेष – प्रकृत श्लोक में उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

विश्रान्तः सन् व्रज वननदीतीरजातानि सिञ्च–

न्नुद्यानानां नवजलकणैर्यूथिकाजालकानि।

गण्डस्वेदापनयनरुजाक्लान्तकर्णोत्पलानां

छायादानात् क्षणपरिचितः पुष्पलावीमुखानाम्।।26।।

अन्वयः – (मेघ!) विश्रान्तः सन् वननदीतीरजातानि उद्यानानाम् यूथिकाजालकानि नवजलकणैः सिञ्चन् गण्डस्वेदापनयनरुजाक्लान्तकर्णोत्पलानाम् पुष्पलावीमुखानाम् छायादानात् क्षणपरिचितः व्रज।

प्रसङ्ग – प्रकृत पद्य में यक्ष मेघ को विश्राम करने के उपरान्त फूल तोड़ने वाली स्त्रियों से क्षण परिचय के लिये कहता है।

शब्दार्थ – विश्रान्तः सन् – आराम कर लेने पर, वननदीतीरजातानि – जंगली नदियों के तटों पर उत्पन्न होने वाली, उद्यानानाम् – उद्यानों की, यूथिकाजालकानि – जूही की नयी कलियों को, सिञ्चन् – सींचते हुए, छायादानात् – छाया देकर, क्षणपरिचितः – कुछ देर का परिचय प्राप्त कर, व्रज – चले जाना।

अनुवाद – (नीचै पर्वत पर) विश्राम कर लेने के बाद जंगल की नदियों के किनारों पर स्थित बागों में जूही की नवीन कलियों को अपने नये जल से सींचते हुए, जिनके कानों में लगे कमल गालों के पसीने को पोंछने से मुरझा गये होंगे ऐसी पुष्पों को तोड़ने वाली स्त्रियों के मुख पर अपनी छाया देकर, उनसे कुछ क्षण का परिचय प्राप्त कर वहाँ से चले जाना।

व्याख्या – नीचै नामक पर्वत पर विश्राम करने का परामर्श देने के बाद यक्ष मेघ से कहता है कि, नीचै पर्वत पर विश्राम कर चुकने पर वहाँ स्थित जो जंगली नदियाँ हैं, उनके किनारे पर जो उद्यान हैं उन उद्यानों में जूही पुष्प की नवीन कलियाँ खिली होंगी, उन जूही की नवीन कलियों का अपने नवीन जल से सिञ्चन करना। उन उद्यानों में फूल तोड़ने वाली स्त्रियाँ भी होंगी, जो अपने कानों में कमल लगाती हैं और फूल तोड़ते समय गालों पर आने वाले पसीने से, उन स्त्रियों के कानों पर लगे कमल का घर्षण होने से वे मुरझा गये होंगे। ऐसी फूल तोड़ने वाली स्त्रियों को अपनी छाया देकर तुम उनसे क्षण भर का परिचय प्राप्त करना और आगे बढ जाना।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – विश्रान्तः – वि+श्रम्+क्त। **वननदीतीरजानाम्** – वने या नद्यः तासां तीरेषु जातानाम्। **नवजलकणैः** – नवजलानां कणैः (ष.तत्पु.)। **गण्डस्वेदापनयनरुजाक्लान्तकर्णोत्पलानाम** – गण्डयोः स्वेदस्यापनयनेन या रुजा तया क्लान्तानि कर्णयोः उत्पलानि येषु तेषां (ब.व्री.)। **पुष्पलावीमुखानाम्** – पुष्पाणि लुनन्तीति पुष्पलाव्यः, तासां मुखानि तेषाम् (ष.त.)।

विशेष – मेघ में कामी के व्यवहार का समारोप होने से यहाँ समासोक्ति अलङ्कार माना गया है।

वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां

सौधोत्सङ्गप्रणविमुखो मा स्म भूरुज्जयिन्याः।

विद्युद्दामस्फुरितचकितैस्तत्र पौराङ्गनानां

लोलापाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोऽसि।।27।।

अन्वयः – उत्तराशाम् प्रस्थितस्य भवतः पन्थाः यद्यपि वक्रः उज्जयिन्याः सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखः मा स्म भूः। तत्र विद्युद्दामस्फुरितः चकितैः लोलापाङ्गैः पौराङ्गनानाम् लोचनैः यदि न रमसे (तर्हि) वञ्चितः स्यात्।

प्रसङ्ग – यक्ष मेघ से कहता है कि यद्यपि मार्ग टेढा पड़ेगा फिर भी उज्जयिनी नगरी अवश्य जाना अन्यथा जीवन व्यर्थ समझो।

शब्दार्थ – उत्तराशाम् – उत्तर दिशा में, प्रस्थितस्य – प्रस्थान किये हुए, पन्थाः – मार्ग, सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखः – महलों की अट्टालिकाओं के परिचय से विमुख, मा स्म भूः – न होना, विद्युद्दामस्फुरितः – बिजली के चमकने से, पौराङ्गनानाम् – नागरिकों की स्त्रियों के।

अनुवाद – उत्तर दिशा में प्रस्थान किये हुए आपका मार्ग यद्यपि तिरछा पड़ेगा, तब भी उज्जयिनी के महलों के उपरी भागों (अट्टालिकाओं) से परिचय प्राप्त किये बगैर नहीं जाना। वहाँ उज्जयिनी में (तुम्हारी) बिजली के चमकने से भौंचक्की सी चञ्चल कनखियों वाली नागरिकों की स्त्रियों के नेत्रों के साथ अगर तुमने रमण नहीं किया तो मतलब तुम ठगे ही रह गये।

व्याख्या – यहाँ यक्ष उज्जयिनी का पक्षपाती होता हुआ मेघ से उज्जयिनी होकर ही जाने के लिये कहता है। उत्तर दिशा की ओर जाता हुआ अगर मेघ उज्जयिनी जायेगा तो उसका मार्ग तिरछा होगा, अधिक समय व्यर्थ होगा। लेकिन इस बात की परवाह किये बगैर यक्ष उसे उज्जयिनी होकर जाने का सुझाव देते हुए कहता है कि उत्तर दिशा में आप जा रहें हैं और अगर आप उज्जयिनी से होकर गुजरेंगे तो अवश्य ही मार्ग वक्र होगा, फिर भी आप उज्जयिनी के महलों के उपरी भाग अर्थात् अट्टालिकाओं से परिचय प्राप्त करने से विमुख न होना। वहाँ उज्जयिनी में बिजली के चमकने से एकदम से घबरा जाने वाली, चञ्चल कनखियों वाली वहाँ के नागरिकों की स्त्रियों के सुन्दर नेत्रों के साथ अगर तुमने रमण नहीं किया अर्थात् उन्हें दिखाई नहीं दिये तो तुम्हारा जीवन व्यर्थ ही समझो। जीवन की सफलता तो तब होगी जब उज्जयिनी की सुन्दर स्त्रियों के सुन्दर नेत्रों के साथ तुम रमण कर सकोगे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – उत्तराशाम् – उत्तरा आशा (दिशा) कर्मधा.। **सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखः** – सौधानाम् उत्सङ्गेषु प्रणयः तस्य विमुखः। **लोलापाङ्गैः –** लोलाः (चञ्चलाः) अपाङ्गाः नेत्रप्रान्ताः येषु तानि (ब.व्री.) ।

वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्चीगुणायाः

संसर्पन्त्याः स्खलितसुभगं दर्शितावर्तनाभेः।

निर्विन्ध्यायाः पथि भव रसाभ्यन्तरः सन्निपत्य

स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु।।28।।

अन्वयः – पथि वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्चिगुणायाः स्खलितसुभगं संसर्पन्त्याः दर्शितावर्तनाभेः निर्विन्ध्यायाः सन्निपत्य रसाभ्यन्तरः भव। हि स्त्रीणाम् प्रियेषु विभ्रमः आद्यम् प्रणयवचनम्।

प्रसङ्ग – प्रकृत पद्य में यक्ष निर्विन्ध्या नदी को नायिका के रूप में बतलाते हुए मेघ को उसके पान का परामर्श देता है।

शब्दार्थ – पथि – मार्ग में, वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्चिगुणायाः – लहरों के चलने से वाचाल पक्षियों की पंक्ति जिसकी करधनी है ऐसी, स्खलितसुभगम् संसर्पन्त्याः – (पत्थरों से) टकराने के कारण मनोहर ढंग से बहती हुई, सन्निपत्य – मिलकर, स्त्रीणाम् – स्त्रियों का, प्रणयवचनम् – प्रेम के इशारे का वचन होता है।

अनुवाद – मार्ग में लहरों के चलने से वाचाल पक्षियों की पंक्ति जिसकी करधनी हो ऐसी, पत्थरों से टकराने के कारण मनोहर ढंग से बहती हुई, भंवर रूपी नाभी का प्रदर्शन करने वाली निर्विन्ध्या नदी से मिलकर रस से परिपूर्ण हो जाना क्योंकि स्त्रियों का प्रियों के सामने विलास आदि प्रदर्शन सबसे पहले प्रेम के इशारे का वचन होता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्चिगुणायाः – वीचीनां क्षोभेण (ष. तत्पु.) स्तनितानां शब्दायमानानां विहगानां श्रेणिः पंक्तिरेव काञ्ची गुणो यस्याः सा (ब.व्री.)। **स्खलितसुभगम्** – स्खलितेन उपलस्खलनेन मदस्खलनेन च सुभगं यथा स्यात् तथा। **दर्शितावर्तनाभेः** – दर्शितः प्रकटितः आवर्तोऽम्भसां भ्रमः एव नाभिः (कर्मधा.) यया सा तस्याः (ब. व्री.)।

विशेष – प्रकृत पद्य में रूपक, श्लेष, एवं अर्थान्तरन्यास अलङ्कार हैं।

वेणीभूतप्रतनुसलिला तामतीतस्य सिन्धुः

पाण्डुच्छाया तटरुहतरुभ्रंशिभिर्जीर्णपर्णैः।

सौभाग्यं ते सुभग! विरहावस्थया व्यञ्जयन्ती

कार्श्यं येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्यः।।29।।

अन्वयः – सुभग! वेणीभूतप्रतनुसलिला तटरुहतरुभ्रंशिभिः जीर्णपर्णैः पाण्डुच्छाया ताम् अतीतस्य ते सौभाग्यम् विरहावस्थया व्यञ्जयन्ती सिन्धुः येन विधिना कार्श्यम् त्यजति स त्वया एव उपपाद्यः।

प्रसङ्ग – यक्ष सिन्धु नदी की दुर्बलता दूर करने के उपाय का निर्देश मेघ को देता है।

शब्दार्थ – वेणीभूतप्रतनुसलिला – (स्त्रियों की) चोटी की तरह थोड़े जल वाली, तटरुहतरुभ्रंशिभिः – किनारे पर उगे हुए वृक्षों से गिरे हुए, जीर्णपर्णैः – शुष्क पत्तों से, पाण्डुच्छाया – पीली कान्ति वाली, अतीतस्य – पार किये हुए, सौभाग्यम् – सौभाग्य को,

विरहावस्थया – वियोगदशा के द्वारा, व्यञ्जयन्ती – प्रकट करते हुए, कार्श्यम् – दुर्बलता का, उपपाद्यः – करना चाहिए।

अनुवाद – हे सौभाग्यशाली मेघ! स्त्रियों की चोटी की तरह कम जल वाली, किनारे पर उगे हुए वृक्षों से गिरे पत्तों से जो पीले वर्ण की हो चुकी है (ऐसी) निर्विन्ध्या नदी को पार किये हुए तेरे सौभाग्य को अपनी विरहदशा के द्वारा प्रकट करने वाली, यह सिन्धु नामक नदी जिस भी तरह से अपनी इस दुर्बलता को समाप्त करे, वह उपाय तुम्हें ही करना है।

व्याख्या – यक्ष मेघ से निर्विन्ध्या नदी के बाद आने वाली सिन्धु नदी का वर्णन करते हुए कहता है कि किसी स्त्री की चोटी के समान जिसका जल अत्यन्त ही अल्प हो चुका है क्योंकि स्त्री विरहकाल में एक चोटी बांधकर रहती है, जिससे उसके बालों की अल्पता प्रतीत होती है। नदी के किनारे पर लगे हुए वृक्षों के पत्तों के सूखकर नदी में गिर जाने से उसका रंग अत्यन्त पीला पड़ चुका है, प्रेमी से वियोग रहने पर स्त्री का रंग भी पीला पड़ जाता है, वह कमजोर प्रतीत होती है। वह सिन्धु विरहदशा के द्वारा तुम्हारे सौभाग्य को प्रकट करने वाली है, अर्थात् तुम्हारा सौभाग्य है कि तुम उस महान् नदी की सहायता करोगे जिसका नाम सिन्धु है। जिस भी उपाय से उसकी दुर्बलता दूर की जा सके वह तुम्हें करना ही पड़ेगा।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – वेणीभूतप्रतनुसलिला – न वेणी अवेणी, अवेणी वेणी सम्पद्यमानं भूतम् वेणीभूतं प्रतनु सलिलं यस्याः सा (ब.व्री.)। **तटरुहतरुभ्रंशिभिः** – तटेषु रोहन्ति ये तरवः तेभ्यो भ्रंशिभिः। जीर्णपणेः जीर्णानि पर्णानि जीर्णपर्णानि तैः (कर्मधा.)। **पाण्डुच्छाया** – पाण्डवी छाया यस्याः सा (ब.व्री.)।

17.3 सारांश

मेघदूत का आरम्भ प्राचीन कथात्मक शैली में वस्तुनिर्देशात्मक मङ्गलाचरण के रूप में प्रमुख पात्र यक्ष के परिचय से होता है। यक्ष द्वारा राजकार्य में किए गए प्रमादवश कुबेर द्वारा दिए गए एकवर्षीय शाप को काटने के लिए यक्ष रामगिरि पर्वत पर विद्यमान है। अपनी कान्ता के विरह से ग्रस्त यक्ष ने सात मास किसी तरह रामगिरि पर व्यतीत किये। अब आषाढ मास के प्रथम दिन रामगिरि पर उमड़ते घुमड़ते बादलों के मोहक विलास ने उसकी दण्डावधि के सन्तप्त आवेगों को ऐसा उद्दीप्त किया कि कामार्त यक्ष चेतन अचेतन का विचार किए बिना मेघ को दूत के रुप में प्रियतमा तक सन्देश देने हेतु निवेदन करने लगता है। मेघ को अपने हितेच्छु मित्र के रूप में देखकर यक्ष उसे अनुकूल बनाने का प्रयत्न करता है। पुष्कर और आवर्तक नामक उसके कुल का वर्णन कर प्रेमपूर्ण वचनों से यक्ष मेघ का स्वागत करता है। मन ही मन यह मान लेता है कि मेघ उसकी बात मानकर अलकापुरी जायेगा ही। अतः वह उसे सन्देश प्रेषणार्थ अलकापुरी का मार्ग बताता है। यक्ष कहता है कि तुम सन्तप्तों के

आश्रयदाता हो, मार्ग में आगे प्रेमिकाएं आँखें बिछाकर तुम्हारी प्रतीक्षा में रत बलाकाओं की गणना करती हुई तुम्हें दिखाई देंगी। वे तुम्हारे नाद से भयभीत होकर अपने प्रियतम को आलिंगन का अनुपम आनंद प्रदान करेंगी। हे मेघ तुम विन्ध्याचल की तलहटी में पहाड़ियों के कारण इधर-उधर प्रवाहित होने वाली गज के शरीर पर अङ्कित पत्रावली की तरह नर्मदा को देखोगे। इसी प्रकार मालवप्रदेश, अमरकण्ट पर्वत और विंध्याचल में प्रवाहित नर्मदा का अनुपम वर्णन करने के बाद यक्ष मेघ को दशार्ण देश की राजधानी विदिशा का मार्ग बताता है। वेत्रवती (वर्तमान वेतवा नदी) के मनोहर मुख का चुम्बन कर मेघ नीचैः नामक पहाड़ियों पर पहुँचता है। जहाँ के पाषाण विलासिनी स्त्रियों की महक को प्रसरित करते हैं। तदनु मेघ पुषपचयनरत मालिनों के परिश्रमजन्य स्वेदबिन्दुओं का मार्जन करने का सुख प्राप्त करता है। तत्पश्चात् कालिदास अपनी प्रिय नगरी उज्जयिनी ले जाने हेतु मेघ से कहते हैं कि वहाँ का मार्ग थोड़ा टेढ़ा है तथापि यदि तुमने उस नगरी में तुम्हारे विद्युत्प्रकाश से डरी हुई सुन्दरियों के चञ्चल कटाक्षों के दर्शन नहीं किये तो निश्चय ही तुम्हारा जीवन व्यर्थ है। वहाँ पहुँचकर तुम निर्विन्ध्या नदी से मिलकर रस से परिपूर्ण हो जाना।

इस प्रकार इस इकाई में कालिदास यक्ष के द्वारा मेघ को आम्रकूट पर्वत से उज्जयिनी नगरी तक का मार्ग विभिन्न पर्वतों नदियों के मानवीकरण के साथ बतलाते हैं।

17.4 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. उपाध्याय, भागवत शरण. मेघदूत कालिदास. दिल्ली : हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड. जी. टी. रोड, शाहदरा. वर्ष अप्रकाशित।

2. तिवारी, रमाशङ्कर. महाकवि कालिदास. वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन. 1961।

3. शास्त्री, प. मोहनदेवपन्त, डॉ संसारचन्द्र– मेघदूतम, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1996।

4. शास्त्री डॉ दयाशंकर– मेघदूतम्, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी 2014।

17.5 अभ्यास प्रश्न

1 मेघदूत में कालिदास द्वारा प्रकृति के मानवीकरण पर संक्षिप्त निबंध लिखिए।

2 **'तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबलाविप्रयुक्तः स कामी'** श्लोक की व्याख्या कीजिए।

3 **'अम्भोबिन्दुग्रहणचतुरांश्चातकान्वीक्षमाणाः'** श्लोक की व्याख्या कीजिए।

इकाई 18 पूर्वमेघ – श्लोक 30-63

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 पूर्वमेघ – श्लोक 30-63

18.3 सारांश

18.4 कुछ उपयोगी पुस्तकें

18.5 अभ्यास प्रश्न

18.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- अवन्ती राज्य की सिन्धु नदी, क्षिप्रा नदी एवं उज्जयिनी नगरी व बाजार के वैभव से परिचित होंगे।
- महाकाल मन्दिर की पूजन, दर्शन नृत्यादि विशेषताओं की समीक्षा कर सकेंगे।
- उज्जयिनी में अभिसारिकाओं के रात्रिगमन, मेघ के रात्रि विश्राम एवं अग्र प्रस्थान का सुन्दर चित्रण कर सकेंगे।
- गम्भीरा, सरस्वती, गङ्गा, चम्बल आदि नदियों के सौंदर्य का रसास्वादन कर सकेंगे।
- उज्जयिनी से अलकापुरी तक के मार्ग में किये गए प्रकृति के मानवीकरण को समझ सकेंगे।

18.1 प्रस्तावना

कविकुलगुरुकालिदास की सबसे छोटी रचना मेघदूत है किन्तु नवोन्मेष की दृष्टि से इस लघु रचना का गुरुत्व सर्वसिद्ध है। कालिदास ने अपने समय की सबसे अछूती परिकल्पना को मेघदूत के रुप में प्रस्तुत किया है। इस रचना की विधा का निर्णय भी सरल नहीं है। मेघदूत को खण्डकाव्य, गीतिकाव्य, सन्देशकाव्य, अनिबद्ध या मुक्तक, लघुकाव्य या क्षुद्रकाव्य आदि अनेक श्रेणियों में रखा जाता है। इसकी काव्याविधा का निर्धारण अत्यन्त जटिल प्रश्न है। मेघदूत में विद्यमान सौन्दर्य का मूलाधार कालिदास का जीवन है। यह जीवन मनुष्य, पशु, वृक्ष, पादप, नदी पर्वतादि समस्त प्रकृति में है। विलास और वैभव का यह कवि इस वसुधा के इतना निकट है जितना कभी कोई भौतिकवादी कवि नहीं हुआ है। यक्ष के सखा मेघ के सहायकों में धरती से उठती हुई गंध को सूँघने वाले गजराज भी हैं। देवगिरी की ओर जाते हुए मेघ को पवन थपकी देता है आम्रकूट मेघ की थकावट को दूर करने हेतु विश्रान्ति स्थल

उपलब्ध करवाता है। यह मेघदूत भारत के ग्रामों, नगरों और प्रकृति के प्रति अनुपम प्रेम को प्रकट करता है। पूर्वमेघ की प्रथम इकाई में यक्ष मेघ को दूत बनाकर उज्जैन तक तो ले आता है। इस इकाई में हम मेघ की अग्रिम यात्रा का आनन्द लेंगे।

18.2 पूर्वमेघ – श्लोक 30-63

इकाई के इस अंश में आप पूर्वमेघ के श्लोक 30-63 तक का अन्वय, अनुवाद, शब्दार्थ आदि विषयों का अध्ययन करेंगे।

प्राप्यावन्तीनुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान्

पूर्वोद्दिष्टामनुसर पुरीं श्रीविशालां विशालाम्।

स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणां गां गतानां

शेषैः पुण्यैर्ह्रतमिव दिवः कान्तिमत्खण्डमेकम्।।30।।

अन्वयः – उदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान् अवन्तीन् प्राप्य सुचरितफले स्वल्पीभूते गाम् गतानाम् स्वर्गिणाम् शेषैः पुण्यैः ह्रतम् कान्तिमत् एकम् दिवः खण्डम् इव पूर्वोद्दिष्टाम् श्रीविशालाम् पुरीम् अनुसर।

प्रसङ्ग – सम्प्रति यक्ष अवन्ति एवं उज्जयिनी का वर्णन करते हुए उनके गुणों को बतलाते हैं।

शब्दार्थ – उदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान् – उदयन की कथा के ज्ञाता ग्राम के वृद्धों वाले, सुचरितफले – पुण्यफल के, स्वल्पीभूते – कम हो जाने पर, गाम् गतानाम् – पृथ्वी पर आये हुए, शेषैः पुण्यैः – बचे हुए पुण्यों से, दिवः – स्वर्ग के, कान्तिमत् – देदीप्यमान, खण्डम् – टुकड़े के, पूर्वोद्दिष्टाम् – पहते ही बताई हुई, अनुसर – जाना।

अनुवाद – जहाँ ग्राम के वृद्ध उदयन की कथा के जानकार हैं, ऐसी अवन्ति नामक नगरी पहुँचकर, पुण्यफलों के क्षीण हो जाने पर, बचे हुए पुण्यों के द्वारा पृथ्वी पर स्वर्गवासियों के द्वारा लाये गये एक स्वर्ग के एक प्रकाशमय टुकड़े के समान, जिसे पहले ही बताया जा चुका है ऐसी सम्पत्तिशालिनी नगरी उज्जयिनी को चले जाना।

व्याख्या – अवन्ति जो की मालवा का एक भाग है और उसकी राजधानी उज्जयिनी है, उस अवन्ति के माहात्म्य का वर्णन करते हुए यक्ष मेघ से कहता है कि जहाँ के वृद्धजन उदयन वासवदत्ता आदि की कथा से सुपरिचित हैं, जो कि भास रचित स्वप्नवासवदत्ता एवं कथासरित्सागरादि में प्राप्त होती है। ऐसी अवन्तिका नामक नगरी को पहुँच जाना। उसके उपरान्त उस सम्पत्तिशालिनी नगरी उज्जयिनी की ओर जाना जो कि स्वर्गवासियों के पुण्यों के अत्यल्प हो जाने पर, शेष बचे पुण्यों की सहायता से पृथ्वी पर लाये गये स्वर्ग के एक देदीप्यमान खण्ड के समान है अर्थात् उज्जयिनी स्वर्ग का एक कान्तिमत् खण्ड है जहाँ तुम्हें

जाना है। कवि का उज्जयिनी के प्रति यह प्रगाढ प्रेम ही उन्हें उज्जयिनी का पक्षपाती बताते हुए, उन्हें उज्जयिनी का निवासी सिद्ध करने वाले प्रमाणों में से एक है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – उदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान् – उदयनस्य वत्सराजस्य कथानां कोविदा ग्रामेषु वृद्धा येषां तान् (ब.व्री.)। **स्वर्गिणाम्** – स्वर्ग=इन्, षष्ठी बहु.। **गतानाम्** – गम्+त (क्त), ष.बहु. । **कान्तिमत्** – कान्ति+मतुप्। **श्रीविशालाम्** – श्रिया विशालाम् सम्पन्नाम् (तृ.तत्पु.)।

विशेष – दिवः खण्ड इव में इव के योग से स्वर्गखण्ड की सम्भावना होने से यहाँ उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

दीर्घीकुर्वन् पटु मदकलं कूजितं सारसानां

प्रत्यूषेषु स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः।

यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमङ्गानुकूलः

शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः।।31।।

अन्वयः – यत्र प्रत्यूषेषु पटु मदकलं सारसानाम् कूजितम् दीर्घीकुर्वन् स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः अङ्गानुकूलः शिप्रावातः प्रार्थनाचाटुकारः प्रियतम इव स्त्रीणां सुरतग्लानिम् हरति।

प्रसङ्ग – इस स्थल में शिप्रा नदी की वायु के गुणों का वर्णन किया गया है।

शब्दार्थ – प्रत्यूषेषु – प्रातःकाल में, पटु – तीव्र, मदकलम् – मद के कारण मधुर, दीर्घीकुर्वन् – बढाता हुआ, स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः – खिले हुए कमल के फूलों की सुगन्ध से सुगन्धित, अङ्गानुकूलः – (शरीर के) अङ्गों के अनुकूल, शिप्रावातः – शिप्रा नदी का वायु, स्त्रीणाम् – स्त्रियों की, हरति – दूर करता है।

अनुवाद – जहाँ, उज्जयिनी नगरी में प्रभात काल में तीव्र, एवं मद के कारण सारस पक्षियों की मीठी ध्वनि को विस्तार प्रदान करता हुआ, पूर्ण रूप से खिले हुए कमलों के सम्पर्क में आने से अत्यन्त सुगन्धित, अङ्गों का स्पर्श पाकर उन्हें सुख देने वाला शिप्रा नदी की वायु, संभोगप्राप्ति के लिये याचना करते समय चिकनी चुपड़ी बातें करने वाले प्रियतम के समान, वहाँ की स्त्रियों की संभोग काल से होने वाली थकावट को दूर करती है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – सारसानाम् – सरस्+अण् सारसाः तेषाम्। **स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः** – स्फुटितानां कमलानाम् आमोदेन सह या मैत्री तया। **मैत्री** –मित्र+अण+ङीप् स्त्रियाम्। **अङ्गानुकूल** – अङ्गानामनुकूलः (ष.तत्पु.)। **प्रार्थनाचाटुकारः** – प्रार्थनायां चाटुकारः, (स.तत्पु.)।

विशेष – कवि ने प्रकृत श्लोक में प्रियतम और शिप्रा के वायु की समता दिखलाई है। अतः यहाँ पूर्णोपमा अलङ्कार है।

हारांस्तारांस्तरलगुटिकान् कोटिशः शङ्खशुक्तीः

शष्पश्यामान् मरकतमणीनुन्मयूखप्ररोहान्।

दृष्ट्वा यस्यां विपणिरचितान् विद्रुमाणां च भङ्गान्

संलक्ष्यन्ते सलिलनिधयस्तोयमात्रावशेषाः।।प्रक्षिप्त/2।।

अन्वयः – यस्यां कोटिशः विपणिरचितान् तरलगुटिकान् तारान् हारान् शङ्खशुक्तीः शष्पश्यामान् उन्मयूखप्ररोहान् मरकतमणीन् विद्रुमाणां भङ्गान् च दृष्ट्वा सलिलनिधयः तोयमात्रावशेषाः संलक्ष्यन्ते।

शब्दार्थ – कोटिशः – करोड़ो की संख्या में, विपणिरचितान् – बाजार में फैलाये हुए, तरलगुटिकान् – महारत्न के रूप में मध्य की मणि वाले, तारान् – असली(शुद्ध)। शङ्खशुक्तीः – शङ्खों एवं सीपियों को, शष्पश्यामान् – घास की तरह हरे रंग वाले, उन्मयूखप्ररोहान् – उपर उठी हैं सुन्दर किरणें जिनकी, (घास के) अङ्कुर की तरह, मरकतमणीन् – मरकतमणियों (पन्ना) को, विद्रुमाणाम् – मूँगों के, भङ्गान् च – टुकड़ों को भी, दृष्ट्वा – देखकर, सलिलनिधयः – समुद्र, तोयमात्रावशेषाः – (रत्नों के निकल जाने से) केवल जलमात्र रह गया जिनमें ऐसे।

अनुवाद – जिस उज्जयिनी में करोड़ों की संख्या में बाजार में फैलाये हुए, मध्यभाग की मणि (लटकन) जिनके महारत्न हैं ऐसे असली हारों को (देखकर), शङ्ख और सीपियों को (देखकर), घास की तरह हरे वर्ण वाले एवं घास के अङ्कुर की तरह उपर उठी है जिनकी सुन्दर किरणें ऐसे मरकतमणियों को (देखकर), मूंगा रत्न के टुकड़ों को भी देखकर, ऐसा दिखलाई पड़ता है कि सभी रत्नों के निकल जाने के कारण समुद्रों में केवल जलमात्र अवशिष्ट रह गया है।

व्याख्या – यक्ष मेघ से उज्जयिनी के बाजारों में उपलब्ध रत्नों का वर्णन करते हुए कहता है कि उस उज्जयिनी के बाजार में करोड़ों की संख्या में फैलाए हुए (रत्नों को), जिनके मध्यमणि (हार की लटकन) के स्थान पर महामणि होता है ऐसे असली हारों को देखकर, और शङ्खों एवं सीपियों को देखकर एवं घास के समान हरे रंग वाली और उपर उठी हुई सुन्दर चमकदार किरणों वाली मरकतमणियों देखकर, और मूंगा रत्न के टुकड़ों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि समुद्र के सारे ही रत्न इस उज्जयिनी में आ पहुँचे हैं और समुद्र में होने वाले इन रत्नों के इस उज्जयिनी में आ जाने से मानो समुद्र में सिर्फ जलमात्र ही अवशिष्ट रह गया है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – विपणिरचितान् – पण्यवीथिकासु प्रसारितान्। **तरलगुटिकान्** – तरलभूता गुटिका येषां ते (ब.व्री.)। **शंखशुक्तीः** – शंखाश्च शुक्तयश्च तान् (द्वन्द्व)। **शप्पश्यामान्** – शष्पम् इव श्यामान् (तत्पु.)। **उन्मयूखप्ररोहान्** – उद्गता मयूखा येषां ते (ब. व्री.)।

प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं वत्सराजोऽत्र जह्रे

हैमं तालद्रुमवनमभूदत्र तस्यैव राज्ञः।

अत्रोद्भ्रान्तः किल नलगिरिः स्तम्भमुत्पाट्य दर्पा–

दित्यागान्तून् रमयति जनो यत्र बन्धूनभिज्ञः।।प्रक्षिप्त/3।।

अन्वयः – अत्र वत्सराजः प्रद्योतस्य प्रियदुहितरम् जह्रे, अत्र तस्य एव राज्ञः हैमम् तालद्रुमवनम् अभूत्, अत्र किल नलगिरिः दर्पात् स्तम्भम् उत्पाट्य उद्भ्रान्तः, इति यत्र अभिज्ञः जनः आगन्तून् बन्धून् रमयति।

प्रसङ्ग – प्रकृत स्थल में वर्णित है कि उज्जयिनी के लोग उज्जयिनी विषयक विविधकथाओं को सुनाकर यहाँ के आगन्तुकों का मनोरञ्जन करते हैं।

शब्दार्थ – प्रद्योतस्य – प्रद्योत की, प्रियदुहितरम् – प्रियपुत्री का, हैमम् – स्वर्णिम, तालद्रुमवनम् – तालवृक्षों का वन, अत्र किल – यहाँ निश्चय ही, दर्पात् – मद (अभिमान) से, स्तम्भम् – खम्भे को, अभिज्ञः – जानकार, ,रमयति – मनोरञ्जित करते हैं।

अनुवाद – यहाँ (उज्जयिनी में) वत्सदेश के राजा (उदयन) ने उज्जयिनी के राजा प्रद्योत की प्रियपुत्री (वासवदत्ता) का अपहरण किया, यहाँ उस ही राजा प्रद्योत के स्वर्णिम् ताल के पेड़ों का वन हुआ। यहाँ निश्चय ही (राजा प्रद्योत का) नलगिरि नामक हाथी मद के कारण खम्भे को उखाड़कर इधर-उधर घूमता रहा। उज्जयिनी में रहने वाले ऐसी कथाओं के जानकार लोग दूरदेश से आये हुए बन्धुओं का मनोरञ्जन (कथा सुनाकर) करते हैं।

व्याख्या – उज्जयिनी के माहात्म्यवर्णन के ही प्रसङ्ग में यक्ष मेघ से कहता है कि उज्जयिनी में प्रद्योत राजा हुए, उनकी प्रियपुत्री जिसका नाम वासवदत्ता था, उस वासवदत्ता का अपहरण वत्स देश के राजा उदयन द्वारा यहीं उज्जयिनी में किया गया। इसी उज्जयिनी में राजा प्रद्योत के सोने के तालवृक्षों का वन हुआ करता था। यहाँ उज्जयिनी में निश्चित रूप से उसी राजा प्रद्योत के नलगिरी नामक हाथी ने अभिमान से खम्भे को उखाड़कर चारों तरफ अफरा तफरी मचा दी थी। इन सारी कथाओं के ज्ञाता लोग जो यहाँ निवास करते हैं, वे सब बाहर से आये हुए लोगों को ये सभी कथाएं सुनाकर उनका मनोरञ्जन किया करते हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – वत्सराजः – वत्सानां राजा। **प्रियदुहितरम्** – प्रिया दुहिता ताम्, दुहित, द्वि.ए.व.। **राज्ञः** – राजन्, षष्ठी एक.व.। अभूतृ – भू, लुङ् प्र.पु.एक। उत्पाटय – उत्+पट्+य।

विशेष – राजा उदयन की कथा बृहत्कथा में वर्णित है। प्रकृत श्लोक में भाविक अलङ्कार है।

पत्रश्यामा दिनकरहयस्पर्धिनो यत्र वाहाः

शैलोदग्रास्त्वमिव करिणो वृष्टिमन्तः प्रभेदात्।

योधाग्रण्यः प्रतिदशमुखं संयुगे तस्थिवांसः

प्रत्यादिष्टाभरणरुचयश्चन्द्रहासव्रणाङ्कैः।।प्रक्षिप्त/4।।

अन्वयः – यत्र वाहाः पत्रश्यामाः दिनकरहयस्पर्धिनः, शैलोदग्राः करिणः प्रभेदात् त्वम् इव वृष्टिमन्तः। योधाग्रण्यः संयुगे प्रतिदशमुखम् तस्थिवांसः चन्द्रहासव्रणाङ्कैः प्रत्यादिष्टाभरणरुचयः।

प्रसङ्ग – उज्जयिनी के अश्वों, हाथियों एवं योद्धाओं के उत्कर्ष का वर्णन करते हुए यक्ष कहता है।

शब्दार्थ – वाहाः – घोड़े, पत्रश्यामाः – पत्रों के समान श्याम वर्ण वाले, दिनकरहयस्पर्धिनः – सूर्य के घोड़ों के साथ स्पर्धा करने वाले हैं, शैलोदग्राः – पर्वतों की तरह ऊँचे, करिणः – हाथी, प्रभेदात् – मद जल के बहने से, वृष्टिमन्तः – वर्षा करने वाले हैं, योधाग्रण्यः – अग्रणी योद्धा ने, संयुगे – युद्ध में, प्रतिदशमुखम् – रावण के समक्ष, तस्थिवांसः – खड़े होने से।

अनुवाद – जहाँ (उज्जयिनी में) घोड़े पत्रों की तरह हरे वर्ण वाले हैं, वे घोड़े सूर्य के घोड़ों के साथ भी स्पर्धा करने में समर्थ हैं। पर्वतों की तरह उँचे हाथी मद जल के बहने के कारण तुम्हारी (मेघ की) तरह वर्षा करने वाले हो गये हैं। योद्धा यहाँ के रावण के समक्ष खड़े होने वाले हैं, अतः रावण के चन्द्रहास (तलवार) के प्रहार के चिन्हों से उन्होंने आभूषणों की शोभा को त्याग दिया है।

व्याख्या – उज्जयिनी के अश्वों, हाथियों एवं योद्धाओं के माहात्म्य का वर्णन करते हुए यक्ष मेघ से कहता है कि उज्जयिनी के अश्व पत्तों के समान श्याम वर्ण वाले और सूर्यदेव के अश्वों को टक्कर देने में समर्थ हैं। इस उज्जयिनी के हाथी पर्वत के समान ऊँचे एवं विशालकाय हैं, उन हाथियों से निरन्तर मदजल टपकता रहता है, अतः मद जल के टपकने से वे हाथी बिल्कुल तुम्हारी तरह वर्षा करने वाले हैं। उज्जयिनी के अग्रणी योद्धा तो इतने साहसी हैं कि युद्ध में वे रावण के समक्ष खड़े होने वाले हैं और रावण के अस्त्र चन्द्रहास के प्रहार से उनके शरीर पर जो घाव हुए उन्होंने उन घावों को ही अपना आभूषण बना लिया, और आभूषणों की शोभा का त्याग कर दिया।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – वाहाः – वह्+णिच्+अच्। **शैलोदग्राः =** शैलवत् उदग्राः (उपमित समास)। **वृष्टिमन्तः** – वृष्टि+मतुप्। **योधाग्रण्यः** – योधानाम् अग्रण्यः (षष्ठी तत्पुरुष समास),

प्रतिदशमुखम् – दशमुखं प्रति इति प्रतिदशमुखम् (अव्ययीभाव समास)। **चन्द्रहासव्रणाङ्कैः** – चन्द्रहासस्य व्रणानाम् अङ्कैः (षष्ठी तत्पुरुष समास)।

जालोद्गीर्णैरुपचितवपुः केशसंस्कारधूपै–

र्बन्धुप्रीत्या भवनशिखिभिर्दत्तनृत्योपहारः।

हर्म्येष्वस्याः कुसुमसुरभिष्वध्वखेदं नयेथा

लक्ष्मीं पश्यँल्ललितवनितापादरागाङ्कितेषु।।32।।

अन्वयः – जालोद्गीर्णैः केशसंस्कारधूपैः उपचितवपुः बन्धुप्रीत्या भवनशिखिभिः दत्तनृत्योपहारः कुसुमसुरभिषु ललितवनितापादरागाङ्कितेषु अस्याः हर्म्येषु लक्ष्मीं पश्यन् अध्वखेदम् नयेथाः।

प्रसङ्ग – यक्ष मेघ को उज्जयिनी के दर्शन एवं अप्रतिम् अनुभव द्वारा थकान दूर करने का परामर्श देता है।

शब्दार्थ – जालोद्गीर्णैः – खिड़कियों की जालियों से निकलने वाले, केशसंस्कारधूपैः – केशों को सुगन्धित करने वाले धूप से, उपचितवपुः – बढे हुए आकार वाला (मेघ), भवनशिखिभिः – घरों के मोरों द्वारा, कुसुमसुरभिषु – पुष्पों से सुगन्धित, हर्म्येषु – महलों में, लक्ष्मीम् – शोभा को, अध्वखेदम् – मार्ग की थकान को, नयेथाः – दूर करना।

अनुवाद – खिड़कियों से निकलने वाली, स्त्रियों के केशों को सुगन्धित करने वाली धूप (के तुम में मिल जाने से) आकार में बढा हुआ, मित्रप्रेम के कारण पालतू मोरों के द्वारा नृत्य रूप उपहार दिया गया, पुष्पों की सुगन्ध से सुगन्धित और सुन्दर स्त्रियों के महावर के चिह्नों से अङ्कित, इस (उज्जयिनी) के महलों की शोभा को देखते हुए (अपनी मार्ग में हुई) थकावट को दूर करना।

व्याख्या – प्रकृत श्लोक उज्जयिनी वर्णन के साथ ही उज्जयिनी द्वारा मेघ के उपकृत होने का वर्णन भी करता है। यहाँ की स्त्रियाँ केशों को सुगन्धित करने के लिये धूप नामक सुगन्धित द्रव्य को लगाती हैं, अतः उन स्त्रियों के केशों को सुगन्धित करने वाले धूप के खिड़कियों या रोशनदानों से निकल कर मेघ में मिल जाने से मेघ के आकार में वृद्धि होगी, मोर और मेघ को मित्र माना जाता है, इसी मित्रता के कारण मेघ के आ जाने से उज्जयिनि के घरों के मोर नृत्य करेंगे, यह नृत्य मोरों द्वारा मेघ को दिया गया उपहार होगा। इस उज्जयिनी के महलों की सुन्दरता के वर्णन में कालिदास कहते हैं कि ऐसे महल जो पुष्पों के संसर्ग से सुगन्धित हैं, सुन्दर स्त्रियों के पैरों में लगे महावर के चिह्नों से अङ्कित हैं। ऐसे महलों की शोभा, सुन्दरता को देखते हुए, मार्ग में हुई थकान को दूर करना।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – जालोद्गीर्णैः – जालेभ्यः उद्गीर्णाः (पं.त.)। **केशसंस्कारधूपैः –** केशानां संस्कारस्तस्य धूपैः (ष.तत्पु.)। **उपचितवपुः –** उपचितं वपुः यस्य सः (ब.व्री.)। **बन्धुप्रीत्या**

– बन्धौ बन्धुरिति वा प्रीतिः तया। दत्तनृत्योपहारः – दत्तो नृत्यमेवोपहारः उपायनं यस्मै सः (ब. व्री.)। **कुसुमसुरभिषु** – कुसुमैः सुरभिषु (तृ.तत्पु.)।

भर्तुः कण्ठच्छविरिति गणैः सादरं वीक्ष्यमाणः

पुण्यं यायास्त्रिभुवनगुरोर्धाम चण्डीश्वरस्य।

धूतोद्यानं कुवलयरजोगन्धिभिर्गन्धवत्या–

स्तोयक्रीडानिरतयुवतिस्नानतिक्तैर्मरुद्भिः।।33।।

अन्वयः – भर्तुः कण्ठच्छविः इति गणैः सादरम् वीक्ष्यमाणः कुवलयरजोगन्धिभिः तोयक्रीडानिरतयुवतिस्नानतिक्तैः गन्धवत्याः मरुद्भिः धूतोद्यानम् त्रिभुवनगुरोः चण्डीश्वरस्य पुण्यम् धाम यायाः।

प्रसङ्ग – उज्जयिनी में स्थित महाकाल मंदिर को अवश्य जाना, ऐसा यक्ष का मेघ से कहता है।

शब्दार्थ – भर्तुः – स्वामी के, कण्ठच्छविः – कण्ठ की शोभा के समान शोभा है, सादरम् – आदरपूर्वक, वीक्ष्यमाणः – देखा जाता हुआ, कुवलयरजोगन्धिभिः – कमलपुष्प के धूली (पराग) की गन्ध से, मरुद्भिः – वायु से, धूतोद्यानम् – प्रकम्पित है उद्यान (जिसका), यायाः – जाना।

अनुवाद – (श्याम वर्ण वाला होने से) इसकी शोभा स्वामी (शिवजी) के कण्ठ के समान है ऐसा सोचते हुए शिवजी के गणों के द्वारा आदरपूर्वक देखे जाते हुए (तुम मेघ), कमलपुष्प के पराग की गन्ध से एवं जलक्रीड़ा में युवतियों द्वारा प्रयुक्त साधन (चन्दनादि) से सुगन्धित गन्धवती नदी के वायु से कम्पित उपवन वाले, तीनों लोकों के स्वामी पार्वती के पति (शिव) के पवित्र धाम (महाकाल को) जाना।

व्याख्या – प्रकृत श्लोक में यक्ष मेघ को महाकाल दर्शन का निर्देश देते हुए वहाँ के माहात्म्य का वर्णन करते हुए कहता है कि जब तुम वहाँ जाओगे तो भगवान शिव के नन्दी गण तुम्हें आदरपूर्वक देखेंगे क्योंकि समुद्र मंथन से निकले हुए कालकूट नामक विष को पी लेने से भगवान शिव का गला काला हो गया था, मेघ की कान्ति भी काली ही होती है, अतः मेघ और भगवान शिव की शोभा को एक सी पाकर शिव के गण मेघ को आदरपूर्वक देखेंगे। यक्ष कहता है कि त्रिलोकस्वामी एवं पार्वती के पति भगवान शिव के ऐसे पुण्य धाम महाकाल को जाना जहाँ के उद्यान गन्धवती नदी से कमलपुष्पों के परागों को छूकर आने वाले एवं स्नान या जलक्रीडा करने वाली युवतियों के द्वारा प्रयुक्त द्रव्य चन्दनादि की गन्ध से सुगन्धित वायु के द्वारा सदैव प्रकम्पित रहते हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – कण्ठच्छविः – कण्ठस्येव छविः शोभा यस्यासौ (ब.व्री.)। **कुवलयरजोगन्धिभिः** – कुवलयानां रजः (ष.तत्पु.) कुवलयरजः तस्य यो गन्धः स येषामस्तीति तैः (ब.व्री.)। **तोयक्रीडानिरतयुवतिस्नानतिक्तैः** – तोये क्रीडा तोयक्रीडा तासु निरतानाम्

आसक्तानां (स.तत्पु.) युवतीनां यत् स्नानं स्नानीयं चन्दनादि तेन तिक्तः सुवासितैः। **त्रिभुवनगुरोः** – त्रयाणां भुवनानां समाहारः (समाहार द्विगु)।

अप्यन्यस्मिञ्जलधर! महाकालमासाद्य काले

स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदत्येति भानुः।

कुर्वन्सन्ध्याबलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीया–

मामन्द्राणां फलमविकलं लप्स्यसे गर्जितानाम्।।34।।

अन्वयः – जलधर! महाकालम् अन्यस्मिन् अपि काले आसाद्य ते स्थातव्यम् यावत् भानुः नयनविषयम् अत्येति। शूलिनः श्लाघनीयाम् सन्ध्याबलिपटहताम् कुर्वन् आमन्द्राणाम् गर्जितानाम् अविकलम् फलम् लप्स्यसे।

प्रसङ्ग– यक्ष मेघ से कहता है कि महाकाल मंदिर में सन्ध्या के पूजन तक रुककर अपनी गर्जना से शिव का अभिवादन करना।

शब्दार्थ – जलधर!–हे मेघ! महाकालम्–महाकाल(मंदिर) को। अन्यस्मिन् अपि काले–अन्य समय में भी। आसाद्य–प्राप्त कर। ते स्थातव्यम्–तुम्हे रुकना चाहिये। यावत् भानुः–जबतक सूर्य। नयनविषयम् अत्येति–आँखो के विषय को अतिक्रान्त नहीं कर देता। शूलिनः–शिव की।श्लाघनीयाम्–प्रशंसनीय। सन्ध्याबलिपटहताम्–सायंकालीन पूजा मे नगाड़े का काम। कुर्वन्–करता हुआ(तू)। आमन्द्राणाम्–गम्भीर। गर्जितानाम्–गर्जना का। अविकलम्–सम्पूर्ण। फलम् लप्स्यसे–फल को प्राप्त करेगा।

अनुवाद – हे मेघ महाकाल मंदिर में किसी भी समय पहुँचकर तुम्हे तब तक रुकना चाहिये जब तक सूर्य आंखों से ओझल नहीं हो जाता, (क्योंकि) शिव की सायंकालीन पूजा के समय नगाड़े का कार्य करता हुआ (तू अपनी)गम्भीर गर्जना का अवश्य ही सम्पूर्ण फल को प्राप्त करेगा।

व्याख्या – यक्ष मेघ को महाकाल दर्शन का निर्देश देते हुए कहता है कि तुम किसी भी समय महाकाल पहुँचों लेकिन वहाँ तब तक अवश्य रुकना जब तक सूर्य आंखो से ओझल नहीं हो जाता अर्थात् संन्ध्या नहीं हो जाती, क्योंकि द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से एक महाकाल की सायंकालीन पूजा का एक विषेष महत्व माना जाता है। उस सायंकालीन पूजा में तुम्हारा यह गम्भीर गर्जन नगाड़े का कार्य करेगा एवं शिव को प्रसन्न करेगा। प्रसन्न शिव के द्वारा यह गर्जन अवश्य ही अपने सम्पूर्ण फल को प्राप्त करेगा, जिससे तुम कृतार्थ हो जाओगे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – जलधर – धरतीति धरः जलानां धरः। **स्थातव्यम्** – स्था+तव्यत् (कृत्य प्र.)। **श्लाघनीयाम्** – श्लाघ+अनीयर्। **सन्ध्याबलि** – सम्यक् ध्यायन्त्यस्याम् इति, सम्+ध्यै+अङ् 'सन्ध्या'।

पादन्यासः क्वणितरसनास्तत्र लीलावधूतै–

रत्नच्छायाखचितबलिभिश्चामरैः क्लान्तहस्ताः।

वेश्यास्त्वत्तो नखपदसुखान् प्राप्य वर्षाग्रबिन्दू–

नामोक्ष्यन्ते त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान्कटाक्षान्।।35।।

अन्वयः – तत्र पादन्यासैः क्वणितरसनाः लीलावधूतैः रत्नच्छायाखचितबलिभिः चामरैः क्लान्तहस्ताः वेश्याः त्वत्तः नखपदसुखान् वर्षाग्रबिन्दून् प्राप्य त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान् कटाक्षान् आमोक्ष्यन्ते।

प्रसङ्ग – प्रकृत पद्य में महाकाल मंदिर की नर्तकियों का स्वरूप बतलाया गया है।

शब्दार्थ – पादन्यासैः – पैरों को थिरकाने से, क्वणितरसनाः – (जिनकी) करधनियाँ बजती हैं, लीलावधूतैः – विलासपूर्वक हिलाए गए, रत्नच्छायाखचितबलिभिः – रत्नों की कान्ति से विभूषित, क्लान्तहस्ताः – थके हुए हाथों वाली, कटाक्षान् – कटाक्षों को, आमोक्ष्यन्ते – छोड़ेंगी।

अनुवाद – वहाँ महाकाल मंदिर में सन्ध्याकाल में नर्तकियों द्वारा पैरों को थिरकाने से उनकी करधनियाँ बजती हैं, नर्तकियों द्वारा पहने हुए रत्नों की कान्ति से विभूषित चँवरों को विलासिता से हिलाने के कारण थके हुए हाथों वाली नर्तकियों के शरीर में नखक्षत द्वारा हुई खरोंचो पर जब तुम्हारी वर्षा की पहली बूंदें पड़ेंगी तो वे नर्तकियाँ तुम पर भ्रमरपंक्ति के समान लम्बे-लम्बे कटाक्ष छोड़ेंगी।

व्याख्या – महाकाल मंदिर में सन्ध्याकाल तक रुकने का परामर्श देने के बाद यक्ष का कथन है कि, महाकाल मंदिर में सन्ध्याकाल में नर्तकियों का नृत्य होता है उन नर्तकियों के थिरकने से उनकी करधनियाँ बजती हैं। उन नर्तकियों के हाथ में चँवर भी होते हैं जो उनके द्वारा धारण किये हुए रत्नों की छाया पड़ने से विभूषित होते रहते हैं, ऐसे कान्तिव्याप्त चँवरों को अपने कोमल हाथों से डुलाने के कारण उन नर्तकियों के हाथ थक जाते हैं। उन नर्तकियों के शरीर पर पड़े नाखूनों के घाव, जो कि अपने प्रेमी के द्वारा रतिक्रीड़ा के समय हुए हैं, ऐसे घाव वाले स्थानों पर जब तुम्हारी वर्षा की पहली बूँदें पड़ेंगी तो अवश्य ही उन्हें सूकून मिलेगा, वे तुमसे प्रसन्न हो जायेंगी। तुमपर अपनी दृष्टि बनायेंगी और भ्रमरों की बड़ी लम्बी पंक्ति के समान कटाक्षों को तुम पर डालेंगी।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – लीलावधूतः – लीलया अवधूतैः कम्पितैः। **रत्नच्छायाखचितवलिभिः** – रत्नानां कंकणमणीनां कान्त्या खचिता। **क्लान्तहस्ताः** – क्लान्तौ हस्तौ यासां ताः (ब.व्री.)। **नखपदसुखान्** – नखानां पदेषु (ष.तत्पु.)। वर्षाग्रबिन्दून – अग्राः बिन्दवः (कर्मधा.) वर्षस्याग्रबिन्दवः (ष.तत्पु.) तान्।

पश्चादुच्चैर्भुजतरुवनं मण्डलेनाभिलीनः

सान्ध्यं तेजः प्रतिनवजपापुष्परक्तं दधानः।

नृत्यारम्भे हर पशुपतेरार्द्रनागाजिनेच्छां

शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं दृष्टभक्तिर्भवान्या।।36।।

अन्वयः – पश्चात् पशुपतेः नृत्यारम्भे प्रतिनवजपापुष्परक्तम् सान्ध्यम् तेजः दधानः उच्चैः भुजतरुवनं मण्डलेन अभिलीनः भवान्या शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं दृष्टभक्तिः आर्द्रनागाजिनेच्छाम् हर।

प्रसङ्ग – महादेव के ताण्डव नृत्य में मेघ किस तरह सहायता करेगा यह यक्ष बतलाते हैं।

शब्दार्थ – प्रतिनवजपापुष्परक्तम् – ताजे जपा पुष्प के समान लाल, सान्ध्यं तेजः – सायं की कान्ति को, उच्चैः भुजतरुवनम् – उन्नत भुजारूपी वृक्षों के वन पर, मण्डलेन अभिलीनः – वृत्ताकार रूप से व्याप्त होकर, भवान्या – पार्वती द्वारा, आर्द्रनागाजिनेच्छाम् हर – हाथी के गीले चर्म की इच्छा को हर लेना।

अनुवाद – तत्पश्चात् भगवान शिव के नृत्य के आरम्भ में नवीन जपापुष्प के समान रक्तिम सन्ध्याकालीन कान्ति को धारण करता हुआ उन्नत भुजारूपी वृक्षों के वन पर मण्डलाकार रूप में व्याप्त, देवी पार्वती के द्वारा बिना भय के एवं निश्चयपूर्ण नयनों से देखी गई भक्ति वाले (तुम महादेव की) गज की (रक्त से) आर्द्र खाल (ओढने की) इच्छा को दूर कर देना।

व्याख्या – कालिदास कहते हैं कि हे मेघ! पीछे से शिव जी द्वारा ताण्डव नृत्य के आरम्भ करने पर ताजे जपा के फूलों के समान अत्यन्त लाल लाल कान्ति को धारण करना। जिस प्रकार सन्ध्याकालीन आभा अरुणिमा होती है उसी प्रकार रक्तिमा आभा को धारण करता हुआ शिव जी की उन्नत भुजारूपी वृक्षों के जंगल पर तू मण्डलाकार रूप में व्याप्त होना। महादेवी पार्वती से भयरहित नेत्रों द्वारा टकटकी लगाकर देखी गई भक्ति वाले तुम शिवजी की हाथी के ताजे चर्म की इच्छा को दूर करना।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – पशुपतेः – पशूनां पतिः (ष.तत्पु.) तस्य। **प्रतिनवजपापुष्परक्तम्** – प्रतिनवम् (नवं प्रतिगतं प्रतिनवं) प्रत्यग्रं यत् जपा पुष्पं तद्वद्रक्तमरुणम् (उपमानकर्मधा.)। उच्चैर्भुजतरुवनम् – उच्चैरुन्नतं भुजा एव तरवः (कर्मधा.) तेषां वनम्। **भवान्या** – भवस्य पत्नी इति, भव+आनुक् ङीष, भवानी तया।

गच्छन्तीनां रमणवसतिं योषितां तत्र नक्तं

रुद्धालोके नरपतिपथे सूचिभेद्यैस्तमोभिः।

सौदामन्या कनकनिकषस्निग्धया दर्शयोर्वीं

तोयोत्सर्गस्तनितमुखरो मा स्म भूर्विक्लवास्ताः।।37।।

अन्वयः – तत्रनक्तं रमणवसतिम् गच्छन्तीनाम् योषिताम् सूचिभेद्यैः तमोभिः रुद्धालोके नरपतिपथे कनकनिकषस्निग्धया सौदामन्या उर्वीम् दर्शय। तोयोत्सर्गस्तनितमुखरः मा स्म भूः ताः विक्लवाः।

प्रसङ्ग – यक्ष मेघ को उज्जयिनी में अबलाओं को अपने विद्युत प्रकाश द्वारा मार्ग दिखलाने का परामर्श देता है।

शब्दार्थ – नक्तम् – रात्रि को, रमणवसतिम् – प्रेमियों के घरों को, योषिताम् – स्त्रियों के, रुद्धालोके – न दिखाई देने वाले, नरपतिपथे – राजमार्ग में, सौदामन्या – बिजली द्वारा, उर्वीम् दर्शय – मार्ग दिखलाना, तोयोत्सर्गस्तनितमुखरः – बारिश तथा गर्जना द्वारा शब्दायमान, मा स्म भूः – नहीं होना।

अनुवाद – वहाँ (उज्जयिनी में) रात्रि में प्रियतम के घर जाती हुई वनिताओं को घोर अन्धकारवश प्रकाश से रहित राजमार्ग में कसौटी पर स्वर्ण रेखा के समान आलोकित बिजली से भूमि दिखाना एवं बारिश और गर्जन का शब्द न करना, क्योंकि वे (वनिताएं) डरपोक होती हैं।

व्याख्या – यक्ष मेघ से कहता है कि उज्जयिनी में अभिसारिका स्त्रियाँ रात्रिकाल में अपने अपने प्रियतम के घरों को जाती हैं। गहन अन्धकार के कारण उन्हें राजमार्ग भलीभाँति दिखाई नही देता है, ऐसे में जब तुम बिजली चमकाओगे तो वह बिजली राजमार्ग को सोने की शोभा के समान प्रकाशित कर देगी। इस प्रकाश में वे वनिताएं अपना रास्ता खोज लेंगी। यक्ष मेघ से यह भी कहता है कि तुम वर्षा का और गरजने का शब्द मत करना क्योंकि यदि तुम गरजोगे तो वे स्त्रियाँ अत्यधिक भयभीत हो जायेंगी, क्योंकि वे स्वभाव से ही डरपोक होती हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – रमणवसतिम् – रमणानां वसतिम् (ष.तत्पु.)। **रुद्धालोके** – रुद्ध आलोकः यस्मिन् तस्मिन् (ब.व्री.)। **नरपतिपथे** – नरपतेः पन्थाः (ष.तत्पु.)। **सूचिभेद्यैः** – सूचिभिः भेद्यैः (ष.तत्प.)। **तोयोत्सर्गस्तनितमुखरः** – तोयस्य उत्सर्गः तोयोत्सर्गेण तोयोत्सर्गसहितेन स्तनितेन (मध्यमपदलोपी समास) मुखरः।

तां कस्यांचिद्भवनवलभौ सुप्तपारावतायां

नीत्वा रात्रिं चिरविलसनात्खिन्नविद्युत्कलत्रः।

दृष्टे सूर्ये पुनरपि भवान् वाहयेदध्वशेषं

मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः।।38।।

अन्वयः – चिरविलसनात् खिन्नविद्युत्कलत्रः भवान् सुप्तपारावतायाम् कस्यांचित् भवनवलभौ ताम् रात्रिम् नीत्वा सूर्ये दृष्टे पुनः अपि अध्वशेषम् वाहयेत्, सुहृदाम् अभ्युपेतार्थकृत्याः न मन्दायन्ते खलु।

प्रसङ्ग – मेघ की बिजलीरूपी प्रिया के थक जाने के कारण उज्जयिनी के ही किसी घर की छत पर रात्रि निवास का परामर्श देते हैं।

शब्दार्थ – चिरविलसनात् – दीर्घकाल तक चमकने से, खिन्नविद्युत्कलत्रः – जिसकी बिजलीरूपी स्त्री थक चुकी है, सुप्तपारावतायाम् – जिस पर कबूतर सोये हों ऐसे, भवनवलभौ – घर की छत पर, सूर्ये दृष्टे पुनःअपि – सूर्य दिखलाई देने पर फिर, अध्वशेषम् वाहयेत् – शेष मार्ग को पार करना।

अनुवाद – लम्बे समय तक प्रकाशमान रहने से क्लान्त बिजलीरूपी पत्नी वाले तुम उस रात्रि को किसी भवन की छत पर 'जहाँ कपोत सोते हों' व्यतीत कर सूर्योदय के पश्चात् अवशिष्ट मार्ग को पूर्ण करना। जिन्होनें मित्रों के स्वार्थ (प्रयोजन) की बात स्वीकार की है वे कभी शिथिल नहीं पड़ते।

व्याख्या – यक्ष मेघ से कह रहा है कि उज्जयिनी की अभिसारिकाओं को मार्ग दिखाने हेतु चमकने वाली तुम्हारी स्त्री देर तक चमकने से थक जायेगी। ऐसी स्त्री वाले तुम नगर के किसी भवन की छत पर ही रात्रि विश्राम करना। भवनों की छत पर कबूतर रात्रि में रहते हैं। तुम भी उसी प्रकार भवन की छत पर रात बिताना। जब सूर्योदय हो जाए तब तुम आगे के मार्ग पर प्रस्थान करना और ज्यादा विश्राम मत करना क्योंकि जिसने किसी मित्र के हितार्थ कोई कार्य करना स्वीकार किया है वो ढीला नहीं पड़ सकता।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – चिरविलसनात् – चिरं विलसनं तस्मात्। **खिन्नविद्युत्कलत्रः** – खिन्नं विद्युदेव कलत्रं यस्य सः (ब.व्री.)। **अध्वशेषम्** – अध्वनः शेषम्। **सुहृदाम्** – सुष्ठु हृदयं यस्यासौ सुहृत् तेषाम्।

तस्मिन्काले नयनसलिलं योषितां खण्डितानां

शान्तिं नेयं प्रणयिभिरतो वर्त्म भानोस्त्यजाशु।

प्रालेयास्त्रं कमलवदनात्सोऽपि हर्तुं नलिन्याः

प्रत्यावृत्तस्त्वयि कररुधि स्यादनल्पाभ्यसूयः।।39।।

अन्वयः – तस्मिन् काले प्रणयिभिः खण्डितानाम् योषिताम् नयनसलिलम् शान्तिम् नेयम् अतः भानोः वर्त्म आशु त्यज। सः अपि नलिन्याः कमलवदनात् प्रालेयास्रम् हर्तुम् प्रत्यावृत्तः त्वयि कररुधि अनल्पाभ्यसूयः स्यात्।

प्रसङ्ग – कामिनियों के सौकर्य के लिये यक्ष मेघ को सूर्योदय के समय सूर्य का मार्ग छोड़ देने के लिए कहता है।

शब्दार्थ – प्रणयिभिः – प्रेमियों के द्वारा, योषिताम् – नायिकाओं के, नयनसलिलम् – आँसुओं को, शान्तिम् नेयम् – शान्त करना चाहिए, आशु त्यज – शीघ्र ही छोड़ देना, नलिन्याः –

कमलिनी के, कमलवदनात् – कमलरूपी मुख से, प्रालेयास्रम् – ओस रूपी अश्रुओं को, अनल्पाभ्यसूयः – बहुत अधिक क्रोध वाला, स्यात् – होगा।

अनुवाद – उस समय प्रणयि जनों को अपनी खण्डिता स्त्रियों के अश्रुओं को शान्त करना है। एतदर्थ तुम सूर्य का मार्ग छोड़ देना वह (सूर्य भी) पद्मिनी के सरोजमुख से ओंस रूपी अश्रुओं को दूर करने वापस आया है। (सूर्य के) किरण रूपी हाथों को रोकने वाले तुम्हारे प्रति (कदाचित्) वह अत्यधिक द्वेष पाल ले।

व्याख्या – यक्ष मेघ को बतलाता है कि जब वह भवन की छत पर रात्रि विश्राम कर सूर्योदय होने पर आगे बढेगा तो यह ध्यान रखे कि उस समय प्रेमी जन अपनी खण्डिता स्त्री के आंसुओं को शान्त करने का प्रयत्न करते हैं। सूरज भी रात बिताकर अब प्रकट हुआ है अतः कमलिनी भी ओंस के रूप में अश्रु बहाती है। सूरज को उसे शान्त करना है इसलिए वह वापस आया है। अतः तुम उसका मार्ग जल्दी छोड़ देना। यदि तुम सूरज के किरण रूपी हाथों को रोकोगे तो सम्भावित है कि वह तुम्हारे प्रति अत्यधिक द्वेष रखने लगे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – प्रणयिभिः – प्रणय+इन्। **नयनसलिलम्** – नयनयोः सलिलम् (ष. तत्पु.)। **कमलवदनात्** – कमलम् एव वदनं, तस्मात् (कर्मधा.)। **अनल्पाभ्यसूयः** – न अल्पा अनल्पा (नञ् तत्पु.) अनल्पा अभ्यसूया यस्य सः (ब.व्री.)।

गम्भीरायाः पयसि सरितश्चेतसीव प्रसन्ने

छायात्मापि प्रकृतिसुभगो लप्स्यते ते प्रवेशम्।

तस्मादस्याः कुमुदविशदान्यर्हसि त्वं न धैर्या–

न्मोघीकर्तुं चटुलशफरोद्वर्तनप्रेक्षितानि।।40।।

अन्वयः – गम्भीरायाः सरितः चेतसि इव प्रसन्ने पयसि प्रकृतिसुभगः ते छायात्मा अपि प्रवेशम् लप्स्यते। तस्मात् अस्याः कुमुदविशदानि चटुलशफरोद्वर्तनप्रेक्षितानि त्वम् धैर्यात् मोघीकर्तुम् न अर्हसि।

प्रसङ्ग – नायिकास्वरूपा गम्भीरा नदी के प्रेक्षणीय चितवनों का आनन्द मेघ अवश्य ले, यह प्रकृत स्थल पर वर्णित है।

शब्दार्थ – प्रसन्ने चेतसि इव – प्रसन्न मन के समान, पयसि – जल में, प्रकृतिसुभगः – स्वभाव से ही सुन्दर, छायात्मा – प्रतिबिम्ब रूपी आत्मा, लप्स्यते – प्राप्त करेगी, कुमुदविशदानि – कुमुद की तरह धवल, धैर्यात् – धीरता के कारण।

अनुवाद – गम्भीरा नामक नदी के प्रसन्न निर्मल चित्त के समान उसके जल में स्वभाव से सुन्दर तेरी प्रतिबिम्ब (छाया) रूपी आत्मा अवश्य ही प्रवेश प्राप्त करेगी। अतः इस गम्भीरा

नदी के कुमुद के पुष्प की तरह सफेद और चञ्चल मछलियों की उछल-कूदरूपी चितवनों को अपनी धीरता के कारण व्यर्थ न जाने देना।

व्याख्या – कालिदास ने गम्भीरा नदी को उदात्त नायिका की तरह प्रस्तुत किया है। गम्भीरा नदी का चित्त निर्मल है, वह निर्मल चित्त उस गम्भीरा नदी का जल है। उदात्त नायिकाओं के निर्मल चित्त में जिस तरह प्रियतम को स्थान प्राप्त होता है ठीक उसी तरह गम्भीरा रूपी नायिका के चित्त रूपी जल में मेघ के छायाप्रतिबिम्ब रूपी आत्मा को भी स्थान मिलेगा, अतः वह इस जल में प्रवेश कर पायेगा। उस गम्भीरा नदी की मछलियाँ शीघ्रता से उछल-कूद मचायेंगी, मछलियों की ये उछल कूद ही मानो उस गम्भीरा नायिका की तुम्हारे प्रति कुमुद पुष्प के समान श्वेतवर्णीय चितवनें होंगी। यक्ष कहता है कि हे मेघ तुम उन चितवनों का आनन्द अवश्य लेना, अपने काम भावों पर नियन्त्रण न करना, अपनी धीरता एवं गाम्भीर्य के वश में आकर उनसे वञ्चित न हो जाना। अन्यथा तुम्हारे प्रेम में होने वाली उस नदी की चितवनें व्यर्थ हो जायेंगी।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – प्रकृतिसुभगः – प्रकृत्या स्वभावेन सुभगः सुन्दरः (तृ.तत्पु.)। **छायात्मा** – छाया चासौ आत्मा च (कर्मधा.)। कुमुदविशदानि – कुमदानि इव विशदानि धवलानि।

विशेष – प्रकृत स्थल में गम्भीरा के चित्त एवं जल में सादृश्य होने से उपमा अलङ्कार है

तस्याः किञ्चित्करधृतमिव प्राप्तवानीरशाखं

नीत्वा नीलं सलिलवसनं मुक्तरोधो नितम्बम्।

प्रस्थानं ते कथमपि सखे! लम्बमानस्य भावि

ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः।।41।।

अन्वयः – सखे! प्राप्तवानीरशाखम् किञ्चित् करधृतम् इव मुक्तरोधोनितम्बम् तस्याः नीलम् सलिलवसनम् नीत्वा लम्बमानस्य ते प्रस्थानम् कथम् अपि भावि। ज्ञातास्वादः कः विवृतजघनाम् विहातुम् समर्थः।

प्रसङ्ग – इस पद्य में कालिदास गम्भीरा नदी रूपी नायिका के अङ्गों का शृङ्गारिक वर्णन प्रस्तुत करते हैं।

शब्दार्थ – प्राप्तवानीरशाखम् – बेंत की शाखाओं तक पहुँचे हुए, किञ्चित् करधृतम् इव – कुछ हाथों में पकड़े हुए के समान, सलिलवसनम् – जल रूपी वस्त्रों का, ह्रत्वा – हटाकर, लम्बमानस्य – झुके हुए, ते प्रस्थानम् – तुम्हारा जाना, कः – कौन, विहातुम् – छोड़ने में, समर्थः – समर्थ है।

अनुवाद – हे मित्र मेघ! (गम्भीरा नदी के) बेंत की शाखाएँ जिस (जल) तक पहुँची हुई हैं, कुछ हाथों (बेंतों) से पकड़े हुए के समान प्रतीत होता हुआ (जल), तट रुपी नितम्ब का त्याग

किए हुए उस गम्भीरा नदी के वस्त्र रूपी नीले जल को छोड़कर तुम्हारा जाना अत्यन्त ही कठिन होगा क्योंकि रतिक्रीड़ा के आस्वादन का ज्ञाता आखिर कौन होगा जो उघड़ी हुई जंघाओं को छोड़ने में समर्थ होगा।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – प्राप्तवानीरशाखम् – प्राप्ता वानीरशाखा येन तत् (ब.व्री.)। **करधृतम्** – करेण धृतम् (तृ.तत्पु.)। **मुक्तरोधोनितम्बम्** – मुक्तस्त्यक्तो रोधस्तटमेव नितम्बः कटिर्येन तत्तथोक्तम् (ब.व्री.)। **सलिलवसनम् –** सलिलमेव वसनम् (कर्मधात्र)। ज्ञातास्वादः – ज्ञातोऽनुभूतः आस्वादो रसः येन (ब.व्री.)।

त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसितवसुधागन्धसम्पर्करम्यः

स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगं दन्तिभिः पीयमानः।

नीचैर्वास्यत्युपजिगमिषोर्देवपूर्वं गिरिं ते

शीतो वायुः परिणमयिता काननोदुम्बराणाम्।।42।।

अन्वयः – त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसितवसुधागन्धसम्पर्करम्यः दन्तिभिः स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगम् पीयमानः काननोदुम्बराणाम् परिणमयिता शीतः वायुः देवपूर्वम् गिरिम् उपजिगमिषोः ते नीचैः वास्यति।

प्रसङ्ग – इस स्थल में कालिदास मार्ग में प्राप्त होने वाली शीतल वायु का वर्णन करते हैं।

शब्दार्थ – त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसितवसुधागन्धसम्पर्करम्यः – तुम्हारी वर्षा से फूली हुई पृथ्वी की गन्ध के सम्पर्क से रमणीय, दन्तिभिः – हाथियों द्वारा, स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगम् – सूँड के अग्रभाग के छिद्रों में ध्वनि करने से सुन्दर, पीयमानः – पी जाती हुई, परिणमयिता – पकाने वाली, उपजिगमिषोः – समीप जाने के इच्छुक।

अनुवाद – मेघ द्वारा की हुई वृष्टि से फूली हुई पृथ्वी की सुगन्ध के संसर्ग से रमण करने योग्य (वायु), सूँडों के अग्रभाग के छिद्रों में ध्वनि करने से सुन्दर, हाथियों द्वारा पी जाती हुई (वायु), जङ्गली गूलरों को पका देने वाली शीतल वायु, देव शब्द पहले है जिसके ऐसे देवगिरि पर्वत के समीप जाने वाले तेरे नीचे से बहेगी।

व्याख्या – मार्ग में अनेक अनुकूल पड़ावों के प्रसङ्ग में ही यक्ष मेघ को मार्ग में प्राप्त होने वाली वायु का वर्णन करते हुए कहते हैं कि तुम्हारे ही द्वारा जब वृष्टि की जायेगी तो पृथ्वी फूल जायेगी और उसमें से सुगन्ध आयेगी। उस सुगन्ध के सम्पर्क में जब वायु आयेगी तो अत्यन्त रम्य प्रतीत होगी। उस रम्य वायु का हाथी जब अपनी सूँडो द्वारा पान करेंगे तो वो सूँड के अग्रभाग के छिद्रों में ध्वनि करेगी, क्योंकि हाथी अपने सूँड के छिद्रों से ध्वनि भी करते हैं, और यह ध्वनि करने से अत्यन्त सुन्दर लगेगा। वह सुगन्धित वायु जङ्गली गूलरों को पकाने वाली है। यक्ष मेघ से कहता है कि, देव शब्द जिसके नाम में पहले आता है ऐसे देवगिरि नामक पर्वत पर जाने की इच्छा रखने वाले तेरे नीचे से वही सुगन्धित और रम्य वायु बहेगी।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – उच्छ्वसित – उत्+श्वस्+क्त कर्मणि। **पीयमानः** – पा+शानच्। **काननोदुम्बराणाम्** – काननेषु उदुम्बराणाम् जन्तुफलानाम् (पं.तत्पु.)। **देवपूर्वम्** –देवः देवशब्दः पूर्व यस्य सः (ब.व्री.) तम्।

तत्र स्कन्दं नियतवसतिं पुष्पमेघीकृतात्मा

पुष्पासारैः स्नपयतु भवान्व्योमगङ्गाजलाऽऽर्द्रैः।

रक्षाहेतोर्नवशशिभृता वासवीनां चमूना–

मत्यादित्यं हुतवहमुखे संभृतं तद्धि तेजः।।43।।

अन्वयः – पुष्पमेघीकृतात्मा भवान् व्योमगङ्गाजलार्द्रैः पुष्पासारैः तत्र नियतवसतिम् स्कन्दम् स्नपयतु, हि तत् वासवीनाम् चमूनाम् रक्षाहेतोः नवशशिभृता हुतवहमुखे संभृतम् अत्यादित्यम् तेजः।

प्रसङ्ग – प्रकृत स्थल पर यक्ष मेघ को स्वामी कार्तिकेय के अभिवादन का निर्देश देते हुए उनके उत्पत्तिविषय को बतलाता है।

शब्दार्थ – पुष्पमेघीकृतात्मा – स्वयं को पुष्प का मेघ बनाए, व्योमगङ्गाजलार्द्रैः – आकाशगङ्गा के जल से भीगे हुए, पुष्पासारैः – फूलों की बौछारों से, स्कन्दम् – कार्तिकेय को, स्नपयतु – स्नान करायें, वासवीनाम् – इन्द्र की, चमूनाम् – सेना की, हुतवहमुखे – अग्नि के मुख में, संभृतम् – डाल दिया गया।

अनुवाद – (देवगिरि पर्वत पर) आप स्वयं को पुष्प का मेघ बनाए हुए, आकाशगङ्गा के जल से गीले हुए पुष्पों बौछार से वहाँ (देवगिरि पर) स्थायी निवास करने वाले कार्तिकेय को स्नान करायें क्योंकि वो इन्द्र की सेना की रक्षा के लिये, नवीन चन्द्र को धारण करने वाले भगवान शिव के द्वारा अग्नि के मुख में डाला गया एवं सूर्य का भी अतिक्रमण कर सकने वाला तेज है।

व्याख्या – प्रकृत स्थल पर यक्ष मेघ को देवगिरि का विषय बताते हुए कहते हैं कि वहाँ पर शिव के पुत्र स्वामी कार्तिकेय का स्थायी रूप से निवास है। स्वामी कार्तिकेय की अर्चना स्वरूप तुम अपने आप को पुष्प का मेघ बना लेना क्योंकि तुम कामरूप हो, जैसा चाहे वैसा वेश बना सकते हो। आकाशगङ्गा के जल से गीले हो चुके पुष्पों का सम्पात करके स्वामी कार्तिकेय को स्नान कराकर उनका अभिवादन करना क्योंकि वो कार्तिकेय सूर्य का भी अतिक्रमण कर सकने वाले तेज हैं। सदैव नवीन चन्द्रमा को धारण करने वाले भगवान शिव के द्वारा इन्द्र की सेना की रक्षा के लिए अग्निकुण्ड में डाला गया जो तेज था उसी से कार्तिकेय की उत्पत्ति हुई।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – नियतवसतिम् – नियता वसतिर्यस्य तम् (ब.व्री.)। **पुष्पमेघीकृतात्मा** – पुष्पाणां मेघः पुष्पमेघः, पुष्पमेघीकृत आत्मा येन सः (ब.व्री.)।

वासवीनाम् – वासवस्येयं वासवी तासां चमूनाम्। **नवशशिभृता** – नवं शशिनं बिभर्तीति नवशशिभृत् तेन।

विशेष – इस पद्य में रूपक अलङ्कार है।

ज्योतिर्लेखावलयि गलितं यस्य बर्हं भवानी

पुत्रप्रेम्णा कुवलयदलप्रापि कर्णे करोति।

धौताऽपाङ्गं हरशशिरुचा पावकेस्तं मयूरं

पश्चादद्रिग्रहणगुरुभिर्गर्जितैर्नर्तयेथाः।।44।।

अन्वयः – यस्य ज्योतिर्लेखावलयि गलितम् बर्हं भवानी पुत्रप्रेम्णा कुवलयदलप्रापि कर्णे करोति, हरशशिरुचा धौतापाङ्गम् तम् पावकेः मयूरम् अद्रिग्रहणगुरुभिः गर्जितैः नर्तयेथाः।

शब्दार्थ – ज्योतिर्लेखावलयि – तेज की रेखाओं के मण्डल वाले, गलितम् – गिरे हुए, बर्हम् – मोर पंख, भवानी पुत्रप्रेम्णा – पार्वती पुत्र के स्नेह वशात्, कुवलयदलप्रापि – कमल की पंखुड़ी को प्राप्त कराती, हरशशिरुचा – शिव के चन्द्रमा की कान्ति से, धौतापाङ्गम् – धवल नेत्रप्रान्त वाले, गर्जितैः – गर्जनों से, नर्तयेथाः – नचाना।

अनुवाद – जिस मोर के तेज की रेखाओं के मण्डलों से युक्त, गिरे हुए मोर पंख को पुत्र प्रेम के कारणवश कमल की पंखुड़ी को प्राप्त कराती हुई पार्वती अपने कानों में धारण करती हैं। शिव के सिर में लगे चन्द्रमा की कान्ति से युक्त होने से धवल नेत्रप्रान्त वाले कार्तिकेय के उस मोर को पर्वत तक पहुँच जाने के उपरान्त अपने भीषण गर्जन से नृत्य कराना।

व्याख्या – स्वामी कार्तिकेय के मोर के वर्णन प्रसङ्ग में कालिदास कहते हैं कि उनके मोर के पंख अनेक कान्तिमत् तेज की रेखाओं से युक्त हैं। वे पंख गिरते भी हैं, उन गिरे हुए मोर पंखों को माता पार्वती पुत्र प्रेम में वशीभूत होकर उठा लेती हैं, चूँकि वो पंख उनके पुत्र कार्तिकेय के मोर का है अतः वह उसे अपने कानों में लगा लेती है, माता पार्वती के कानों में पहले से लगे नीलकमल को वह मोरपंख छू लेता है। कार्तिकेय के मयूर के नेत्रप्रान्त भगवान शिव के सिर पर लगे चन्द्रमा की कान्ति के सम्पर्क में आकर उज्जवल हो जाते हैं। यक्ष कहता है कि हे मेघ जब तुम देवगिरी पर्वत तक पँहुच जाओ तो स्वामी कार्तिकेय के उस मोर के लिये अवश्य ही तेज गर्जना करना, जिससे वह मोर नृत्य करे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – **भवानी** – भवस्य शिवस्य पत्नी, भव+ङीप्। **पुत्रप्रेम्णा** – पुत्रस्य प्रेम्णा (ष.तत्पु.)। **हरशशिरुचा** – हरस्य शिरसि स्थितो यः चन्द्रस्तस्य रुचा (मध्यमपदलोपी कर्म.)। **धौतापाङ्गम्** – धौतौ अतिधवलितौ अपाङ्गौ नेत्रान्तौ। **आद्रिग्रहणगुरुभिः** – अद्रेः (कर्तुः) देवगिरेः ग्रहणेन गुहासंक्रमणेन।

आराध्यैनं शरवणभवं देवमुल्लङ्घिताध्वा

सिद्धद्वन्द्वैर्जलकणभयाद्वीणिभिर्मुक्तमार्गः।

व्यालम्बेथाः सुरभितनयालम्भजां मानयिष्यन्

स्रोतोमूर्त्या भुवि परिणतां रन्तिदेवस्य कीर्तिम्।।45।।

अन्वयः – एनम् शरवणभवम् देवम् आराध्य वीणिभिः सिद्धद्वन्द्वैः जलकणभयात् मुक्तमार्गः उल्लङ्घिताध्वा सुरभितनयालम्भजां भुवि स्रोतोमूर्त्या परिणतां रन्तिदेवस्य कीर्तिम् मानयिष्यन् व्यालम्बेथाः।

शब्दार्थ – शरवणभवम् देवम् – सरकण्डे से उत्पन्न देव (कार्तिकेय) को, आराध्य – पूजकर, वीणिभिः – वीणाधारी, सिद्धद्वन्द्वैः – सिद्धदम्पतियों द्वारा, जलकणभयात् – जल की बूंदों के डर से, सुरभितनयालम्भजाम् – गौपुत्रियों की बलि से उत्पन्न, भुवि – पृथ्वी पर, परिणताम् – परिणत, व्यालम्बेथाः – झुक जाना।

अनुवाद – इन सरकण्डे से उत्पन्न देवता (स्वामी कार्तिकेय) की आराधना करके, विणाधारी सिद्धदेवतादम्पतियों द्वारा, तुम्हारे जल की बूंदों से (वीणा भीग जाने के) भयवशात् जिसका (मार्ग छोड़ दिया गया है), जो कुछ मार्ग को पार कर चुका है ऐसे (मेघ) तुम पृथ्वी पर गायों की पुत्रियों अर्थात् गायों की बलियों से उत्पन्न, नदी के रूप में परिणत हो चुकी राजा रन्तिदेव की कीर्ति (चर्मण्वती नदी) का सम्मान करते हुए झुक जाना।

व्याख्या – यक्ष का मेघ से कहना है कि देवगिरी पर्वत पर कार्तिकेय की पूजा करने के उपरान्त, सिद्ध नामक देवता दम्पति तुम्हारे रास्ते से हट जायेंगे क्योंकि उनके हाथों में वीणा होती है, अगर वो वीणा तुम्हारे जल से भीग जायेगी और उसके तार खराब हो जायेंगे तो वे स्वामी कार्तिकेय की आराधना में क्या बजायेंगे? अतः चर्मण्वती नदी के आने पर उसका सम्मान करते हुए अवश्य झुक जाना क्योंकि वो चर्मण्वती नदी राजा रन्तिदेव का यश है कीर्ति है, जो की उनके द्वारा गवालम्भ यज्ञ से (जिसमें गायों की बली दी जाती थी) उत्पन्न हुई है और पृथ्वी पर नदीरूप में परिणत हो गई है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – **शरवणभवम्** – शरा बाणतृणानि तेषां वनं शरवणम्, तत्र भवः जन्म यस्य तम् (ब.व्री.)। **आराध्य** – आ+राध्+य (ल्यप्)। **वीणिभिः** – वीणावद्भिः य वीणा एषां विद्यते इति वीणिनः तैः। **जलकणभयात्** – जलस्य कणाः जलकणाः तेभ्यो भयात्। **त्यक्तमार्गः** – त्यक्तो मार्गो यस्य सः (ब.व्री.)। **उल्लङ्घिताध्वा** – उल्लङ्घितः अध्वा येन सः (ब.व्री.)। **सुरभितनयालम्भजाम्** – सुरभेः तनयानां गवामालम्भनेन सञ्ज्ञपनेन जायत इति तथोक्ताम् (कीर्तिम्)।

त्वय्यादातुं जलमवनते शार्ङ्गिणो वर्णचौरे

तस्याः सिन्धोः पृथुमपि तनुं दूरभावात्प्रवाहम्।

प्रेक्षिष्यन्ते गगनगतयो नूनमावर्ज्य दृष्टी–

रेकं मुक्तागुणमिव भुवः स्थूलमध्येन्द्रनीलम्।।46।।

अन्वयः – गगनगतयः शार्ङ्गिणः वर्णचौरे त्वयि जलम् आदातुम् अवनते पृथुम् अपि दूरभावात् तनुम् तस्याः सिन्धोः प्रवाहम् एकम स्थूलमध्येन्द्रनीलम् भुवः मुक्तागुणम् इव नूनम् दृष्टीः आवर्ज्य प्रेक्षिष्यन्ते।

प्रसङ्ग – चर्मण्वती नदी के जलपान के लिये झुकने पर शोभायमान मेघ को आकाशचारी किस तरह देखेंगे यह बतलाते हैं।

शब्दार्थ – गगनगतयः – आकाश में विचरणशील, शार्ङ्गिणः वर्णचौरे – कृष्ण के रंग को चुराने वाले, अवनते – झुकने पर, पृथुम् अपि – बड़े भारी भी, दूरभावात् – दूर होने के कारण, एकम् स्थूलमध्येन्द्रनीलम् – जिसके मध्य में बड़ा इन्द्रनीलमणि लगा हो ऐसे एक, दृष्टीः आवर्ज्य – टकटकी लगाकर, प्रेक्षिष्यन्ते – देखेंगे।

अनुवाद – कृष्ण के रङ्ग को चुराने वाले (काले-काले) तुम्हारे जल को प्राप्त करने के लिए अवनत होने पर आकाश में विचरणशील (सिद्धगन्धर्वादि देवता) उस नदी (चर्मणवती) की धारा को जो विशाल होने पर भी दूर होने के कारण पतली (प्रतीत होने वाली) को नीचे की हुई दृष्टि से इस प्रकार देखेंगे मानो की यह बड़ी इन्द्रनीलमणि से मध्य में युक्त मोतियों का हार है।

व्याख्या – चर्मण्वती का वर्णन करते हुए कालिदास कहते हैं कि भगवान श्रीकृष्ण का काला रंग चुराने के कारण तुम्हारा जल भी काला हो गया है, इस जल को प्राप्त करने के लिए आकाश में स्वच्छंदतया विहार करने वाले सिद्धगन्धर्वादि देवता जब नीचे झुकेंगे तब चर्मणवती के विस्तृत प्रवाह को दूर से देखेंगे, इस कारण यह विशाल प्रवाह भी छोटा प्रतीत होगा। जब मेघ जल प्राप्त करने के लिए इसके एक कोने की ओर झुकेगा तब आकाशचारिओं को यह नदी मोतियों की माला के समान प्रतीत होगी। उसपर स्थित काले रङ्ग का मेघ उस माला के मध्य नीलमणि सा प्रतीत होगा।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – वर्णचौरे – वर्णं चोरयतीति वर्णचौरः तस्मिन्। आदातुम् – आ+दा+तुमुन्। अवनते = अव+नम्+क्त, कर्तरि। गगनगतयः – गगने गतिर्येषां ते (ब.व्री.)। स्थूलमध्येन्द्रनीलम् – मध्यः इन्द्रनीलः (कर्मधा.), स्थूलः मध्येन्द्रनीलः यस्य (ब.व्री.) तम्। मुक्तागुणम् – मुक्तानां गुणम् (ष.तत्पु.)।

तामुत्तीर्य व्रज परिचितभ्रूलताविभ्रमाणां

पक्ष्मोत्क्षेपादुपरिविलसत्कृष्णसारप्रभाणाम्।

कुन्दक्षेपानुगमधुकरश्रीमुषामात्मबिम्बं

पात्रीकुर्वन्दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम्।।47।।

अन्वयः – ताम् उत्तीर्य आत्मबिम्बम् परिचितभ्रूलताविभ्रमाणाम् पक्ष्मोत्क्षेपादुपरिविलसत्कृष्णसारप्रभाणाम् कुन्दक्षेपानुगमधुकर श्रीमुषाम् दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम् पात्रीकुर्वन् व्रज।

प्रसङ्ग – चर्मण्वती को पार करके दशपुर नगर की स्त्रियों के नेत्रों का विषय बनकर आगे बढने के लिये यक्ष मेघ से कहता है।

शब्दार्थ – उत्तीर्य – पार करके, आत्मबिम्बम् – अपने स्वरूप को, पक्ष्मोत्क्षेपात् – पलकों को उपर उठाने से, उपरिविलसत्कृष्णसारप्रभाणाम् – जहाँ काले, लाल एवं सफेद कान्ति उपर शोभा देगी, दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम् – दशपुर की स्त्रियों के आँखों के कौतूहलों का, पात्रीकुर्वन् व्रज – पात्र बनता हुआ जाना।

अनुवाद – उस (चर्मण्वती) को पार करके आत्मस्वरूप को दशपुर की नववधूओं के नेत्रों के कुतूहल का विषय बनाते हुए जाना, जो लता जैसी भौंहों के विलास से परिचित हैं, जिनकी पलकों के उपर उठने के कारण काली सफेद तथा लाल वर्णों की आभा विलास करती रहती है और जो चमेली पुष्पों के इतस्ततः हिलने के पीछे (खुद भी) हिलने डुलने वाले भँवरों की कान्ति को चुराती हैं।

व्याख्या – कालिदास मेघ से कहते हैं कि जब तुम चर्मण्वती नदी को पार करोगे तो दशपुर पँहुचोगे। तुम अपने स्वरूप को दशपुर की नवयुवतियों की आँखो के लिए कौतूहल का विषय बनाना अर्थात् तुम्हारे जाने पर वहाँ की नवयुवतियाँ अपनी भौंहों को उठाकर तुम्हें कौतूहल से देखेंगी। लता के समान लम्बी लम्बी भौंहों के विलास में वे नवयुवतियाँ दक्ष हैं। जब वे अपनी पलके उठाएंगी तो काली, सफेद और लाल रंगो की कान्ति उपर विलास करेगी, इसलिए तीनों रंग एक साथ तुम्हें देखते हुए विलास करेंगे। इसी कारण ये स्त्रियाँ चमेली के फूल के आसपास हिलने डुलने वाले भँवरों की शोभा को चुरातीं हैं। इस प्रकार भँवरे से युक्त चमेली पुष्प की तुलना दशपुर की स्त्रियों के नेत्रों से की गई है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – **उत्तीर्य** – उत्+तॄ+य (ल्यप्)। **परिचितभ्रूलताविभ्रमाणाम्** – परिचिताः भ्रूवो लताः इव भ्रूलताः तासाम् (उपमितसमासः) विभ्रमा विलासाः, येषु तेषाम् (ब. व्री.)। **उपरिविलसत्कृष्ण** – उपरि विलसन्त्यः कृष्णाश्च ताः शाराश्च कृष्णशारा नीलशबलाः प्रभाः येषां तेषाम् (ब.व्री.)। **मुषाम्** – मुष्+क्विप्।

ब्रह्मावर्तं जनपदमथच्छायया गाहमानः

क्षेत्रं क्षत्रप्रधनपिशुनं कौरवं तद्भजेथाः।

राजन्यानां शितशरशतैर्यत्र गाण्डीवधन्वा

धारापातैस्त्वमिव कमलान्यभ्यवर्षन्मुखानि।।48।।

अन्वयः – अथ ब्रह्मावर्तं जनपदम् छायया गाहमानः क्षत्रप्रधनपिशुनम् तत् कौरवम् क्षेत्रम् भजेथाः यत्र गाण्डीवधन्वा शितशरशतैः राजन्यानाम् मुखानि त्वम् धारापातैः कमलानि इव अभ्यवर्षत्।

प्रसङ्ग – यक्ष मेघ को उसकी छाया द्वारा ब्रह्मावर्त जनपद में प्रवेश के उपरान्त कुरुक्षेत्र जाने के लिए कहता है।

शब्दार्थ – ब्रह्मावर्तं जनपदम् – ब्रह्मावर्त नामक जनपद में, छायया – अपनी छाया द्वारा, गाहमानः – प्रवेश करते हुए, क्षत्रप्रधनपिशुनम् – क्षत्रियों के युद्ध के सूचक, भजेथाः – जाना, शितशरशतैः – सैकड़ों तीखे बाणों को, राजन्यानाम् – क्षत्रियों के, मुखानि – मुखों पर, अभ्यवर्षत् – बरसाया था।

अनुवाद – दशपुर के उपरान्त ब्रह्मावर्त नाम के जनपद में अपनी छाया (प्रतिबिम्ब) के द्वारा प्रवेश करते हुए, क्षत्रियों के युद्ध के सूचक उस कुरुक्षेत्र को पहुँचना। जहाँ गाण्डीव धनुष को धारण करने वाले अर्जुन ने सैकड़ों तीखे बाणों द्वारा क्षत्रियों के मुख पर उसी तरह वर्षा की थी जिस तरह तुम अपनी मूसलाधार वर्षा को कमलपुष्पों पर करते हो।

व्याख्या – प्रस्तुत पद्य में कालिदास मेघ को ब्रह्मावर्त नामक तीर्थ में छाया द्वारा प्रवेश करने का वर्णन करते हैं क्योंकि शरीर द्वारा तीर्थस्थल को लाँघना अनुचित माना जाता है अतः यक्ष मेघ को उसकी छाया द्वारा ब्रह्मावर्त में प्रवेश का निर्देश देता है। तत्पश्चात् कुरुक्षेत्र को जाना, ऐसा कुरुक्षेत्र जो क्षत्रियों के युद्ध का सूचक है। यक्ष मेघ से कहता है कि क्षत्रियों के इस परस्पर युद्ध के दौरान गाण्डीव धनुषधारी कुन्तीपुत्र अर्जुन ने अपने असंख्य तीक्ष्ण तीरों को क्षत्रियों पर धारासम्पात की तरह बरसाया था। अर्जुन के द्वारा शत्रुओं पर की गई तीरों की यह वर्षा ठीक वैसी ही थी जैसे तुम अपनी मूसलाधार वर्षा कमल पुष्पों पर करते हो।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – **क्षत्रप्रधनपिशुनम्** – क्षत्राणां प्रधनं युद्धम् तस्य पिशुनम् सूचकम्। **कौरवम्** – कुरूणामिदं कौरवमय कुरु+अ (तद्धितप्रत्यय)। **गाण्डीवधन्वा** – गाण्डीवं धनुर्यस्य स गाण्डीवधन्वा (ब.व्री.)। **राजन्यानाम्** – राज्ञाम् अपत्यानि पुमांसः राजन्याः तेषाम् राजन्+यत् (अपत्यार्थक)।

हित्वा हालामभिमतरसां रेवतीलोचनाङ्कां

बन्धुप्रीत्या समरविमुखो लाङ्गली याः सिषेवे।

कृत्वा तासामधिगममपां सौम्य! सारस्वतीना–

मन्तः शुद्धस्त्वमपि भविता वर्णमात्रेण कृष्णः।।49।।

अन्वयः – बन्धुप्रीत्या समरविमुखः लाङ्गली अभिमतरसाम् रेवती लोचनाङ्काम् हालाम् हित्वा याः सिषेवे। सौम्य! त्वम् अपि तासाम् सारस्वतीनाम् अपाम् अधिगमं कृत्वा अन्तःशुद्धः वर्णमात्रेण कृष्णः भविता।

शब्दार्थ – समरविमुखः – युद्ध से दूर हुए, लाङ्गली – बलराम, अभिमतरसाम् – पसंदीदा स्वाद वाली, रेवती लोचनाङ्काम् – (पत्नी) रेवती की आँखों के प्रतिबिम्ब वाली, हालाम् –

मदिरा को, हित्वा – त्यागकर, सिषेवे – सेवन किया, अधिगमं कृत्वा – सेवन करके, अन्तःशुद्धः – भीतर से शुद्ध (तुम), वर्णमात्रेण – केवल वर्ण से ही, कृष्णः भविता – काले रहोगे।

अनुवाद – बन्धुओं से प्रेम के कारण (महाभारत के) युद्ध से विमुख हुए बलराम ने अपनी अभिप्सित रस वाली, उनकी पत्नी रेवती की आँखो के प्रतिबिम्ब वाली मदिरा का त्याग करके जिसका (सरस्वती का) सेवन किया था, हे सौम्य! तुम भी उस सरस्वती नदी के जल का सेवन करके भीतर से शुद्ध हो जाओगे, केवल वर्णमात्र से ही काले रहोगे।

व्याख्या – महाभारत के कौरवों एवं पाण्डवों के युद्ध के समय श्रीकृष्ण ने तो पाण्डवों का साथ दिया था लेकिन उनके अग्रज बलराम ने दोनों ही पक्षों से मैत्रीवशात् किसी का साथ नहीं दिया और तीर्थ को चले गये। बलराम की पत्नी रेवती उनके साथ मदिरापानोत्सव में भाग लिया करती थी। मदिरा में रेवती के नेत्रों का प्रतिबिम्ब पड़ने से वो मदिरा बलराम को अत्यधिक प्रिय हो जाती थी अतः उसे रेवतीलोचनाङ्क कहा गया। ऐसी स्वयं की सर्वाधिक प्रिय मदिरा का त्यागकर बलराम ने सरस्वती नदी का सेवन किया था। अतः यक्ष मेघ से कहता है कि तुम भी उसी सरस्वती नदी के जल का सेवन करना, जिससे अन्दर से शुद्ध अर्थात् अन्तःशुद्ध हो जाओगे। सिर्फ अपने रङ्ग से ही काले रहोगे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – **समरविमुखः** – समरात् विमुखः (पं.तत्पु.)। **लाङ्गली** – लाङ्गलम् (हलम्) अस्यास्तीति, लाङ्गल+इन् (इनि)। **अभिमतरसाम्** – अभिमतो रसो यस्यास्ताम् (ब.व्री.)। **रेवतीलोचनाङ्काम्** – रेवत्याः स्वप्रियायाः लोचने एवाङ्कः (प्रतिबिम्बरूपम्) चिह्नं यस्यास्ताम् (ब.व्री.)। **अन्तःशुद्धः** – अन्तरात्मनि शुद्धः निर्मलः। **वर्णमात्रेण** – वर्ण एव वर्णमात्रम् तेन।

तस्माद् गच्छेरनुकनखलं शैलराजावतीर्णां

जह्नो कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपानपङ्क्तिम्।

गौरीवक्त्रभृकुटिरचनां या विहस्येव फेनैः

शम्भोः केशग्रहणमकरोदिन्दुलग्नोर्मिहस्ता।।50।।

अन्वयः – तस्मात् अनुकनखलम् शैलराजावतीर्णाम् सगरतनयस्वर्गसोपानपंक्तिम् जह्नोः कन्याम् गच्छेः गौरीवक्त्रभ्रकुटिरचनाम् फेनैः विहस्य इव इन्दुलग्नोर्मिहस्ता या शम्भोः केशग्रहणम् अकरोत्।

प्रसङ्ग – यक्ष मेघ को कनखल के समीप हिमालय से अवतीर्ण गङ्गा को जाने का निर्देश देता है।

शब्दार्थ – अनुकनखलम् – कनखल के पास, शैलराजावतीर्णाम् – हिमालय से निकली हुई, सगरतनयस्वर्गसोपानपंक्तिम् – सगर (राजा) के पुत्रों के स्वर्गमार्ग की सीढी। गौरीवक्त्रभ्रकुटिरचनाम् – पार्वती के मुख के भ्रूभङ्गों का, फेनैः – झाग से, विहस्य इव – उपहास के समान, शम्भोः – शिव के, केशग्रहणम् अकरोत् – बालों को पकड़ लिया था।

अनुवाद – वहाँ कुरुक्षेत्र से कनखल की समीप हिमालय से अवतीर्ण हुई, राजा सगर के पुत्रों के लिए स्वर्ग की सीढीरूपी, राजा जह्नु की पुत्री (गङ्गा, जाह्नवी) के पास जाना जो पार्वती के मुख के भ्रूभङ्गों का मानो अपने झाग के द्वारा उपहास करके, अपने लहररूपी हाथों से जिसने शिव के केशों को पकड़ लिया था।

व्याख्या – युद्धभूमि कुरुक्षेत्र से आगे कनखल जो की एक तीर्थस्थल है उस कनखल के समीप हिमालय से निकली हुई नदी गङ्गा के पास जाने के लिए यक्ष मेघ को निर्देश देता है। गङ्गा राजा जह्नु की पुत्री है अतः उसका अपर नाम जाह्नवी भी है। राजा सगर के पुत्रों के द्वारा किए गये अपमान से ऋषि कपिल ने क्रोधित होकर शाप से उन्हें भस्म कर डाला था, गङ्गा यदि अपने जल से उस स्थान को सींचती तभी उन्हें स्वर्ग प्राप्ति हो सकती थी अतः कहा गया कि गङ्गा राजा सगर के पुत्रों के स्वर्गमार्ग की सीढीरूप है। वो गङ्गा भगवान शिव के सिर में स्थित होने से माता पार्वती के कोपभाजन का विषय भी बनी हुई है, अतः पार्वती के क्रोधपूर्ण भ्रूभङ्गों का मानो गङ्गा अपने सफेद झाग से उपहास करती सी प्रतीत होती है। शिव के सिर से निकलने वाली गङ्गा की लहरें उसके हाथ हों, जो शिव के सिर पर स्थित चन्द्रमा का स्पर्श करते हुए उनके बालों को पकड़ते हैं। मानो शिव के उपर अपना पूरा आधिपत्य जमाकर पार्वती को दिखाना चाह रही हो।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – **अनुकनखलम्** – कनखलस्य समीपेऽनुकनखलम् (अव्ययीभाव) **शैलराजावतीर्णाम्** – शैलानां राजा शैलराजः तस्मात् अवतीर्णाम्। **सगरतनयस्वर्गसोपानपंक्तिम्** – सगरस्य तनयानां स्वर्गस्यसोपानानां पङ्क्तिम्। **गच्छेः** – गम् विधिलिङ्, म.पु.एक.। **इन्दुलग्नोर्मिहस्ता** – इन्दौ लग्ना ऊर्मयः एव हस्ताः यस्याः सा (ब.व्री.)।

विशेष– इस पद्य में विहस्य इव के द्वारा उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

तस्याः पातुं सुरगज इव व्योम्नि पश्चार्धलम्बी

त्वं चेदच्छस्फटिकविशदं तर्कयस्तिर्यगम्भः।

संसर्पन्त्या सपदि भवतः स्रोतसि च्छाययाऽसौ

स्यादस्थानोपगतयमुनासङ्गमेवाभिरामा।।51।।

अन्वयः – सुरगजः इव व्योम्नि पश्चार्धलम्बी त्वम् चेत् तस्याः अच्छस्फटिकविशदम् अम्भः तिर्यक् पातुम् तर्कयेः, असौ सपदि स्रोतसि संसर्पन्त्या भवतः छायया अस्थानोपगतयमुनासङ्गमा इव अभिरामा स्यात्।

शब्दार्थ – सुरगजः इव – दिग्गज के समान, व्योम्नि – आकाश में, अच्छस्फटिकविशदम् – स्वच्छ स्फटिकमणि के समान निर्मल, अम्भः – जल को, तिर्यक् पातुम् – तिरछे होकर पीने के लिये, सपदि – सहसा ही, स्रोतसि – प्रवाह में, अभिरामा स्यात् – सुन्दर प्रतीत हो।

अनुवाद – दिग्गज (ऐरावत) के समान आकाशमार्ग में पीछे के अर्धभाग से आकाश में लटके हुए तुम यदि उसके (गङ्गा के) स्फटिक मणि के समान निर्मल एवं श्वेत जल को तिरछे होकर पीने के लिये सोचोगे तो जलप्रवाह में तुम्हारी सरकती हुई (काली) छाया के द्वारा, (प्रयाग) स्थान के वहाँ न होने पर भी वह यमुना के साथ सङ्गम की तरह सुन्दर प्रतीत होगा।

व्याख्या – कालिदास मेघ और गङ्गा के मिलन को गङ्गायमुना के सङ्गम के रूप में दर्शाते हुए कहते हैं कि मेघ एक दिग्गज (इन्द्र के हाथी ऐरावत) के समान आकाश मार्ग में अपने पिछले भाग के द्वारा लटका होगा एवं पृथ्वी की ओर अपने सूँड वाले अग्रभाग के द्वारा, इस स्थिति को लिए हुए जब मेघ स्फटिक मणि के समान स्वच्छ निर्मल जल वाली गङ्गा नदी का जल पीने के लिये उद्यत होगा, तो उस मेघ का निरन्तर सक्रिय सरकता हुआ प्रतिबिम्ब गङ्गा के जलप्रवाह में पड़ेगा। मेघ के प्रतिबिम्ब के काले होने के कारण सहसा ही गङ्गा में यमुना का जल मिला हुआ सा प्रतीत होगा क्योंकि यमुना का वर्ण भी काला ही है। गङ्गा एवं यमुना दोनों के एक साथ दिखाई दे जाने से सहसा ही प्रयाग (गङ्गा एवं यमुना का सङ्गम) स्थान वर्तमान न होते हुए भी मेघ की काली छाया रूपी यमुना के सङ्गम से यह गङ्गा एवं यमुना के सङ्गम की तरह सुन्दर प्रतीत होगा।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – **पश्चार्धलम्बी** – पश्चादर्धः पश्चार्धः पृषोदरादित्वात्साधुः अथवा अपरम् अर्धम् (कर्मधा.) तेन लम्बते इति पश्चार्धलम्बी। **अच्छस्फटिकविशदम्** – अच्छश्चासौ स्फटिकः तद् विशदम्।

विशेष– मेघ का सुरगज के साथ सादृश्य बताने से प्रकृत स्थल पर श्रौती उपमा है, अच्छस्फटिकविशद् में उपमावाची पद का लोप होने से लुप्तोपमा है।

आसीनानां सुरभितशिलं नाभिगन्धैर्मृगाणां

तस्या एव प्रभवमचलं प्राप्य गौरं तुषारैः।

वक्ष्यस्यध्वश्रमविनयने तस्य शृङ्गे निषण्णः

शोभां शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपङ्कोपमेयाम्।।52।।

अन्वयः – आसीनानाम् मृगाणाम् नाभिगन्धैः सुरभितशिलम् तस्याः एव प्रभवम् तुषारैः गौरम् अचलम् प्राप्य अध्वश्रमविनयने तस्य शृङ्गे निषण्णः शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपङ्कोपमेयाम् शोभाम् वक्ष्यसि।

शब्दार्थ – मृगाणाम् नाभिगन्धैः – (कस्तूरी) मृगों की नाभि की गन्ध से, सुरभितशिलम् – सुगन्धित शिलाओं वाले, प्रभवम् – उत्तपत्तिस्थल, तुषारैः – बर्फ से, गौरम् – श्वेतवर्णीय, अध्वश्रमविनयने – मार्ग की थकान को दूर करने वाले, शृङ्गे – शिखर पर, निषण्णः – बैठे हुए, शोभाम् – शोभा को, वक्ष्यसि – धारण करेगा।

अनुवाद – (शिलाओं पर) बैठे हुए कस्तूरी मृगों की गन्ध से सुगन्धित शिलाओं वाले, बर्फ के कारण श्वेतवर्णीय उसी गङ्गा के उत्पत्तिस्थल हिमालय पर्वत को पहुँचकर, उसके शिखर पर बैठे हुए शिव के श्वेत नन्दी (बैल) के द्वारा उखाड़े हुए कीचड़ (जो सींग में लगा हुआ है) की समानता वाली शोभा को (तुम मेघ) धारण करोगे।

व्याख्या – कालिदास हिमालय पर्वत का रमणीय वर्णन करते हुए प्रस्तुत पद्य द्वारा कहते हैं कि वहाँ की शिलाओं पर बैठे हैं कस्तूरी मृग बैठे हैं। अतः उन कस्तूरी मृगों की गन्ध से हिमालय पर्वत की शिलाएं सुगन्धित हो चुकी हैं ऐसे सुगन्धित शिलाओं वाले एवं सफेद बर्फ के कारण वह हिमालय पर्वत पूर्णतः श्वेत वर्ण का हो चुका है। ऐसे पूर्ववर्णित हिमालय को पहुँचकर मेघ कैसा प्रतीत होगा यह बतलाने के लिए कहते हैं कि भगवान शिव के सफेद नन्दी बैल के द्वारा सींगों के प्रहार से उखाड़ा गया काले रंग का कीचड़ जिस तरह उस सफेद नंदी के सिर पर शोभायमान होता है, ठीक उसी तरह काले रंग वाला मेघ भी सफेद पर्वत की चोटी पर सुशोभित **होगा।**

व्याकरणात्मक टिप्पणी – नाभिगन्धः – नाभीनां गन्धाः तैः (पं.तत्प.)। **सुरभितशिलम्** – सुरभिताः शिलाः यस्य तम् (ब.व्री.)। **अध्वश्रमः** – अध्वनि जातः श्रमः इत्यध्वश्रमः, **त्रिनयनः** – त्रीणि नयनानि यस्य स त्रिनयनः (ब.व्री.)।

विशेष – पर्वत का शिव के सफेद बैल से एवं मेघ का काले कीचड़ से सादृश्य प्रस्तुत होने के कारण यहाँ उपमा अलङ्कार है।

तं चेद्वायौ सरति सरलस्कन्धसङ्घट्टजन्मा

बाधेतोल्काक्षपितचमरीबालभारो दवाग्निः।

अर्हस्येनं शमयितुमलं वारिधारासहस्त्रै–

रापन्नार्तिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम्।।53।।

अन्वयः – वायौ सरति सरलस्कन्धसङ्घट्टजन्मा उल्काक्षपितचमरीबालभारः दवाग्निः तम् बाधेत चेत् एनम् वारिधारासहस्त्रैः अलम् शमयितुम् अर्हसि, हि उत्तमानाम् सम्पदः आपन्नार्तिप्रशमनफलाः।

शब्दार्थ – वायौ सरति – वायु के चलने पर, सरलस्कन्धसङ्घट्टजन्मा – चीड़ वृक्ष के तनों के परस्पर रगड़ने से जन्य, दवाग्निः – वन की अग्नि, वारिधारासहस्त्रैः – जल की हजारों धाराओं (मूसलाधार वर्षा) द्वारा, शमयितुम् अर्हसि – शान्त करने के योग्य हो, उत्तमानाम् – उत्तम कोटि वालों की, सम्पदः – सम्पत्ति।

अनुवाद – वायु के चलने पर चीड़ के वृक्ष के तनों की परस्पर रगड़ से उत्पन्न, चिंगारियों (लपटों) से चमरी संज्ञक गायों के बालों को जलाकर नष्ट कर देने वाली, वन की अग्नि यदि उस हिमालय को कष्ट दे तो तुम अपनी जल के हजारों धारासम्पातों से पर्याप्त रूप से

उसको शान्त करने के योग्य हो, क्योंकि उत्तमश्रेणी के लोगों की सम्पत्ति का कार्य दुःखी जनों के दुःखों का हरण करना ही होता है।

व्याख्या – हिमालय पर्वत चीड़ के वृक्षों से युक्त है, तेज वायुधारा चलने पर उन वृक्षों के तनों में आपसी घर्षण होता है जिससे आग उत्पन्न होती है जिसे दवाग्नि या वन की अग्नि कहा जाता है वह अग्नि चमरी संज्ञक गायों के बालों को जलाने वाली होती है। यक्ष मेघ से कहता है कि अगर ऐसी अग्नि हिमालय को कष्ट दे तो अवश्य ही तुम अपनी मूसलाधार वर्षा और भीषण धारासम्पात से उस अग्नि को शान्त कर देना, तुम उसके योग्य हो क्योंकि मेघ उत्तम श्रेणी का है और उत्तमश्रेणी के लोगों का कर्तव्य यही है कि वे अपनी सम्पत्ति से विपत्तिग्रस्त लोगों का उद्धार करे, उनके दुःखों का हरण करे। अतः तुम भी अपनी वृष्टि के द्वारा हिमालय के कष्ट का हरण करोगे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – सरलस्कन्धसंघट्टजन्मा – सरलानां स्कन्धास्तेषां संघट्टनात् जन्म यस्य सः (ब.व्री.)। **उल्कापितचमरीबालभारः** – उल्काभिः क्षपिताश्चमरीणां बालभारा (बालानां भाराः) येन (ब.व्री.)। **दवाग्निः** – दवस्य अग्निः (ष.तत्पु.)। अथवा दव इत्यग्निः दवाग्निः। **वारिधारासहस्त्रैः** – वारीणां धाराः वारिधाराः, तासां सहस्त्रैः (ष.तत्पु.)। आपन्नार्तिप्रशमनम् – आपन्नानामार्तिः आपन्नार्तिः तस्याः प्रशमनं फलं यासां ताः (ब.व्री.)।

विशेष – तृतीय पाद के अर्थ का चतुर्थ पाद के अर्थ से समर्थन होने के कारण यहाँ अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

ये संरम्भोत्पतनरभसाः स्वाङ्गभङ्गाय तस्मिन्
मुक्ताध्वानं सपदि शरभा लङ्घयेयुर्भवन्तम्।
तान्कुर्वीथास्तुमुलकरकावृष्टिपातावकीर्णान्
के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भयत्नः।।54।।

अन्वयः – तस्मिन् संरम्भोत्पतनरभसाः. ये शरभाः मुक्ताध्वानम् भवन्तम् सपदि स्वाङ्गभङ्गाय लङ्घयेयुः तान् तुमुलकरकावृष्टिपातावकीर्णान्कुर्वीथाः। निष्फलारम्भयत्नाः के वा परिभवपदं न स्युः।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में यक्ष मेघ को हिमालय में शरभ पशुओं को अपनी ओलों की वृष्टि से परास्त करने के लिए कहता है।

शब्दार्थ – संरम्भोत्पतनरभसाः – क्रोधवश उछलकूद करने में तेज, ये शरभाः – जो शरभ (एक घातक मृगविशेष), मुक्ताध्वानम् – मार्ग को छोड़े हुए, सपदि – सहसा ही, स्वाङ्गभङ्गाय – अपने अङ्गों को तोड़ने के लिये, लङ्घयेयुः – लाङ्घने का प्रयास करें, तुमुलकरकावृष्टिपातावकीर्णान् – भीषण ओलों की वर्षा कर तितर बितर, परिभवपदं – तिरस्कृत, न स्युः – नहीं होता।

अनुवाद – उस हिमालय पर्वत में क्रोधवश उछलकूद करने में तेज पशुविशेष शरभ, उनके मार्ग को छोड़े हुए (मेघ द्वारा), अचानक ही, स्वयं के अङ्गों को तोड़ने के लिए तुम्हें लाङ्घने का प्रयास करें (तो) उन पर भयङ्कर ओलों की वर्षा करके उन्हें तितर-बितर कर देना चाहिए, (क्योंकि) जिस कार्य का कोई फल न हो उसे करने में प्रयत्नशील कौन तिरस्कृत नहीं होता।

व्याख्या – हिमालय वर्णन प्रसङ्ग में मेघ के सम्मुख आने वाली कठिनाई के विषय में कहा गया है कि हिमालय पर्वत पर शरभ नामक जीव विशेष पाया जाता है, जो अत्यन्त घातक होता है, ये शरभ मेघ को देखकर क्रोध के कारण लड़ने के लिए तेजी से उछल कूद करेंगे। मेघ तो स्वयं पहले ही उन शरभों का मार्ग छोड़ रखा है, मेघ एक सन्देशवाहक है अतः किसी से व्यर्थ ही विवाद नहीं करना चाहेगा, फिर भी शरभ मेघ से युद्ध करना चाहेगा और स्वयं के ही अङ्गों को तोड़ने के लिए मेघ को लाङ्घने का प्रयास करेगा पर मेघ का अतिक्रमण न कर पाने के कारण जमीन पर गिरने से उस शरभ के ही अङ्ग टूटेंगे, ऐसी स्थिति में शारीरिक युद्ध से तो मेघ को भी हानि हो सकती है अतः उसे शरभों पर अपनी भीषण ओलों की वर्षा करके उन्हें तितर-बितर कर देना चाहिए। क्योंकि निष्फल कार्य को करने वाला कौन तिरस्कार का पात्र नहीं होता?

व्याकरणात्मक टिप्पणी – संरम्भोत्पतनरभसाः – संरम्भेण उत्पतने रभसो येषां ते (ब.व्री.)। **मुक्ताध्वानम्** – मुक्तः अध्वा येन स मुक्ताध्वा तं मुक्ताध्वानम् (ब.व्री.)। निष्फलारम्भयत्नाः – आरभ्यन्त इत्यारम्भाः आरम्भेषु यत्नः, आरम्भयत्नः निष्फलः आरम्भयत्नो येषां ते (ब.व्री.)।

विशेष – चतुर्थ पाद द्वारा तृतीय पाद के अर्थ का समर्थन होने से प्रस्तुत पद्य में अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

तत्र व्यक्तं दृषदि चरणन्यासमर्धेन्दुमौलेः।

शश्वत्सिद्धैरुपचितबलिं भक्तिनम्रः परीयाः।

यस्मिन् दृष्टे करणविगमादूर्ध्वमुद्भूतपापाः

कल्पिष्यन्ते स्थिरगणपदप्राप्तये श्रद्दधानाः।।55।।

अन्वयः – तत्र दृषदि व्यक्तम् सिद्धैः शश्वत् उपचितबलिम् अर्धन्दुमौलेः चरणन्यासम् भक्तिनम्रः परीयाः यस्मिन् दृष्टे उद्भूतपापाः श्रद्दधानाः करणविगमात् ऊर्ध्वम् स्थिरगणपदप्राप्तये कल्पिष्यन्ते।

शब्दार्थ – दृषदि – शिला पर, व्यक्तम् – साफ, सिद्धैः – सिद्धों द्वारा, उपचितबलिम् – पूजा किये गये, अर्धन्दुमौलेः – शिव के, चरणन्यासम् – पैरों के चिन्ह की, भक्तिनम्रः – भक्ति से विनम्र होकर, परीयाः – परिक्रमा करना, श्रद्दधानाः – श्रद्धालू, करणविगमात् – शरीर के नष्ट हो जाने, कल्पिष्यन्ते – समर्थ होंगे।

अनुवाद – वहाँ हिमालय पर्वत की शिला (पत्थर) पर, सिद्ध नामक देवताओं द्वारा निरन्तर पूजित, शिव के पैरों के स्पष्ट चिह्न की भक्ति से झुककर परिक्रमा करना। जिस (चिह्न) के दर्शनमात्र से ही पापमुक्त होकर श्रद्धालुगण शरीरत्याग के बाद स्थायी रूप से शिव के गण के पद की प्राप्ति के लिये समर्थ होते हैं।

व्याख्या – हिमालय की शिला पर अङ्कित भगवान शङ्कर के पैरों के चिह्न का माहात्म्य बतलाते हुए कालिदास कहते हैं कि शिला पर स्पष्ट रूप से अङ्कित शिव के पैरों का चिह्न सिद्ध नामक देवताओं द्वारा निरन्तर पूजा जाता है। उस चिह्न की मेघ को भी भक्तिपूर्वक झुककर परिक्रमा करना है क्योंकि जिसके दर्शनमात्र से ही श्रद्धालुओं के सभी पाप विनष्ट हो जाते हैं और पापमुक्त लोग मरणोपरान्त भगवान शिव के गणों में से एक हो जाते हैं। अतः ऐसे लाभ के मौके से मेघ को नहीं चूकना चाहिये क्योंकि शिव के गणपद की प्राप्ति अत्यन्त ही दुर्लभ है, जो कि इस शिला पर अङ्कित चिह्न के दर्शनमात्र से ही सुलभ हो जाती है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अर्धेन्दुमौलेः – अर्धश्चासाविन्दुश्चेत्यर्धेन्दुः 'स मौलौ यस्य (ब.व्री.)। **चरणन्यासम्** – चरणस्य न्यासः चरणन्यासस्तम् (पं.तत्पु.)। **उद्धतपापाः** – उद्धृतानि पापानि येषाम् (ब.व्री.)। **श्रद्दधानाः** – श्रत्+धा+शानच् कर्तरि।

शब्दायन्ते मधुरमनिलैः कीचकाः पूर्यमाणाः

संसक्ताभिस्त्रिपुरविजयो गीयते किन्नरीभिः।

निर्ह्रादस्ते मुरज इव चेत्कन्दरेषु ध्वनिः स्यात्

सङ्गीतार्थो ननु पशुपतेस्तत्र भावी समग्रः।।56।।

अन्वयः – अनिलैः पूर्यमाणाः कीचकाः मधुरम् शब्दायन्ते। संसक्ताभिः किन्नरीभिः त्रिपुरविजयः गीयते। कन्दरेषु ते निर्ह्रादः मुरजे ध्वनिः इव स्यात् चेत् तत्र पशुपतेः सङ्गीतार्थ ननु समग्रः भावी।

प्रसङ्ग – यक्ष मेघ को गुफाओं में मृदङ्गध्वनि के द्वारा भगवान शिव के सङ्गीत को सफल बनाने का निर्देश देता है।

शब्दार्थ – अनिलैः – वायु द्वारा, पूर्यमाणाः – भरे हुए, कीचकाः – बाँसविशेष, मधुरम् शब्दायन्ते – मधुर ध्वनि करते हैं, संरक्ताभिः किन्नरीभिः – अनुरक्त किन्नरियों के द्वारा, कन्दरेषु – गुफाओं में, मुरजे – मृदङ्ग की, ध्वनिः इव – ध्वनि के समान, सङ्गीतार्थ – सङ्गीत के लिये (सामग्री), भावी – हो जायेगी।

अनुवाद – वायु से भरे हुए कीचक संज्ञक बाँस मधुर शब्द कर रहे होंगे, (शिव के प्रति) प्रेम से भरी अनुरक्त किन्नरियाँ (महादेव की) त्रिपुरविजय का गान कर रही होंगी। यदि गुफाओं

में तुम्हारा गर्जन मृदङ्ग की ध्वनि के समान हो जाये तो वहाँ शिव के लिये सचमुच ही सङ्गीत की समस्त सामग्री जुट जायेगी।

व्याख्या – शिव के पैरों के चिह्न वाली शिला के स्थान पर जब वायु चलती है तो वायु से परिपूर्ण होकर वहाँ पर कीचक संज्ञक बाँस मधुर शब्द करते हैं। शिव की भक्ति में अनुरक्त किन्नरस्त्रियाँ शिव के त्रिपुरविजय का गान कर रही होंगी। शिव ने तीनों पुरों पर विजय प्राप्त की थी उसी विजय का गान यहाँ अभिप्रेत है। यक्ष मेघ से कहता है कि यदि तुम उन गुफाओं में अपना गर्जन मृदङ्गध्वनि की भाँति करोगे तो अवश्य ही शिव के सङ्गीत के लिए नृत्य-गीत-वाद्यरूपी सभी सामग्री इकट्ठी हो जायेगी। कीचक बाँसों के हिलने से नृत्य होगा, किन्नरियों के त्रिपुरगान के द्वारा गीत होगा और तुम्हारे मृदङ्गध्वनिरूपी गर्जन के द्वारा वाद्य भी हो जायेगा।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – त्रिपुरविजयः – त्रीणि पुराणि यस्य स त्रिपुरः (ब.व्री.) अथवा त्रयाणां पुराणां समहारस्त्रिपुरम् (समाहारद्विगु) तस्य विजयः। **पशुपतेः** – पशूनां पतिः पशुपतिस्तस्य (ष. तत्पु.)। **समग्रः** – अग्रेण सहितः।

प्रालेयाद्रेरुपतटमतिक्रम्य तांस्तान्विशेषान्

हंसद्वारं भृगुपतियशोवर्त्म यन्क्रौञ्चरन्ध्रम्।

तेनोदीचीं दिशमनुसरेस्तिर्यगायामशोभी

श्यामः पादो बलिनियमनाभ्युद्यतस्येव विष्णोः।।57।।

अन्वयः – प्रालेयाद्रेः उपतटं तान् तान् विशेषान् अतिक्रम्य यत् हंसद्वारम् भृगुपतियशोवर्त्म क्रौञ्चरन्ध्रम् तेन बलिनियमनाभ्युद्यतस्य विष्णोः श्यामः पादः इव तिर्यगायामशोभी उदीचीम् दिशम् अनुसरेः।

शब्दार्थ – प्रालेयाद्रेः – हिमालय पर्वत के, उपतटम् – तट के समीप, अतिक्रम्य – पार करके, भृगुपतियशोवर्त्म – परशुराम के यश का मार्ग, तिर्यगायामशोभी – टेढेपन एवं लम्बाई से शोभा देने वाले (मेघ), उदीचीम् दिशम् अनुसरेः – उत्तर दिशा की ओर चले जाना।

अनुवाद – हिमालय पर्वत के तटों के सन्निकट उन-उन प्रेक्षणीय वस्तुओं को पार करके, जो हंसों का मानसरोवर जाने का मार्ग है, परशुराम के यश का मार्ग है, उस क्रौञ्च पर्वत के छेद से गुजरते हुए, राजा बलि को रोकने के लिए तत्पर (वामनावतार) विष्णु के काले रंग के पैर के समान, टेढेपन एवं लम्बाई से सुशोभित (मेघ) उत्तर दिशा को चले जाना।

व्याख्या – यक्ष मेघ को हिमालय पर्वत के सन्निकट अनेक दर्शनीय वस्तुओं को पार करके क्रौञ्च पर्वत के छिद्र से उत्तर दिशा की ओर जाने का निर्देश देता है वह क्रौञ्चरन्ध्र हंसद्वार है, माना जाता है कि मानसरोवर जाने के इच्छुक हंस इस क्रौञ्च पर्वत के छिद्र से होकर

जाते थे। वह परशुराम के यश का मार्ग है, क्योंकि परशुराम ने शिवपुत्र कार्तिकेय के साथ प्रतिस्पर्धा करते हुए उस पर्वत को अपने तीर से छेद दिया था अतः उनकी कीर्ति उस पर्वत से फैल गयी। यक्ष कहता है कि वामनावतार लेकर भगवान विष्णु ने जब राजा बलि को रोकने के लिए उससे तीन पग जमीन मांगकर उसमें सम्पूर्ण संसार को अतिक्रान्त कर लिया था जिसने ऐसे भगवान विष्णु के काले (श्याम) वर्ण के पैरों के समान तुम अपने आपको छिद्र से निकालने के लिए टेढा एवं लम्बा करने से अत्यन्त सुशोभित हुए, उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान करना।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – प्रालेयाद्रेः – प्रालेयस्य अद्रेः (ष.तत्पु.)। **उपतटम्** – तटानां समीपे इति उपतटम्। **अतिक्रम्य** – अति+क्रम्+य (ल्यप्)। **भृगुपतियशोवर्त्म** – भृगुपतेर्यशसः वर्त्म (ष. तत्पु.)। **हंसद्वारम्** – हंसानां द्वारम् (ष.तत्पु.)। **क्रौञ्चरन्ध्रम्** – क्रौञ्चस्य (अद्रेः) रन्ध्रम् (ष. तत्पु.)।

विशेष – विष्णोः पाद इव में श्रौती उपमा अलङ्कार है।

गत्वा चोर्ध्वं दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः

कैलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्यातिथिः स्याः।

शृङ्गोच्छ्रायैः कुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थितः खं

राशीभूतः प्रतिदिनमिव त्र्यबकस्याट्टहासः।।58।।

अन्वयः – ऊर्ध्वम् च गत्वा दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसंधेः त्रिदशवनिता दर्पणस्य कैलासस्य अतिथिः स्याः। यः कुमुदविशदैः शृङ्गोच्छ्रायैः खम् वितत्य प्रतिदिनम् राशीभूतः त्र्यम्बकस्य अट्टहासः इव स्थितः।

शब्दार्थ – ऊर्ध्वं च गत्वा – उपर की ओर जाकर, दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसंधेः – रावण की भुजाओं द्वारा शिथिल किये हुए जोड़ों वाला, अतिथिः स्याः – अतिथि होना, यः कुमुदविशदैः – जो कुमुद पुष्प के समान निर्मल, खम् वितत्य – आकाश को व्याप्त करके, अट्टहासः इव स्थितः – जोर की हँसी के समान स्थित है।

अनुवाद – क्रौञ्चरन्ध्र से निकलने के उपरान्त उपर की ओर जाकर रावण की भुजाओं के बल से शिथिल हुए जोड़ों वाला, देवताओं की पत्नियों का दर्पण कैलास पर्वत का अतिथि हो जाना। जो (कैलास पर्वत) कुमुदपुष्प के समान निर्मल एवं ऊँची-ऊँची चोटियों से आकाश को व्याप्त करके प्रतिदिन एकत्रित हुए महादेव के अट्टहास के समान है।

व्याख्या – प्रकृत स्थल पर यक्ष मेघ को कैलास पर्वत का अतिथि होने के लिये निर्देश देते हुए कहता है कि क्रौञ्चरन्ध्र से निकलने के बाद कुछ उपर की ओर जाना वहाँ पर तुम कैलास पर्वत के अतिथि बनोगे, जिस कैलास पर्वत के चोटियों के जोड़ रावण द्वारा उखाड़ने

के प्रयास से ढीले पड़ चुके हैं, वह कैलास पर्वत देवाङ्गनाओं का दर्पण है, अर्थात् वे इसमें अपने मुख को देखती हैं। उसकी चोटियाँ कुमुदपुष्प के समान निर्मल हैं। वे ऊँची-ऊँची चोटियाँ आकाश को व्याप्त किये हुए हैं आकाश में व्याप्त ये चोटियाँ ऐसी प्रतीत होती हैं मानो महादेव शिव का प्रतिदिन होने वाला अट्टहास ही इकट्ठा हो गया हो।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसंधेः – दशमुखस्य भुजैरुच्छ्वासिताः प्रस्थानां सन्धयो यस्य तस्य (ब.व्री.)। **त्रिदशवनितादर्पणस्य** – त्रिदशानां वनिताः त्रिदशवनिताः तासां दर्पणस्य। वितत्य – वि+तन्+य (ल्यप्)। **प्रतिदिशम्** – दिशायांदिशायां (अव्ययी.)। **राशीभूतः** – अराशिः राशिः सम्पद्यमानः भूत इति राशीभूतः।

विशेष – कुमुदविशदैः में उपमा एवं अट्टहासः इव में उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

उत्पश्यामि त्वयि तटगते स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे

सद्यः कृत्तद्विरददशनच्छेदगौरस्य तस्य।

शोभामद्रेः स्तिमितनयनप्रेक्षणीयां भवित्री–

मंसन्यस्ते सति हलभृतो मेचके वाससीव।।59।।

अन्वयः – स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे त्वयि तटगते सद्यः कृत्तद्विरददशनच्छेदगौरस्य तस्य अद्रेः मेचके वाससि अंसन्यस्ते सति हलभृतः इव स्तिमितनयनप्रेक्षणीयाम् भवित्रीम् शोभाम् उत्पश्यामि।

प्रसङ्ग – मेघ और कैलास के समागम पर कैलास की होने वाले शोभा का अनुमान करते हुए यक्ष कहता है।

शब्दार्थ – स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे – चिकने एवं मर्दित काजल की शोभा वाले, त्वयि तटगते – तुम्हारे शिखर पर पहुँचने पर, सद्यः – तुरन्त, मेचके वाससि – नीले वस्त्र को, हलभृतः इव – बलराम के समान, स्तिमितनयनप्रेक्षणीयाम् – निश्चल नयनों से देखे जाने योग्य, शोभाम् उत्पश्यामि – शोभा को देखता हूँ।

अनुवाद – चिकने एवं मर्दित काजल के समान शोभा वाले, तुम्हारे कैलास पर्वत की चोटी पर पहुँचने पर, उसी क्षण काटे गये हाथी दाँत के टुकड़े के समान गौरवर्णीय, उस (कैलास) पर्वत की, नीले वस्त्र को कन्धे पर डाले हुए बलराम के समान निश्चल नेत्रों से देखे जाने योग्य होने वाली शोभा का अनुमान करता हूँ।

व्याख्या – यक्ष कैलास पर्वत की चोटी की शोभा का अनुमान करते हुए मेघ से कहता है कि कैलास पर्वत की चोटी पर जब तुम पहुँचोगे तो उसकी शोभा ठीक वैसी ही होगी जैसी नीले वस्त्र को कंधे पर डाले हुए बलराम की होती है, जो बिना पलके झपकाए निश्चल नेत्रों से देखने योग्य होती है। कैलास पर्वत उसी तरह धवल है जिस तरह तुरन्त काटा हुआ हाथी के दाँत का टुकड़ा होता है और बलराम जी का भी वर्ण भी धवल है। मेघ का वर्ण चिकने

पिसे हुए काजल के समान काला (नीला) है और बलराम के कंधे पर जो वस्त्र होता है उसका वर्ण भी यही है। अतः जब उन चोटियों से तुम्हारा समागम होगा तो उसकी शोभा बलराम के कंधे पर तुम्हारे रूप में डले हुए नीले वस्त्र के समान होगी।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – स्निग्धभिन्नाञ्जनाभेः – स्निग्धं भिन्नं च यत् अञ्जनं तस्य आभा इव आभा यस्य तस्मिन् (ब.व्री.)। **द्विरदः** – द्वौ रदौ (दन्तौ) यस्य सः। **अंसन्यस्ते** – अंसे न्यस्ते (स.तत्पु.)। **हलभृतः** – हलं बिभर्तीति हलभृत् तस्य। **स्तिमितनयनप्रेक्षणीयाम्** – स्तिमिताभ्यां नयनाभ्यां (तृ.त.) प्रेक्षणीयाम्।

विशेष – काजल का मेघ से सादृश्य एवं कैलास का बलराम से सादृश्य होने से प्रकृत पद्य में उपमा अलङ्कार है।

हित्वा तस्मिन्भुजगवलयं शंभुना दत्तहस्ता

क्रीडाशैले यदि च विचरेत्पादचारेण गौरी।

भंगीभक्त्या विरचितवपुः स्तम्भितान्तर्जलौघः

सोपानत्वं कुरु मणितटारोहणायाग्रयायी।।60।।

अन्वयः – तस्मिन् क्रीडाशैले च भुजगवलयम् हित्वा शम्भुना दत्तहस्ता गौरी यदि पादचारेण विचरेत, अग्रयायी स्तम्भितान्तर्जलौघः भङ्गीभक्त्या विरचितवपुः मणितटारोहणाय सोपानत्वम् कुरु।

प्रसङ्ग – यक्ष मेघ को कैलास पर शिव पार्वती के लिए सोपान का कार्य करने का निर्देश देता है।

शब्दार्थ – तस्मिन् क्रीडाशैले च – उस क्रीड़ापर्वत पर, भुजगवलयम् – सर्परूपी कङ्कण को, हित्वा – त्यागकर, शम्भुना – शिव के द्वारा, दत्तहस्ता – दिये गये हाथ वाली, गौरी – पर्वती, अग्रयायी – तो आगे चलने वाले (मेघ), स्तम्भितान्तर्जलौघः – थम गया है अन्दर का जलप्रवाह जिसका ऐसे (मेघ), मणितटारोहणाय – मणियों के शिखर पर चढने के लिये, सोपानत्वम् कुरु – चढाव का कार्य करना।

अनुवाद – उस क्रीड़ापर्वत (कैलास पर्वत) पर सर्परूपी कङ्कण को त्यागकर शिव के द्वारा (साथ में टहलने के लिये) दिये गये हाथ वाली पार्वती, यदि पैरों से चलकर (शिव के साथ) टहलें, तो आगे चलने वाले मेघ (तुम स्वयं के) अन्दर के जलप्रवाह को रोककर, लहरदार सीढियों का शरीर बनाकर, (शिव पार्वती के लिये) मणियों के शिखरों पर चढने के लिये सोपान का कार्य करना।

व्याख्या – यक्ष मेघ से कहता है कि उस क्रीडा पर्वत अर्थात् कैलास पर्वत पर, पार्वती सर्प से डरती थी अतः शिव अपने गले के सर्परूपी कङ्कण को त्यागकर अपना हाथ पार्वती को

दें और यदि पार्वती उनके साथ टहलने के लिये पैदल चलें तो तुम अपने अन्दर के जलप्रवाह को पूरे जोर के साथ रोक लेना, अपने आप को लहरदार सीढियों के शरीर वाला बना लेना, इस तरह शिव पार्वती मणियों के शिखर तक पहुँचने के लिय जब उद्यत होंगे तो तुम उनके लिये सीढियों का कार्य करना।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – क्रीडाशैले – क्रीडायाः शैलः क्रीडाशैलः तस्मिन्। **भुजगवलयम्** – भुजग एव वलयः (कर्मधा.) तम्। **दत्तहस्ता** – दत्तो हस्तः यस्यै सा (ब.व्री.)। **स्तम्भितान्तर्जलौघः** – स्तम्भितः अन्तः जलस्य ओघः यस्य तथाभूतः (ब.व्री.)। **विरचितवपुः** – विरचितं वपुः यस्य (ब.व्री.)।

विशेष – भुजंग में वलय का आरोप होने के कारण प्रकृत स्थल पर रूपक अलङ्कार है।

तत्रावश्यं वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयं

नेष्यन्ति त्वां सुरयुवतयो यन्त्रधारागृहत्वम्।

ताभ्यो मोक्षस्तव यदि सखे! धर्मलब्धस्य न स्यात्

क्रीडालोलाः श्रवणपरुषैर्गर्जितैर्भाययेस्ताः।।61।।

अन्वयः – तत्र सुरयुवतयः वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयम् त्वाम् अवश्यम् यन्त्रधारागृहत्वम् नेष्यन्ति। सखे! धर्मलब्धस्य तव यदि ताभ्यः मोक्षः न स्यात् (तर्हि) क्रीडालोलाः ताः श्रवणपरुषैः गर्जितैः भाययेः।

प्रसङ्ग – यक्ष कैलास पर्वत पर देवाङ्गनाओं की मेघ के साथ रमणक्रीडा एवं उससे मुक्ति पाने का निर्देश देता है।

शब्दार्थ – सुरयुवतयः – देवाङ्गनायें, वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयम् – कङ्कण की नोंक के आघात से जल उगलने वाले, यन्त्रधारागृहत्वम्नेष्यन्ति – फव्वारों का घर बना देंगी, तव यदि – तुम्हारा यदि, श्रवणपरुषैः – सुनने में कठोर, गर्जितैः – (तुम्हारे) गर्जन से, भाययेः – डरा देना।

अनुवाद – वहाँ कैलास पर्वत पर देवताओं की स्त्रियाँ, कङ्कण की नोकों के प्रहार से जल को उगल देने वाले तुमको अवश्य ही फव्वारों का घर बना देंगी। हे मित्र! उनको गर्मी में प्राप्त तुम, यदि उन देवाङ्गनाओं से छुटकारा ना पा सको तो चञ्चल क्रीडा करने वाली उन देवाङ्गनाओं को अपने भीषण गर्जन की आवाज से डरा देना।

व्याख्या – जब मेघ कैलास पर्वत पर होगा तो वहाँ पर देवताओं की स्त्रियाँ भी रमण करती हैं। वे सर्वदा क्रीड़ा में रत रहती हैं। वे कङ्कण को मेघ पर मारेंगी जिनकी नोकों के तीखे प्रहार से मेघ जल को उगल देगा, और अवश्य ही वे देवाङ्गनाएं अपने प्रहारों से मेघ को फव्वारों का घर बना देंगी। यक्ष मेघ से कहता है कि हे मित्र! गर्मी प्राप्त तुम यदि उन

देवाङ्गनाओं से छुटकारा ना पा सको तो उपाय के रूप में क्रीडा करने में लगी हुई उन देवाङ्गनाओं को सुनने में कठोर अपने गर्जन से डरा देना जिससे वे भयवशात् तुम्हारे मार्ग से हट जायेंगी और तुम आगे बढ पाओगे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – सुरयुवतयः – सुराणां युवतयः (ष. त.)। **वलयकुलिशोघट्टनोद्गीर्ण –** वलयानां कुलिशानि तैः यानि उदघट्टनानि तैः उद्गीर्णं तोयं येन तं (त्वाम्) (ब.व्री.)। **यन्त्रधारागृहत्वम् –** यन्त्रेषु धारा यन्त्रधारास्तासां गृहं तस्य भावः। **धर्मलब्धस्य –** धर्मे लब्धस्य (स.तत्पु.) ।

हेमाम्भोजप्रसवि सलिलं मानसस्याददानः

कुर्वन्कामं क्षणमुखपटप्रीतिमैरावतस्य।

धुन्वन्कल्पद्रुमकिसलयान्यंशुकानीव वातै–

र्नानाचेष्टैर्जलद! ललितैर्निर्विशेस्तं नगेन्द्रम्।।62।।

अन्वयः – जलद! हेमाम्भोजप्रसवि मानसस्य सलिलम् आददानः ऐरावतस्य क्षणमुखपटप्रीतिम् कुर्वन् कल्पद्रुमकिसलयानि अंशुकानि इव वातैः धुन्वन् नानाचेष्टैः ललितैः तम् नगेन्द्रम् कामम् निर्विशेः।

प्रसङ्ग – कैलास पर्वत की महिमाओं का सम्पूर्ण आनन्द लेने के लिए यक्ष मेघ को परामर्श देता है।

शब्दार्थ – हेमाम्भोजप्रसवि – स्वर्णकमलों को उत्पन्न करने वाले, सलिलम् – जल को, आददानः – ग्रहण करते हुए, क्षणमुखपटप्रीतिम् – क्षणभर के लिए मुख पर वस्त्र का आनन्द, कल्पद्रुमकिसलयानि – कल्पवृक्ष के पत्तों को, अंशुकानि इव – सूक्ष्मवस्त्रों की तरह, तम् नगेन्द्रम् – उस कैलास पर्वत को, निर्विशेः – उपभोग करना।

अनुवाद – हे मेघ! सोने के कमल को उत्पन्न करने वाले मानसरोवर के जल को ग्रहण करते हुए, इन्द्र के हाथी ऐरावत को क्षणभर के लिए मुख पर वस्त्र का सुख प्रदान करते हुए, कल्पवृक्ष के अभिनव पत्तों को सूक्ष्मवस्त्रों की तरह वायु द्वारा हिलाते हुए, कई प्रकार के व्यापार वाली क्रीडा के द्वारा उस कैलास पर्वत का इच्छानुसार उपभोग करना।

व्याख्या – यक्ष मेघ को उसके कैलास पर्वत के अतिथि होने का पूरा लाभ उठाने का निर्देश देता है, माना जाता है कि मानसरोवर में सोने के कमल उत्पन्न होते हैं, ऐसे स्वर्णकमलोत्पादक मानसरोवर का जल पीने का परामर्श देता है चूँकि ऐरावत हाथी पर गीले वस्त्र लपेटने से उसे सुख प्राप्त होता है अतः यक्ष मेघ को ऐरावत के मुख पर कुछ देर के लिये भीगे वस्त्र की भाँति छा जाने के लिए कहता है। कल्पवृक्ष जिसे देववृक्ष भी कहा जाता है, उस कल्पवृक्ष के अभिनव पत्तों सूक्ष्मवस्त्रों के समान अपनी वायु से हिलाने के लिए कहता है। यक्ष कहता

है कि अपनी अनेक प्रकार की चेष्टाओं वाली क्रीडा के द्वारा, जितना चाहो उतना उस पर्वतराज कैलास पर्वत का उपभोग करना और आनन्द की प्राप्ति करना।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – हेमाम्भोजप्रसवि – हेम्नः अम्भोजानि हेमाम्भोजानि (ष.त.)। **कल्पद्रुमकिसलयानि** – कल्पद्रुमाणां किसलयानि (ष.तत्पु.) तान्येवांशुकानि (कर्मधा.)। **नानाचेष्टैः** – नाना चेष्टा येषु तैः (ललितः), (ब.व्री.)।

विशेष – पद्य के तृतीय चरण में रूपकालङ्कार है।

तस्योत्सङ्गे प्रणयिन इव स्रस्तगङ्गादुकूलां

न त्वं दृष्ट्वा न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारिन्।

या वः काले वहति सलिलोद्गारमुच्चैर्विमाना

मुक्ताजालग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम्।।63।।

अन्वयः –कामचारिन्! प्रणयिनः इव तस्य उत्सङ्गे स्रस्तगङ्गादुकूलाम् अलकाम् दृष्ट्वा त्वम् पुनः न ज्ञास्यसे (इति) न। उच्चैर्विमाना या वः काले सलिलोद्गारम् अभ्रवृन्दम् कामिनी मुक्ताजालप्रथितम् अलकम् इव वहति।

प्रसङ्ग – इस स्थल में यक्ष मेघ को अलकापुरी का परिचय देते हुए उसका वर्णन करता है।

शब्दार्थ – प्रणयिनः इव – प्रेमी के समान, उत्सङ्गे – गोद में, उच्चैर्विमाना – ऊँचे महलों वाली, या वः – जो(अलका) तुम्हारे, सलिलोद्गारम् – जल बरसाने वाले, अभ्रवृन्दम् – मेघसमूह को, कामिनी – स्त्री, मुक्ताजालप्रथितम् – मोतियों के गुच्छ से गुँथे हुए, वहति – धारण करती है।

अनुवाद – हे इच्छानुरूप विचरण करने वाले मेघ! प्रेमी के समान उस कैलास पर्वत के उपरी भाग में अथवा गोद में, जिसका गङ्गारूपी वस्त्र खिसका हुआ है, ऐसी अलकापुरी को देखकर भी तुम पहचान न पाओ ऐसा नहीं है। ऊँचे महलों वाली जो अलकापुरी वर्षाकाल में तुम्हारे जल बरसाने वाले मेघसमूह को कामिनी स्त्री मोतियों के गुच्छों से गुँथे हुए बालों की तरह धारण करती है।

व्याख्या – यक्ष मेघ को अलकापुरी की पहचान कराते हुए कहता है कि हे इच्छानुसार विचरण करने वाले मेघ! उस हिमालय पर्वत के उपरी भाग अथवा गोद में धनपति कुबेर की नगरी अलका है। कैलास पर्वत प्रेमी की तरह एवं अलका उसकी प्रेमिका की तरह प्रतीत होती है। उस अलका का सूक्ष्मवस्त्र गङ्गा नदी है, जो अपने प्रिय कैलास की गोद में जाने से अपने स्थान से खिसक गया प्रतीत होगा। यह सब देखकर भी मेघ उस अलका को न पहचाने यह तो असंभव है। वह अलकापुरी ऊँचे महलों वाली है, वर्षाऋतु में मेघ के जल बरसाने वाले

समूह को उस अलका के महल के उपरी भाग ठीक उसी तरह धारण करते हैं जिस तरह कोई कामिनी स्त्री मोतियों की माला से गुँथे हुए बालों को अपने सिर पर धारण करती है और अत्यन्त रमणीय लगती है इस तरह तुम अलका के केशपाश बनकर उसका शृङ्गार कर दोगे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अभ्रवृन्दम् – अभ्राणां (मेघानां) वृन्दम् (समूहः) (ष.तत्पु.)। **मुक्ताजालग्रथितम् –** मुक्तानां जालं तेन ग्रथितम् (तत्पु.)।

विशेष – यहाँ कैलास की प्रेमी से, गङ्गा की वस्त्र से, सलिल की मोतियों से, अलका की कामिनी स्त्री से समरूपता दिखलाई गई है अतः प्रकृत स्थल पर समस्तवस्तुविषयक उपमा अलङ्कार है।

18.3 सारांश

प्रस्तुत इकाई में यक्ष मेघ को अलकापुरी का मार्ग बताते हुए निर्विन्ध्या को पार करने के पश्चात् सिन्धु नदी के बारे में बताता है। यक्ष के माध्यम से कालिदास कहते हैं कि सिन्धु वेणी के समान पतली सी नदी है अतः वृष्टि कर तुम उसकी दुर्बलता को दूर करना। तत्पश्चात् तुम अवन्ती जनपद में जाना वहाँ के वृद्धजन उदयन की कथाओं के ज्ञाता हैं। उस अवन्ती जनपद में तुम सम्पत्तिशालिनी उज्जयिनी नगरी की ओर प्रस्थान करना। मेघ के मार्ग में न होने के बाद भी कालिदास मेघ को उज्जयिनी भेजते हैं। जो उज्जयिनी के प्रति कालिदास के विशेष प्रेम को व्यक्त करता है। उन्होंने मेघ को उज्जयिनी के उन्नत भवनों की वनिताओं के लाल अपाङ्ग चितवन और निर्विन्ध्या की चटुल तरङ्गों से अभिव्यक्त प्रेम भाव का लालच देकर उज्जयिनी की ओर प्रवृत्त किया है। क्षिप्रा नदी की वायु के गुणों का वर्णन करते हुए वह कहते हैं कि यह उज्जयिनीस्थ क्षिप्रावात् स्त्रियों की रतिजन्य थकावट को भी दूर कर देती है। उज्जयिनी के बाजारों में रत्नों का ऐसा बाहुल्य है कि मानो समुद्र में जल मात्र ही शेष रह गया हो। हे मेघ! उस नगरी में विद्युत्प्रकाश से भयभीत सुन्दरियों के चञ्चल कटाक्षों को यदि तुमने नहीं देखा तो तुम्हारा जीवन व्यर्थ है। स्वर्ग के खण्ड के समान इस देदीप्यमान उज्जयिनी में तुम्हारे पहुँचते ही सारस पक्षी का कलरव सर्वत्र होने लगता है। हे मेघ! तुम महाकाल मन्दिर जाकर पूजन के समय अपनी गर्जना करना जिससे तुम्हें पुण्य लाभ प्राप्त होगा। महाकाल मन्दिर की नर्तकियों को तुम्हारे जल बिन्दुओं से सुख की प्राप्ति होगी। अभिसारिकाओं को रात्रि में विद्युत्प्रकाश से मार्ग दिखलाना। थक जाने पर जहाँ कबूतर सोये हों ऐसे किसी भवन की छत पर विश्राम कर लेना। तुम प्रातः शीघ्र ही वहाँ से आगे बढना तथा कार्तिकेय के वाहन मयूर को अपनी गर्जना से नृत्य कराकर कार्तिकेय का पूजन करना। तत्पश्चात् चर्मण्वती (चंबल) नदी को प्रणाम करके तुम मन्दसौर (दशपुर) की सुन्दर स्त्रियों की आँखों के सामने से निकलना। पुनः ब्रह्मावर्त कुरुक्षेत्र होकर सरस्वती नदी का जल पान करके तुम कनखन निकल जाना, वहाँ गङ्गा का जलपान करना। हिमालय

में शिला पर अंकित भगवान शिव के चरणों को प्रणाम करना जिन्हें प्रणाम कर श्रद्धालुजनों के समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। वहाँ यदि तुम्हारा मृदङ्ग के समान गर्जन हो तो भगवान शिव के पूजन की समस्त सामग्री एकत्रित हो जायेगी। इस प्रकार हिमालय तट के समीप अनेक दर्शनीय पदार्थों को लांघकर भगवान् परशुराम के यश का चिह्न क्रौञ्चपर्वत का छिद्र तुम्हें दिखलाई देगा। इसी क्रौञ्चरन्ध्र से निकलकर तुम कैलास पर्वत के अतिथि बनोगे। भगवान शिव के क्रीड़ापर्वत कैलास की शोभा नीले वस्त्र कन्धे पर डाले हुए बलराम के शरीर की शोभा के समान है। तुम कैलास के अतिथि होगे अतः वहाँ विद्यमान सामग्रियों का यथेच्छ उपभोग करते हुए आनन्द लाभ लेना। कैलास के ही उन्नत भाग में तुम्हें अलकापुरी नजर आयेगी। मानो कैलास प्रेमी हो और अलका उसकी गोद में बैठी हुई प्रेमिका। इस प्रकार मेघदूत के पूर्वार्ध में कालिदास ने मेघाच्छादित प्रकृति के साथ प्राणिजगत् के अनुपम रहस्यमय सम्बन्ध को अत्यन्त ही मार्मिक एवं ललित पदावली में सजीव रूप में अंकित किया है।

18.4 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. मूसलगांवकर केशवराव – कालिदासमीमांसा, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी,2011
2. त्रिपाठी मिथिलाप्रसाद(प्र.स)– कालिदासग्रन्थावली, कालिदास संस्कृत अकादमी, उज्जैन, 2007
3. त्रिपाठी मिथिलाप्रसाद(प्र.स)– मेघदूतम्, कालिदास संस्कृत अकादमी, उज्जैन, 2007
4. शास्त्री, प. मोहनदेवपन्त, डॉ संसारचन्द्र– मेघदूतम्, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1996
5. शास्त्री डॉ दयाशंकर– मेघदूतम्, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी 2014

18.5 अभ्यास प्रश्न

1. पूर्वमेघ की इस इकाई वर्णित नदियों के सौन्दर्य का वर्णन कीजिये।
2. कालिदास के उज्जयिनी प्रेम की सोदाहरण विवेचना कीजिये।
3. **'दीर्घीकुर्वन् पटु मदकलं कूजितं सारसानां'** श्लोक की व्याख्या कीजिए।
4. **'प्रालेयाद्रेरुपतटमतिक्रम्य तांस्तान्विशेषान्'** श्लोक की व्याख्या कीजिए।

इकाई 19 उत्तरमेघ – श्लोक 1-24

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य

19.1 प्रस्तावना

19.2 उत्तरमेघ – श्लोक 1-24

19.3 सारांश

19.4 कुछ उपयोगी पुस्तकें

19.5 अभ्यास प्रश्न

19.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप–

- कालिदास की प्रेम-अभिव्यञ्जना का अवबोध कर सकेंगे।
- उत्तरमेघ में प्रतिपाद्य अलकापुरी के वैभव को कवि की दृष्टि से समझ सकेंगे।
- महाकवि कालिदास द्वारा वर्णित यक्षिणी के प्रेम और विरह अवस्था को अपने शब्दों में अभिव्यक्त कर सकेंगे।
- श्लोकों के अन्वय, प्रसङ्ग, शब्दार्थ आदि का अध्ययन कर सकेंगे।
- श्लोकों में आये नूतन पदों की व्याकरणात्मक प्रकृति और प्रत्यय से परिचित हो सकेंगे।

19.1 प्रस्तावना

मेघदूत महाकवि कालिदास की कविताकान्त उपाधि का एक स्पष्ट प्रमाण है कालिदास की रचनाओं में मेघदूत को अत्यन्त महत्त्व प्राप्त है। संस्कृत के गीतिकाव्यों में इस कृति को जो सम्मान मिला है, वह अन्य किसी काव्य को उपलब्ध नहीं हो सका। ललित पद्यों में महाकवि ने कान्ता-विश्लेषित यक्ष की वियोग-व्यथा का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है।

पूर्वमेघ में पर्वत, कानन, नगर, सरिता इत्यादि के वर्णन में दृश्य-वैविध्य का संमोहन उपलब्ध है जो प्रबन्ध का एक आवश्यक अंग है। इस खण्ड का अध्ययन आप पूर्व दो इकाईयों में कर चुके हैं। आपने पढ़ा होगा कि यक्ष किस प्रकार कभी सीधे और कभी तिरछे मार्ग को कहता है और प्रत्येक गंतव्य का वैशिष्ट्य और प्रयोजन भी बताता है। मार्ग के प्रकाशन के उपरान्त महाकवि उत्तरमेघ में यक्ष द्वारा प्रेषणीय संदेश को अभिव्यक्त करते हैं। निश्चित ही यह संदेश यक्ष की हृदय-वेदना और उत्कटता को अभिव्यंजित करता है। मेघ को उस परिवेश में जाना

है और यक्षप्रिया को उसके व्याकुल प्रेमी की बातें सुनानी हैं। इस इकाई में आप उत्तर मेघ के प्रारम्भिक 24 श्लोकों का अध्ययन करेंगे।

19.2 उत्तरमेघ – श्लोक 1-24

इकाई के इस अंश में मेघदूतम् खण्डकाव्य के प्रथम 24 काव्यांशों की व्याख्या अन्वय, प्रसङ्ग, अनुवाद, शब्दार्थ और व्याकरणात्मक टिप्पणी का अध्ययन करेंगे।

विद्युत्वन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः

सङ्गीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगम्भीरघोषम्।

अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुङ्गमभ्रंलिहाग्राः

प्रासादास्त्वं तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः।।1।।

अन्वयः – यत्र ललितवनिताः सचित्राः सङ्गीताय प्रहतमुरजाः मणिमयभुवः अभ्रंलिहाग्राः प्रसादाः विद्युत्वन्तं सेन्द्रचापं स्निग्धगम्भीरघोषम् अन्तस्तोयं तुङ्गं त्वां तैः तैः विशेषैः तुलयितुम् अलम्।

प्रसङ्ग – इस प्रथम श्लोक में यक्ष द्वारा मेघ को अलकापुरी का मार्ग बताया जा रहा है।

अनुवाद – जहाँ अलकापुरी में सुन्दर स्त्रियों वाले, चित्रों से युक्त, सङ्गीत के लिए मृदङ्ग बजाये गये, मणि आदि रत्नों से सुशोभित भूमि वाले, आकाश तक छूते शिखरों से युक्त भवन, बिजली से चमत्कार करने वाले, इन्द्रधनुष से युक्त, मधुर और गम्भीर गर्जन वाले, अपने अन्दर जल को धारण करने वाले और ऊँचे तुमसे उन-उन गुणों के कारण बराबरी करने में समर्थ हैं।

शब्दार्थ – ललितवनिताः – सुन्दर स्त्रियों वाले, सचित्राः – चित्रों से युक्त, सङ्गीताय – संगीत के लिए, प्रहतमुरजाः – मृदङ्ग बजाये गये, मणिमयभुवः – मणि आदि रत्नों से सुशोभित भूमि वाले, विद्युत्वन्तम् – बिजली धारण करने वाले, सेन्द्रचापम् – इन्द्रधनुष से युक्त, स्निग्धगम्भीरघोषम् – मधुर व गम्भीर गर्जन वाले, अन्तस्तोयम् – अपने अन्दर जल धारण करने वाले, तुङ्गम् – ऊँचे, तुलयितुम् – बराबरी करने में, अलम् – समर्थ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – ललितवनिताः – ललिताः वनिताः येषु ते (बहु.)। **सेन्द्रचापम् –** इन्द्रस्य चापः (ष.त.) तेन सहितः (बहु.) तम्। **सचित्राः –** चित्रेण सहिताः (बहु.)। **प्रहतमुरजाः –** प्रहताः मुरजाः येषु ते (बहु.)। **स्निग्धगम्भीरयोषम् –** स्निग्धः गम्भीरः घोषः यस्य सः (बहु.) तम्। **मणिमय –** मणि+मयट्। **तुलयितुम् –** तुल्+णिच्+तुमुन्।

हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धं

नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः।

चूडापाशे नवकुरबकं चारु कर्णे शिरीषं

सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम्।।2।।

अन्वयः – यत्र वधूनां हस्ते लीलाकमलम्, अलके बालकुन्दानुविद्धम्, आनने लोध्र प्रसवरजसा पाण्डुतां नीता श्रीः, चूडापाशे नवकुरबकम् कर्णे चारु शिरीषम् सीमन्ते च त्वदुपगमजं नीपम् (अस्ति)।

प्रसङ्ग – इस काव्यांश में यक्ष मेघ से अलकापुरी की स्त्रियों के पुष्पालङ्कार का वर्णन करता है।

अनुवाद – जहाँ अलकापुरी में स्त्रियों के हाथ में क्रीड़ा के कमल पुष्प, बालों में नये कुन्द पुष्पों का गुम्फन, मुख में लोध्र के पुष्पों के कणों से शुभ्रता से युक्त, जूड़े में नवकुरबक के पुष्प, कानों में सुन्दर चमकीले शिरीष पुष्प और माँग में तुम्हारे आने से उत्पन्न होने वाला कदम्ब पुष्प सुशोभित होता है।

शब्दार्थ – वधूनाम् – स्त्रियों के, लीलाकमलम् –क्रीड़ा के लिए धारण किया हुआ कमल पुष्प, अलके – बालों में, बालकुन्दानुविद्धम् – नये कुन्द पुष्पों का गुम्फन, लोध्रप्रसवरजसा – लोध्रपुष्पों के कणों से, पाण्डुताम् – शुभ्रता को, नीता – प्राप्त, श्रीः – शोभा, प्रवकुरबकम् – नवीन कुरबक के पुष्प, चारु – सुन्दर, सीमन्ते – माँग में, नीपम् – कदम्ब पुष्प।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – लीलाकमलम् – लीलार्थम् कमलम् (मध्यपद लोपी त.)। **अनुविद्धम्** – अनु+व्य+क्त। **नीता** – नी+क्त+टाप्। **लोध्रप्रसवरजसा** – लोध्रस्य प्रसवाः (ष.त.), तेषां रजसा (ष.त.)ताम्। **चूडापाशे** – चूडानां पाशे (ष.त.)। नवकुरबकम् – नवं च कुरबकम् (कर्मधारय)। **सीमन्ते** – सीम्नः अन्तः (ष.त.) तस्मिन्।

यत्रोन्मत्तभ्रमरमुखराः पादपा नित्यपुष्पा

हंसश्रेणीरचितरशना नित्यपद्मा नलिन्यः।

केकोत्कण्ठा भुवनशिखिनो नित्यभास्वत्कलापा

नित्यज्योत्स्नाः प्रतिहततमोवृत्तिरम्याः प्रदोषाः।।प्रक्षिप्त 1।।

अन्वयः – यत्र पादपाः नित्यपुष्पाः उन्मत्तभ्रमरमुखराः, नलिन्यः नित्यपद्माः हंसश्रेणीरचितरशना, भवनशिखिनः नित्यभास्वत्कलापाः केकोत्कण्ठाः, प्रदोषाः नित्यज्योत्स्नाः प्रतिहततमोवृत्तिरम्याः।

अनुवाद – जहाँ अलकापुरी में वृक्ष सदा पुष्पों से युक्त, मतवाले भ्रमरों से गुञ्जायमान हैं, कमलनियाँ सदा कमलों से युक्त तथा हंसों की पंक्तियों से युक्त हैं, भवनों के मोर चमकने वाले पंखों वाले (और) बोलने के लिए गरदन उठाये हुए हैं और रात्रियाँ नित्य चाँदनी से युक्त हैं, अतः नष्ट हुए अन्धकार से प्रसार वाली और सुन्दर हैं।

शब्दार्थ – पादपाः – वृक्ष, नित्यपुष्पाः – सदैव सुगन्धित फूलों से भरी, उन्मत्तभ्रमरमुखराः – मतवाले भ्रमरों से गुञ्जायमान, नलिन्यः – कमलनियाँ, नित्यपद्माः – सदा कमल से युक्त, हंसश्रेणीरचितरशनाः – हंसों की पङ्क्तियों से बनी करधनियों वाली, भवनशिखिनः – भवनों के पालतू मोर, नित्यभास्वत्कलापाः – हमेशा चमकने वाले पंखों वाले, केकोत्कण्ठाः – बोलने के लिए गर्दन उठाये हुए, प्रदोषाः – रात्रियाँ, नित्यज्योत्स्नाः – हमेशा चाँदनी से युक्त।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – उन्मत्तममरमुखराः – उन्मत्ताः भ्रमराः (कर्मधा.) तैः मुखरा (तृ.त.)। **उन्मत्ताः –** उन्+मद्+क्त। **नित्यपुष्पाः –** नित्यानि पुष्पाणि येषां ते। **हंसश्रेणीरचितरशनाः –** हंसानां श्रेण्यः (ष.त.), ताभिः रचिताः रशना यासां ताः (ब.व्री.)। **नित्यपद्माः –** नित्यानि पद्मानि यासां ताः (ब.व्री.)। **नलिन्यः –** नल+इनि+ङीप्। **वनशिखिनः –** भवनानां भवनेषु वा शिखिनः, शिखिन्+शिखा+इनिः। **नित्यज्योत्स्नाः –** नित्या ज्योत्स्ना येषां ते (ब.व्री.)।

आनन्दोत्थं नयनसलिलं यत्र नान्यैर्निमित्तै–

र्नान्यस्तापं कुसुमशरजादिष्टसंयोगसाध्यात्।

नाप्यन्यस्मात्प्रणयकलहाद्विप्रयोगोपपत्ति–

र्वित्तेशानां न च खलु वयो यौवनादन्यदस्ति।।प्रक्षिप्त 2।।

अन्वयः – यत्र वित्तेशानां नयनसलिलम् आनन्दोत्थम्, अन्यैः निमित्तैः न इष्टसंयोगसाध्यात् कुसुमशरजात् (तापात्) अन्यः तापः न, प्रणयकलहात् अन्यस्मात् विप्रयोगोपपत्तिः अपि न, यौवनाद् अन्यत् वयः च न खलु अस्ति।

प्रसङ्ग – इस श्लोक में यक्ष द्वारा अलकापुरी के यक्षों की उत्कर्षता का वर्णन किया गया है।

अनुवाद – जहाँ अलकापुरी में यक्षों के आँसू आनन्द या प्रसन्नता से उत्पन्न होते हैं, अन्य कारणों से नहीं, प्रियजन के संयोग से दूर होने वाले, कामदेव के बाण में उत्पन्न ताप के अलावा अन्य कोई सन्ताप नहीं है। प्रणय कलह के अलावा अन्य कारण से वियोग की प्राप्ति भी नहीं है। यौवन के अलावा कोई दूसरी अवस्था भी नहीं है।

शब्दार्थ – वित्तेशानाम् – यक्षों के, नयनसलिलम् – आँसू, आनन्दोत्थम् – आनन्द या प्रसन्नता से उत्पन्न, अन्यैः निमित्तैः – अन्य कारणों से, इष्टसंयोगसाध्यात् – प्रियजन के मेल से दूर होने वाले, कुसुमशरजात् – कामदेव के बाण से उत्पन्न होने से, अन्यः तापः – दूसरा संताप, प्रणयकलहात् – प्रणय कलह से, अन्यस्मात् – अन्य कारण से, विप्रयोगोपपत्तिः – वियोग की प्राप्ति भी, यौवनात् – यौवन से, वयः – अवस्था।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – आनन्दोत्थम् – आनन्दात् उत्तिष्ठति इति, आनन्द+उद्+स्था+क (उपपद समास)। **नयनसलिलम् –** नयनयोः सलिलम् (ष.त.)। **कुसुमशरजात् –** कुसुमानि एव शरा यस्य स कुसुमशरः कामदेवः (बहुव्रीहि) तस्मात् जातः कुसुमशरजः तस्मात् (प.त.)।

इष्टसंयोगसाध्यात् – इष्टस्य संयोगः (ष.त.), तेन साध्यः (तृ.त.) तस्मात्। **प्रणयकलहात् –** प्रणयस्य कलहः (ष.त.) तस्मात्। **विप्रयोगोपपत्तिः –** विप्रयोगस्य उपपत्तिः (ष.त.), वि+प्र+युज्+घञ्–विप्रयोगः। **वित्तेशानाम् –** वित्तानाम् ईशः (ष.त.) तेषाम्।

यस्यां यक्षाः सितमणिमयान्येत्य हर्म्यस्थलानि

ज्योतिश्छायाकुसुमरचितान्युत्तमस्त्रीसहायाः।

आसेवन्ते मधु रतिफलं कल्पवृक्षप्रसूतं

त्वद्गम्भीरध्वनिषु शनकैः पुष्करेष्वाहतेषु।।3।।

अन्वयः – यस्यां यक्षाः उत्तमस्त्रीसहायाः (सन्तः) सितमणिमयानि ज्योतिश्छायाकुसुमरचितानि हर्म्यस्थलानि एत्य त्वद्गम्भीरध्वनिषु पुष्करेषु शनकैः आहतेषु कल्पवृक्षप्रसूतं मधु आसेवन्ते।

प्रसङ्ग – इस छन्द में यक्ष मेघ से अलकापुरी में यक्षों के उपभोग का वर्णन करता है।

अनुवाद – जिस अलकापुरी में यक्ष सुन्दर स्त्रियों के साथ मिलकर स्फटिक मणि से जटित (अतः) तारों के प्रतिबिम्ब रूपी पुष्पों से सुशोभित, महलों की अटारियों पर जाकर तुम्हारे समान गम्भीर ध्वनि वाले पुष्कर नामक बाजों और नगाड़ों के धीरे-धीरे बजाये जाने पर, कल्पवृक्ष से उत्पन्न रतिफल नामक मदिरा का सेवन करते हैं।

शब्दार्थ – उत्तमस्त्रीसहायाः – सुन्दर स्त्रियों के साथ, सितमणिमयानि – स्फटिक मणि से जटित, ज्योतिश्छायाकुसुमरचितानि – तारों के प्रतिबिम्ब रूपी पुष्पों से सुशोभित, एत्य – जाकर, त्वद्गम्भीरध्वनिषु – तुम्हारे समान गम्भीर ध्वनि वाले, पुष्करेषु – पुष्कर नामक बाजों के, आहतेषु – बजाये जाने पर, कल्पवृक्षप्रसूतम् – कल्पवृक्ष से उत्पन्न, रतिफलम् मधु – रतिफल नामक मदिरा का, आसेवन्ते – सेवन करते हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – सितमणिमयानि – सिताः मणयः (कर्मधा.) तेषां विकाराः इति, सितमणि+मयट्। **एत्य –** आ+इण्+ल्यप्। **ज्योतिश्छायाकुसुमरचितानि –** ज्योतिषां छायाः (ष.त.) ताः एव कुसुमानि (ष.त.) तैः रचितानि (तृ.त.)। **उत्तमस्त्रीसहायाः –** उत्तमाः स्त्रियः सहायाः येषां ते (बहु.)। **आसेवन्ते –** आ+सेव्, लट् प्र.पु. (बहु.)। **रतिफलम् –** रतिः फलम्, यस्य तत् (बहु.)। **कल्पवृक्षप्रसूतम् –** कल्पवृक्षात् प्रसूतम्, तत् (प.त.)। **प्रसूतम् –** प्र+सू+क्त। **त्वद्गम्भीरध्वनिषु –** गम्भीरश्चाऽसौ ध्वनिः (कर्मधा.) तव इव गम्भीरध्वनिर्येषां ते, तेषु (बहु.)।

मन्दाकिन्याः सलिलशिशिरैः सेव्यमाना मरुद्भि–

र्मन्दाराणामनुतटरुहां छायया वारितोष्णाः।

अन्वेष्टव्यैः कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपगूढैः

संक्रीडन्ते मणिभिरमरप्रार्थितया यत्र कन्याः।।4।।

अन्वयः – यत्र अमरप्रार्थिताः कन्याः मन्दाकिन्याः सलिलशिशिरैः मरुद्भिः सेव्यमानाः अनुतटरुहां मन्दराणां छायया वारितोष्णाः कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपगूढः अन्वेष्टव्यैः मणिभिः संक्रीडन्ते।

प्रसङ्ग – इस श्लोक में अलकापुरी की कन्याओं की क्रीड़ा का वर्णन किया गया है।

अनुवाद – जिस अलकापुरी में गङ्गा नदी के जल से शीतल पवनों द्वारा सेवा की जाती हुई, किनारों पर उगे हुए मन्दार वृक्षों की छाया से रोकी गयी धूप वाली, देवताओं के द्वारा चाही जाने वाली, कन्याएँ सोने की बालू में मुट्ठी में रखकर छिपायी गयी, अतएव खोजी जाने वाली मणियों से खेलती हैं।

शब्दार्थ – मन्दाकिन्याः – गङ्गा नदी के, सलिलशिशिरैः – जल से शीतल, सेव्यमानाः – सेवा की जाती हुई, अनुतटरुहाम् – किनारों पर उगे हुए, मन्दाराणाम् – मन्दार वृक्षों की, छायया – छाया से, वारितोष्णाः – रोकी गयी धूप वाली, अमरप्रार्थिताः – दूसरों द्वारा मांगी गयी सुन्दरियां, मन्दाकिन्याः – आकाशगङ्गा का, सलिलशिशिरैः – जल की शीतलता से, अन्वेष्टव्यः – खोजी जाने योग्य, रत्नैः – मणियों द्वारा।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – सलिलशिशिरैः – सलिलेन शिशिरैः (तृ.त.)। **सेव्यमाना** – सेव्+यक्+मुक्+शानच्। **अनुतटरुहाम्** – तटेषु इति अनुतटम् (अव्ययीभाव) अनुतटं रोहन्ति इति तेषाम् (उप.त.)। **वारितोष्णाः** – वारितः उष्णः यासां ताः (बहु.)। **अन्वेष्टव्यः** – अनु+इष्+तव्यत्। **कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपगूढः** – कनकरेणु सिकताः (प.त.) तासु मुष्टिभिः निक्षेपः (तृ.त.) कनकसिकतासु मुष्टिनिक्षेपः (स.त.) तेन गूढैः (तृ.त.)।

नीवीबन्धोच्छ्वसितशिथिलं यत्र बिम्बाधराणां

क्षौमं रागादनिभृतकरेष्वाक्षिपत्सु प्रियेषु।

अर्चिस्तुङ्गानभिमुखमपि प्राप्य रत्नप्रदीपान्

ह्रीमूढानां भवति विफलप्रेरणा चूर्णमुष्टिः।।5।।

अन्वयः – यत्र अनिभृतकरेषु प्रियेषु नीवीबन्धोच्छ्वसितशिथिलं क्षौमं रागात् आक्षिपत् ह्रीमूढानां बिम्बाधराणां चूर्णमुष्टिः अर्चिस्तुङ्गान् रत्नप्रदीपान् अभिमुखं प्राप्य अपि विफलप्रेरणा भवति।

प्रसङ्ग – इस श्लोक में यक्ष मेघ से अलकापुरी के स्त्री-पुरुषों की काम-क्रीड़ा का वर्णन करता है।

अनुवाद – जिस अलकापुरी में चञ्चल हाथों वाले प्रेमियों के द्वारा अधोवस्त्र की गाँठ के खुल जाने से ढीले हुए रेशमी वस्त्र को राग के कारण हटा देने पर लज्जा से हक्की-बक्की हुई, बिम्ब फल के समान ओठों वाली स्त्रियों की चूर्ण की मुट्ठी किरणों से उन्नत, रत्नरूपी दीपकों के सामने पहुंचकर भी निष्फल फेंकी हुई हो जाती है।

शब्दार्थ – अनिभूतकरेषु – चञ्चल हाथों वाले, क्षौमम् – रेशमी वस्त्र को, रागेषु – राग के कारण, ह्रीमूढानाम् – लज्जा से हक्की-बक्की हुई, बिम्बाधराणाम् – बिम्ब फल के समान ओठों वाली, चूर्णमुष्टिः – चूर्ण की मुट्ठी, अर्चिस्तुङ्गान् – किरणों से उन्नत, रत्नप्रदीपान् – रत्नरूपी दीपों के, अभिमुखम् – सामने, प्राप्य – पहुँचकर, विफलप्रेरणा – निष्फल फेंकी हुई।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – बिम्बाधराणाम् – बिम्बमिव अधरो यासां ताः बिम्बाधराः (बहु.) तासाम्। **क्षौमम् –** क्षुमाया विकारः क्षौमं तत् क्षुमा+अण्। **रागात् –** रञ्ज+घञ् (भावे) हेतौ पञ्चमी। **अनिभृतकरेषु –** न निभृताः (नञ् त.) अनिभृताः करा येषां ते, तेषु (बहु.)। **निभृताः –** नि+भृ+क्त। **आक्षिपत्सु –** आ+क्षिप्+शतृ। **अर्चिस्तुङ्गान् –** अर्चिभिः तुङ्गाः (तृ.त.) तान्। **अभिमुखम् –** मुखम् प्रति (अव्ययी.स.)। **रत्नप्रदीपान् –** रत्नानि एव प्रदीपाः (कर्मधा.) तान् ।

नेत्रा नीताः, सततगतिना यद्विमानाग्रभूमी–

रालेख्यानां सलिलकणिकादोषमुत्पाद्य सद्यः।

शङ्कास्पृष्टा इव जलमुचसत्वादृशा जालमार्गै–

र्धूमोद्गारानुकृतिनिपुणा जर्जरा निष्पतन्ति।।6।।

अन्वयः – नेत्रा सततगतिना यद् विमानाग्रभूमिः नीताः आलेख्यानां सलिलकणिकादोषम् उत्पाद्य सद्यः शङ्कास्पृष्टाः इव धूमोद्गारानुकृतिनिपुणाः त्वादृशाः जलमुचः जर्जराः जलमार्गः निष्पतन्ति।

प्रसङ्ग – यहाँ यक्ष मेघ से अलकापुरी में मेघों का वर्णन करता है।

अनुवाद – जिस अलकापुरी के सात मंजिलों वाले भवनों के ऊपर के भागों में वायु द्वारा ले जाये गये, चित्रों में जल कणों से दोष को उत्पन्न करके, शीघ्र ही भय से स्पर्श किये गये, मानो धुएँ के निकलने का अनुकरण करने में निपुण तुम्हारे जैसे मेघ छिन्न-भिन्न होकर खिड़कियों में से निकल जाते हैं।

शब्दार्थ – सततगतिना – वायु द्वारा, नीताः – ले जाये गये, आलेख्यानाम् – चित्रों में, सलिलकणिकादोषम् – जल कणों से दोष को, उत्पाद्य – उत्पन्न करके, सद्यः – शीघ्र ही, शङ्कास्पृष्टा – भय से स्पर्श किये गये, धूमोद्गारानुक्रतिनिपुणाः – धुएँ के निकलने का अनुकरण करने में निपुण, त्वादृशाः – तुम्हारे जैसा, जलमुचः – मेघ, जालमार्गः – खिड़कियों में से, निष्पतन्ति – निकल जाते हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – नेत्रा – नी+तृच्। **सततगतिना –** सततं गतिर्यस्य सः सततगतिः (बहुव्रीहि) तेन। **यद्विमानाग्रभूमिः –** विशेषेण मीयन्ते यानि तानि विमानानि अग्रभूमिः (कर्मधा.) यस्य विमानानि (ष.त.) तेषाम् अग्रभूमयः (ष.त.) ताः। आलेख्यानाम् – आ+लिख्+ण्यत्। **सलिलकणिकादोषम् –** सलिलस्य– कणिकाः (ष.त.) ताभिः कृतः दोषः (मध्यमपदलोपी स.) तम्। **शङ्कास्पृष्टाः –** शङ्कया स्पृष्टाः (तृ.त.)। **जलमुचः –** जलं मुञ्चन्ति इति (उपपद

स.)। **जालमार्गः** – जालानां मार्गः (ष.त.)। **धूमोद्गारानुकृतिनिपुणाः** – धूमस्य उद्गारः (ष.त.) तस्य अनुकृतिः (ष.त.) तस्यां निपुणाः (स.त.)।

यत्र स्त्रीणां प्रियतमभुजोलिङ्गनोच्छ्वासिताना–

मङ्गग्लानिं सुरतजनितां तन्तुजालावलम्बाः।

त्वत्संरोधापगमविशदैश्चन्द्रपादैर्निशीथे

व्यालुम्पन्ति स्फुटजललवस्यन्दिनश्चन्द्रकान्ताः।।7।।

अन्वयः – यत्र निशीथे त्वत्संरोधापगमविशदैः चन्द्रपादैः स्फुटजललवस्यन्दिनः तन्तुजालावलम्बाः चन्द्रकान्ताः प्रियतमभुजोच्छ्वासितालिङ्गितानां स्त्रीणां सुरतजनिताम् अङ्गग्लानिं व्यालुम्पन्ति।

प्रसङ्ग – इस श्लोक में यक्ष मेघ से कहता है कि अलकापुरी में स्त्रियों को होने वाली रतिजन्य थकान चन्द्रकान्त मणियों से दूर होती है।

अनुवाद – जहाँ अलकापुरी में अर्ध रात्रि में तुम्हारी रुकावट के हट जाने से निर्मल चन्द्रमा की किरणों के सम्पर्क से स्वच्छ जलकण की बूंदों को टपकाने वाली झालरों में लटकती हुई चन्द्रकान्त मणियाँ, प्रियतमों की भुजाओं से ढीले पड़े आलिङ्गनों वाली स्त्रियों की रतिक्रीड़ा से उत्पन्न शारीरिक थकान को दूर कर देती हैं।

शब्दार्थ – निशीथे – अर्ध रात्रि में, त्वत्संरोधापगमविशदैः – तुम्हारे व्यधान के हट जाने से निर्मल, चन्द्रपादैः – चन्द्र किरणों से, स्फुटजललवस्यन्दिनः – स्वच्छ जलकण की बूंदों को टपकाने वाली, तन्तुजालावलम्बाः – झालरों में लटकती हुई, चन्द्रकान्ताः – चन्द्रकान्त मणियाँ, अङ्गग्लानिम् – शारीरिक थकान को, व्यालुम्पन्ति – दूर करती है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – प्रियतमभुजोच्छ्वासितालिहितानाम् – प्रियतमानां भुजाः (ष.त.) तैः उच्छ्वासितानि (तृ.त.) तादृशानि आलिङ्गितानि यासां ताः (बहु.) तासाम्। **अङ्गग्लानिम्** – अङ्गानां ग्लानिः ताम् (प.त.), **ग्लानिः** – ग्लै+क्तिन् (भावे)। **सुरतजनिताम्** – सुरतेन जनिता (तृ.त.) ताम्। **तन्तुजालावलम्बाः** – तन्तूनां जालम् (ष त.) तत् अवलम्बो येषां ते (बहु.), अवलम्ब – अव+लम्ब्+अच् (कर्तरि । **त्वत्संरोधापगमविशदैः** – तव संरोधः (ष.त.) तस्य अपगमः (ष.त.) तेन विशदाः तैः (तृ.त.)। **चन्द्रपादैः** – चन्द्रस्य पादाः (प.त.) तैः।

अक्षय्यान्तर्भवननिधयः प्रत्यहं रक्तकण्ठै–

रुद्गायद्भिर्धनपतियशः किन्नरैर्यत्र सार्धम्।

वैभ्राजाख्यं विबुधवनितावारमुख्यसहाया

बद्धालापा बहिरुपवनं कामिनो निर्विशन्ति।।8।।

अन्वयः – यत्र अक्षय्यान्तर्भवननिधयः विबुधवनितावारमुख्यासहायाः बद्धालापा कामिनः प्रत्यहं रक्तकण्ठैः धनपतियश उद्गायद्भिः किन्नरैः सार्धं वैभ्राजाख्यं बहिरुपवनं निर्विशन्ति।

प्रसङ्ग – इस श्लोक में पुनः यक्ष मेघ से कहता है कि अलकापुरी में कामुक जनों के द्वारा बाह्योद्यान का उपभोग किया जाता है।

अनुवाद – जहाँ अलकापुरी में भवनों में अगणित निधियाँ रखने वाले, अप्सरारूपी गणिकाओं को साथ लिये बातचीत में संलग्न कामुक जन प्रतिदिन मधुर स्वर वाले और कुबेर के यश को ऊँचे स्वर में गाने वाले किन्नरों के साथ वैभ्राज नामक बाह्य उद्यान का उपभोग करते हैं।

शब्दार्थ – अक्षय्यान्तर्भवननिधयः – भवनों में अगणित निधियाँ रखने वाले, विबुधवनितावारमुख्यासहायाः – अप्सरारूपी गणिकाओं को साथ लिये, बद्धालापाः – बातचीत में संलग्न, कामिनः – कामुकजन, प्रत्यहम् – प्रतिदिन, रक्तकण्ठैः – मधुर स्वर वाले, धनपतियशः – कुबेर के यश को, सार्धम् – साथ, वैभ्राजाख्यम् – वैभ्राज नामक, बहिरुपवनम् –बाह्य उद्यान का, निर्विशन्ति–उपभोग करते हैं, आनन्द लेते हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – रक्तकण्ठैः – रक्तः कण्ठः येषाम् (बहु.) तैः। उद्गायद्भिः – उत्+गै+शतृ। धनपतियशः – धनानां पतिः (ष.त.) तस्य यशस्तत् (ष.त.)। वैभाजाख्यम् – वैभ्राजम् इति आख्यम् (बहु.) तत् । बद्धालापाः – बद्धः आलाप येषाम् ते (बहुव्रीहि)। बहिरुपवनम् – बहिः उपवनम् (केवल स.)।

गत्युत्कम्पादलकपतितैर्यत्र मन्दारपुष्पैः,

पुत्रच्छेदैः, कनककमलैः कर्णविभ्रंशिभिश्च।

मुक्ताजालैः, स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैश्च हारै–

नैशो मार्गः सवितुरुदये सूच्यते कामिनीनाम्।।9।।

अन्वयः – यत्र कामिनीनां नैशः मार्गः सवितुः उदये गत्युत्कम्पात् अलकपतितैः मन्दारपुष्पे कर्णविभ्रंशिभिः पत्रच्छेदैः कनककमलैः च स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैः मुक्ताजालैः हारैः च सूच्यते।

प्रसङ्ग – यक्ष मेघ से कहता है कि अलकापुरी में अभिसारिकाओं के रात्रि के मार्ग को कैसे जानोंगे?

अनुवाद – अलकापुरी में अभिसरण करने वाली स्त्रियों का रात्रि का मार्ग, सूर्योदय पर चलने में हिलने के कारण बालों से गिरे हुए मन्दार के पुष्पों से, कान से गिरे हुए पत्तों के खण्डों से, स्वर्ण कमलों से, स्तन प्रदेश पर टूटे हुए धागों वाले मोतियों की लड़ों से और पुष्पमालाओं से सूचित हो जाता है।

शब्दार्थ – कामिनीनाम् – अभिसरण करने वाली स्त्रियों का, नैशः – रात्रि का, सवितुः – सूर्य के, गत्युत्कम्पात् – चलने में हिलने के कारण, अलकपतितैः – बालों से गिरे हुए, मन्दारपुष्पैः – मन्दार के फूलों से, कर्णविभ्रंशिभिः – कानों से गिरे हुए, पत्रच्छेदैः – पत्तों के खण्डों से, कनककमलैः – स्वर्णकमलों से, मुक्ताजालैः – मोतियों की लड़ों से, सूच्यते – सूचित हो जाता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – गत्युत्कम्पात् – गत्या उत्कम्पः (चलनम्) तस्मात् (तृ.त.) हेतौ पञ्चमी, **उत्कम्पः –** उद्+कम्प+घञ् (भावे)। **अलकपतितैः –** अलकेभ्यः पतितानि तैः (प.त.) मन्दारपुष्पैः। **मन्दारपुष्पैः –** मन्दाराणां पुष्पैः (ष.त.)। **पत्रच्छेदैः –** पत्राणां छेदाः तैः (ष.त.), छेदाः – छिद्+घञ्। **कनककमलैः –** कनकस्य कमलानि तैः (ष.त.)। **कर्णविभ्रंशिभिः** –कर्णेभ्यो विपश्यन्तीति (उप.त.) तैः। **मुक्ताजालैः –** मुक्तानां जालैः (ष.त.)। **छिन्नः –** छिद्+क्त। **नैशः –** निशा+अण्।

मत्वा देवं धनपतिसखं यत्र साक्षाद्वसन्तं,

प्रायश्चापं न वहति भयान्मन्मथः षट्पदज्यम्।

सभ्रूभङ्गप्रहितनयनैः कामिलक्ष्येष्वमोघैः

स्तस्यारम्भश्चतुरवनिताविभ्रमैरेव सिद्धः।।10।।

अन्वयः – यत्र मन्मथः धनपतिसखं देवं साक्षात् वसन्तं मत्वा भयात् षट्पदज्यं चापं प्रायः न वहति, तस्य आरम्भः सभ्रूभङ्गप्रहितनयनैः कामिलक्ष्येषु अमोघैः चतुरवनिताविभ्रमैः एव सिद्धः।

प्रसङ्ग – यहाँ यक्ष मेघ से कहता है कि अलकापुरी में स्त्रियों का भ्रूभङ्ग कामदेव के अस्त्रों के समान कार्य करता है।

अनुवाद – जहाँ अलकापुरी में कामदेव कुबेर के मित्र महादेव शिव को प्रत्यक्ष रूप में रहता हुआ जानकर भय के कारण भ्रमररूपी डोरी वाले धनुष को धारण नहीं करता है क्योंकि उसका कार्य टेढ़ी भौंह करके चलाये गये नेत्रों वाले, कामुक जनरूपी निशानों पर सफल चतुर स्त्रियों के हाव-भाव से ही बन जाता है।

शब्दार्थ – मन्मथः – कामदेव, धनपतिसखम् – कुबेर के मित्र को, देवम् – महादेव शिव को, षटपदज्यम् – भ्रमर रूपी डोरी वाले, चापम् – धनुष को, अमोघैः – सफल, चतुरवनिताविभ्रमैः – चतुर स्त्रियों के हाव-भाव से।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – धनपतिसखम् – धनानां पतिः (प.त.), तस्य सखा धनपतिसखः तम् (ष.त.)। **मन्मथ –** मनसः मथः (ष.त.), मन्+क्विप्, मथ+अच्। **षट्पदज्यम् –** षट् पदानि येषां ते (बहु.) ते ज्या यस्य तम् (बहु.)। **कामिलक्ष्येषु –** कामिन एव लक्ष्याणि ते (कर्मधारय)। **अमोघैः –** न मोघाः तैः (नञ् त.)।

वासश्चित्रं मधु नयनयोर्विभ्रमादेशदक्षं

पुष्पोद्भेदं सह किसलयैर्भूषणानां विकल्पान्।

लाक्षारागं चरणकमलभ्यासयोग्यं च यस्या–

मेकः सूते सकलमबलामण्डनं कल्पवृक्षः।।11।।

अन्वयः – यस्यां चित्रं वासः नयनयोः विभ्रमादेशदः मधु, किसलयैः सह पुष्पोद्भेदं भूषणानां विकल्पान् चरणकमलन्यासयोग्यं लाक्षारागं च सकलम् अबलामण्डनम् एकः कल्पवृक्षः सूते।

प्रसङ्ग – यक्ष मेघ से कहता है कि अलकापुरी में स्त्रियों के समस्त प्रसाधनों को कल्पवृक्ष प्रदान करता है।

अनुवाद – अलकापुरी में अनेक वर्णों के वस्त्रों को, नेत्रों को विलास सिखाने में समर्थ मदिरा को, नवपल्लवों के साथ पुष्पों के विकास को, अनेक प्रकार के आभूषणों को तथा कमलरूपी चरण के योग्य महावर आदि स्त्रियों की सम्पूर्ण प्रसाधन सामग्री को अकेला कल्पवृक्ष ही उपलब्ध कराता है।

शब्दार्थ – चित्रं वासः – अनेकरङ्गों से युक्त वस्त्रों को, विभ्रमादेशदक्षम् – विलास सिखाने में समर्थ, मधु – मदिरा को, किसलयैः सह – नव पल्लवों के साथ, पुष्पोद्भेदम् – पुष्पों के विकास को, चरणकमलन्यासयोग्यम् – चरणरूपी कमल के योग्य, लाक्षारागम् – महावर को, सकलम् – समस्त, अबलामण्डनम् – स्त्रियों की प्रसाधन सामग्री को, कल्पवृक्षः – कल्पवृक्ष, सूते – उपलब्ध कराता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – विभ्रमादेशदक्षम् – विभ्रमाणाम् आदेशः (ष.त.) तस्मिन् दक्षम् (स. त.)। **आदेशः** – आङ्+दिश्+घञ्। **पुष्पोभेदम्** – पुष्पाणाम् उद्भेदः (ष.त.) तम्, **उद्भेदः** – उद्+भिद्+घञ्। **लाक्षारागम्** – लाक्षारागः इव (उपमितकर्मधा.) तम्। **चरणकमलन्यासयोग्यम्** – चरणौ कमले इवेति चरणकमले (उपमितसमास) तयोः यासः (ष.त.) तस्मिन् योग्यः (स. त.) तम्। **अबलामण्डनम्** – अबलानाम् मण्डनम् (ष.त.)। **मण्डनम्** – मण्ड्+ल्युट् (करणे)।

तत्रागारं धनपतिगृहादुत्तरेणास्मदीयं

दूराल्लक्ष्यं सुरपतिधनुश्चारुणा तोरणेन।

यस्योपान्ते कृतकतनयः कान्तया वर्धितो मे

हस्तप्राप्यस्तवकनमितो बालमन्दारवृक्षः।।12।।

अन्वयः – तत्र धनपतिगृहाद् उत्तरेण अस्मदीयम् आगारं सुरपतिधनुश्चारुणा तोरणेन दूरात् लक्ष्यम्, यस्य उपान्ते मे कान्तया वर्धितः कृतकतनयः हस्तप्राप्यस्तवकनमितः बालमन्दारवृक्षः (अस्ति)।

प्रसङ्ग – यक्ष मेघ से अलकापुरी में स्थित अपने घर की पहचान बताता है।

अनुवाद – वहाँ अलकापुरी में कुबेर के महल से उत्तर की ओर हमारा घर, इन्द्रधनुष के समान सुन्दर बाह्य द्वार से दूर से ही दिखायी देने वाला है, जिसके पास में मेरी प्रियतमा द्वारा पाला गया, गोद लिया पुत्र, हाथों से प्राप्त करने योग्य गुच्छों द्वारा झुकाया गया छोटा-सा मन्दार का वृक्ष है।

शब्दार्थ – धनपतिगृहान् – कुबेर के महल से, उत्तरेण – उत्तर की ओर, अस्मदीयम् – हमारा, आगारम् – घर, सुरपतिधनुश्चारुणा – इन्द्रधनुष के समान सुन्दर, तोरणेन – बाह्य द्वार से, उपान्ते – समीप, कान्तया – प्रियतमा द्वारा, वर्धितः – पाला गया, कृतकतनयः – गोद लिया पुत्र, बालमन्दारवृक्षः – छोटा सा मन्दार का वृक्ष।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – धनपतिगृहान् – धनानां पतिः (ष.त.) तस्य गृहाः तान् (ष.त.)। **अस्मदीयम्** – अस्मद्+छ (ईय)। **लक्ष्यम्** – लक्ष्य+ण्यत्। **सुरपतिधनुश्चारुण** – सुराणां पतिः (ष.त.) तस्य धनुः (ष.त.) तद् इव चारु (उपमित कर्मधारय) तेन। कृतकतनयः – कृत एवं कृतकः कृतकश्चासौ तनयश्चेति कृतकतनयः (कर्मधा.)। कृतकः – कृत+कन्। **हस्तप्राप्यस्तबकनमितः** – हस्तेन प्राप्याः (तृ.त.) ते च स्तबकाः (कर्मधा.) तैः नमितः (तृ.त.)। **नमितः** – नम्+णिच्+क्त। **बालमन्दारवृक्षः** – मन्दारश्च असौ वृक्षः (कर्मधा.) बालश्च असौ मन्दारवृक्षः (कर्मधारय)।

वापी चास्मिन्मरकतशिलाबद्धसोपानमार्गा
हैमैश्छन्ना विकचकमलैः स्निग्धवैदूर्यनालैः।
यस्यास्तोये कृतवसतयो मानसं संनिकृष्टं
नाध्यास्यन्ति व्यपगतशुचस्त्वामपि प्रेक्ष्य हंसाः।।13।।

अन्वयः – अस्मिन् मरकतशिलाबद्धसोपानमार्गा स्निग्धवैदूर्यनालैः हैमैः विकचकमलैः छन्ना वापी च (अस्ति)। यस्याः तोये कृतवसतयः हंसाः त्वां प्रेक्ष्य अपि व्यपगतशुचः संनिकृष्टं मानसं न आध्यास्यन्ति।

प्रसङ्ग – यक्ष मेघ से घर के वर्णन में बावड़ी का वर्णन करता हुआ कहता है।

अनुवाद – इस (मेरे घर) में पन्ने की शिलाओं से बनी सीढ़ियों के मार्ग वाली, चिकने लहसुनिये रत्न के समान नाल वाले, स्वर्णमय, विकसित कमलों से ढकी हुई बावड़ी है, जिसके जल में निवास करने वाले, अतः नष्ट हुए दुःख वाले हंस तुम्हें देखकर भी समीपवर्ती मानसरोवर को जाने के लिए उत्कण्ठित नहीं होंगे।

शब्दार्थ – मरकतशिलाबद्धसोपानमार्गा – पन्ने की शिलाओं से बने हुए सीढ़ियों के मार्ग वाली, स्निग्धवैदूर्यनालैः – चिकने लहसुनिये रत्न के समान नाल वाले, हैमैः – स्वर्णमय, विकचकमलैः

– विकसित कमलों से, छनना – ढकी हुई, वापी – बावड़ी, तोये – जल में, कृतवसतयः – निवास करने वाले, व्यपगतशुचः – नष्ट हुए दुःख वाले, आध्यास्यन्ति – जाने के लिए उत्कण्ठित होंगे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – मरकतशिलाबद्धसोपानमार्गा – मरकतानां शिलाः (ष.त.) सोपानानां मार्गः (ष.त.) मरकतशिलाभिः बद्धः सोपानमार्गः यस्याः सा (बहु.)। **हैमैः –** हेमन्+अण्। **छन्ना** – छद्+क्त+टाप्। **विकचकमलैः –** विकचानि कमलानि तैः (कर्मधा.)। **स्निग्धवैदूर्यनालैः –** स्निग्धानि च तानि वैदूर्याणि (कर्मधा.) तानि इव नालानि येषां तैः (बहु.)। **कृतवसतयः –** कृता वसतिः यैः ते (बहु.)।

तस्यास्तीरे रचितशिखरः पेशलैरिन्द्रनीलैः

क्रीडाशैलः कनककदलीवेष्टनप्रेक्षणीयः।

मद्गेहिन्याः प्रिय इति सखे ! चेतसा कातरेण

प्रेक्ष्योपान्तस्फुरिततडितं त्वां तमेव स्मरामि।।14।।

अन्वयः – तस्याः तीरे पेशलैः इन्द्रनीलैः रचितशिखरः कनककदलीवेष्टनप्रेक्षणीयः क्रीडाशैलः (अस्ति)। सखे! उपान्तस्फुरिततडितं त्वां प्रेक्ष्य मद्गेहिन्याः प्रियः इति कातरेण चेतसा तमेव स्मरामि।

प्रसङ्ग – यक्ष मेघ को कहता है कि उसके घर की बावड़ी के किनारे क्रीड़ा पर्वत है।

अनुवाद – उस बावड़ी के किनारे पर सुन्दर इन्द्रनीलमणियों से निर्मित शिखरों वाला और सुनहरी केलियों की बाड़ के कारण दर्शनीय क्रीड़ा पर्वत है। हे मित्र! किनारों पर चमकती हुई बिजली वाले तुमको देखकर मेरी पत्नी का प्रिय है– इस कारण व्याकुल चित्त से उसी का (क्रीड़ा पर्वत का) स्मरण कर रहा है।

शब्दार्थ – तस्याः – उस (बावड़ी) के, तीरे – किनारे पर, पेशलैः – सुन्दर, इन्द्रनीलैः – इन्द्र नीलमणियों से, रचितशिखरः – निर्मित शिखरों वाला, कनककदलीवेष्टनप्रेक्षणीयः – सुनहरी केलियों की बाड़ के कारण दर्शनीय, उपान्तस्फुरिततडितम् – किनारों पर चमकती हुई बिजली वाला, प्रेक्ष्य – देखकर, कातरेण – व्याकुल, चेतसा – चित्त से, स्मरामि – स्मरण करता हूँ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – रचितशिखरः – रचितानि शिखराणि यस्य सः (बहु.)। **क्रीडाशैलः –** क्रीडायाः शैलः (ष.त.)। **कनककदलीवेष्टनप्रेक्षणीयः –** कनकस्य कदल्याः (ष.त.) तासां वेष्टनं (ष.त.) तेन प्रेक्षणीयः (तृ.त.)। **प्रेक्ष्य –** प्र+ईक्ष+ल्यप्।

रक्ताशोकश्चलकिसलयः केसरश्चात्र कान्तः

प्रत्यासन्नौ कुरबकवृतेर्माधवीमण्डपस्य।

एकः सख्यास्तव सह मया वामपादाभिलाषी

काङ्क्षत्यन्यो वदनमदिरां दोहदच्छद्मनास्याः।।15।।

अन्वयः – अत्र कुरबकवृतेः माधवीमण्डपस्य प्रत्यासन्नौ चलकिसलयः रक्ताशोकः कान्तः केसरः च (स्तः)। एकः मया सह तव सख्याः वामपादाभिलाषी, अन्यः दोहदच्छद्मना अस्याः वदनमदिरां काङ्क्षति।

प्रसङ्ग – यक्ष मेघ से कहता है कि क्रीड़ा शैल पर स्थित वृक्षों को देखना चाहिए।

अनुवाद – यहाँ क्रीड़ाशैल पर कुरबक की बाड़ वाले माधवी लता के कुञ्ज के अत्यन्त पास में हिलते हुए नवीन कोपलों वाला अशोक एवं सुन्दर बकुल मौलसरी का वृक्ष है। उनमें से एक मेरे साथ तुम्हारी सखी के (भाभी के) बायें पैर के प्रहार का इच्छुक है और दूसरा बकुल का वृक्ष दोहद के बहाने से उसके मुख की मदिरा को चाहता है।

शब्दार्थ – कुरबकवृतेः – कुरबक की बाड़ वाले, माधवीमण्डपस्य – माधवीलता के कुञ्ज के, प्रत्यासन्नौ – अत्यन्त पास में, चलकिसलयः – हिलते हुए नव कोपलों वाला, रक्ताशोकः – लाल अशोक का वृक्ष, कान्तः – सुन्दर, केसरः – बकुल ,वामपादाभिलाषी – बायें पैर (के प्रहार) का इच्छुक, दोहदच्छद्मना – दोहद के बहाने से।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – रक्ताशोकः – रक्तश्च असौ अशोकः (कर्मधा.)। **चलकिसलयः** – चलानि किसलयानि यस्य सः (बहु.)। **कान्तः** – कम्+क्त। **प्रत्यासन्नौ** – प्रति+आ+सद्+क्त (प्र. द्विव.)। **कुरबकवृतेः** – कुरबका एव वृतिः यस्य तस्य (बहु.)। **माधवीमण्डपस्य** – माधव्याः मण्डपस्य (ष.त.) मधौ भवः माधव्यः। **वामपादाभिलाषी** – वामश्च असौ पादः (कर्मधा.) तम् अभिलषति इति (उपपदत.)।

तन्मध्ये च स्फटिकफलका काञ्चनी वासयष्टि–

र्मूले बद्धा मणिभिरनतिप्रौढवंशप्रकाशैः।

तालैः शिञ्जावलयसुभगैर्नर्तितः कान्तया मे

यामध्यास्ते दिवसविगमे नीलकण्ठः सुहृद्वः।।16।।

अन्वयः – च तन्मध्ये अनतिप्रौढवंशप्रकाशैः मणिभिः मूले बद्धा स्फटिकफलका काञ्चनी वासयष्टिः (अस्ति)। मे कान्तया शिञ्जावलयसुभगैः तालैः नर्तितः वः सुहृत् नीलकण्ठः दिवसविगमे याम् अध्यास्ते।

प्रसङ्ग – यक्ष मेघ से वृक्षों के मध्य पक्षियों के बैठने के स्थान का वर्णन करता है।

अनुवाद – उन रक्ताशोक और बकुल दोंनो वृक्षों के बीच में नवीन बाँस के समानकान्ति वाली मणियों से जड़ में बँधी हुई एवं स्फटिक मणि के तख्ते वाली रहने की यष्टि है। मेरी प्रिया

द्वारा झन-झन बजते हुए कङ्गनों से मनोहर तालियों से नचाया गया तुम्हारा मित्र मयूर दिन के बीतने पर जिस पर बैठा करता है।

शब्दार्थ – तन्मध्ये – उन रक्ताशोक और बकुल के बीच में, मूले – जड़ में, अनतिप्रौढवंशप्रकाशैः – नवीन बाँस के समान कान्ति वाली, स्फटिकफलका – स्फटिक मणि के तख्ते वाली, काञ्चनी – स्वर्ण की, वासयष्टिः – रहने की यष्टि, तालैः – तालियों से, नर्तितः – नचाया गया, नीलकण्ठः – मयूर, दिवसविगमे – दिन के बीतने पर, अध्यास्ते – बैठा करता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – तन्मध्ये – तेषाम् मध्ये (ष.त.)। **स्फटिकफलका** – स्फटिकं फलकं यस्याः सा (बहु.)। **वासयष्टिः** – वासस्य वासाय वा यष्टिः (ष., च. त.)। **अनतिप्रौढर्यशप्रकाशैः** – न अतिप्रौढाः अनतिप्रौढाः (नञ् त.) अनतिप्रौढाश्च ते वंशाः (कर्मधा.) तेषां प्रकाश इव प्रकाशो येषां तैः (बहु.), प्र+वह्+क्त। **शिञ्जावलयसुभगैः** – शिञ्जाप्रधानानि वलयानि शिञ्जावलयानि (मध्यम पदलोपी त.) शिञ्जावलयैः सुभगाः तैः (तृ.त.)।

एभिः साधो! हृदयनिहितैर्लक्षणैर्लक्षयेथा

द्वारोपान्ते लिखितवपुषौ शङ्खपद्मौ च दृष्ट्वा।

क्षामच्छायां भवनमधुना मद्वियोगेन नूनं

सूर्यापाये न खलु कमलं पुष्यति स्वामभिख्याम्।।17।।

अन्वयः – साधो! हृदयनिहितैः एभिः लक्षणैः द्वारोपान्ते लिखितवपुषौ शङ्खपद्मौ च दृष्ट्वा नूनम् अधुना मद्वियोगेन क्षामच्छायं भवनं लक्षयेथाः सूर्यापाये कमलं स्वाम् अभिख्यां न पुष्यति खलु।

प्रसङ्ग – यक्ष मेघ से कहता है कि पूर्वोक्त बताये गये चिह्नों के आधार पर तुम कैसे मेरे घर की पहचान करोगे?

अनुवाद – हे निपुण! हृदय में रखे गये इन लक्षणों से तथा द्वार के पार्श्वों में चित्रित आकृति वाले शङ्ख एवं पद्म नामक निधियों को देखकर इस समय मेरे विरह से निश्चित ही क्षीण शोभा वाले मेरे भवन को तुम पहचान लोगे क्योंकि सूर्यास्त हो जाने पर कमल अपनी शोभा को धारण नहीं करता है।

शब्दार्थ – साधो – निपुण, हृदयनिहितैः – हृदय में रखे गये, एभिः – पूर्व वर्णित, लक्षणैः –लक्षणों से, पहचानों से, द्वारोपान्ते – द्वार के दोंनो किनारों पर, लिखितवपुषौ – चित्रित आकृति वाले, शङ्खपद्मौ – शङ्ख और पद्म को, मद्वियोगेन – मेरे विरह से, लक्षयेथाः – पहचान लोगे, सूर्यापाये – सूर्य के चले जाने पर, पुष्यति – पुष्ट करता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – हृदयनिहितैः – हृदये निहितानि तैः (स.त.)। **निहितानि** – नि+धा+क्त। **द्वारोपान्ते** – द्वारस्य उपान्ते (ष.त.)। **लिखितवपुषौ** – लिखिते वपुषी ययोः तौ (बहुव्रीहि)। **शङ्खपद्म** – शङ्खश्च पद्मश्च (द्वन्द्व)। **दृष्ट्वा** – दृश्+क्त्वा । **क्षामच्छायम्** – क्षामा छाया यस्य तत् (ब.व्री.)। **मद्वियोगेन** – मम वियोगेन (प.त.)। **सूर्यापाये** – सूर्यस्य अपाये (ष.त.)।

गत्वा सद्यः कलभतनुतां शीघ्रसंपातहेतोः

क्रीडाशैले प्रथमकथिते रम्यसानौ निषण्णः।

अर्हस्यन्तर्भवनपतितां कर्तुमल्पाल्पभासं

खद्योतालीविलसितनिभां विद्युदुन्मेषदृष्टिम्।।18।।

अन्वयः – शीघ्रसंपातहेतोः सद्यः कलभतनुतां गत्वा प्रथमकथिते रम्यसानौ क्रीडाशैले निषण्णः (त्वम्) अल्पाल्पभासं खद्योतालीविलसितनिभां विद्युन्मेषदृष्टिम् अन्तर्भवनपतितां कर्तुम् अर्हसि।

प्रसङ्ग – यक्ष मेघ से प्रार्थना करता है कि वह उसके घर पहुँचकर बिजली की चमक रूपी दृष्टि से देखें।

अनुवाद – हे मेघ! शीघ्र प्रवेश करने के लिये तत्काल हाथी के बच्चे के समान छोटे आकार को प्राप्त कर पहले कहे गये, सुन्दर शिखर वाले क्रीड़ा पर्वत पर बैठे हुए तुम मन्द-मन्द प्रकाश वाली जुगनुओं की पङ्क्ति की चमक से समानता रखने वाली बिजली की चमक रूपी दृष्टि को घर के अन्दर डालने में समर्थ होना।

शब्दार्थ – शीघ्रसंपातहेतोः – शीघ्र प्रवेश करने के लिए, सद्यः – तत्काल, कलभतनुताम् – हाथी के बच्चे के समान छोटे आकार को, गत्वा – प्राप्त करके, प्रथमकथिते – पहले को गये, रम्यसानौ – सुन्दर शिखर वाले, क्रीडाशैले – क्रीड़ा पर्वत पर, निषण्णः – बैठे हुए, अल्पाल्पभासम् – मन्द-मन्द प्रकाश वाली, खद्योतालीविलसितनिभाम् – जुगनुओं की पङ्क्ति की चमक से समानता रखने वाली, अर्हसि – समर्थ हो।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – कलभतनुताम् – कलभस्य तनुताम् (ष.त.) अथवा कलभस्य तनुः इव, तनुः यस्य सः (बव्री.) तस्य भावः (तद्धित), ताम्। शीघ्रसम्पातहेतोः – शीघ्रं सम्पातः (केवल समास) तस्य हेतोः (ष.त.), **सम्पात** – सम्+पत्+घञ्। **क्रीडाशैले** – क्रीडायाः शैलेः (ष.त.) तस्मिन्। प्रथमकथिते – प्रथमे कथिते (केवल स.)। **रम्यसानौ** – रम्याणि सानूनि यस्य तस्मिन् (बहु.)। **निषण्णः** – नि+सद्+क्त। **अन्तर्भवनपतिताम्** – भवनस्य अन्तः (अव्ययीभाव) अन्तर्भवने पतिताम् (स त.)। **कर्तुम्** – कृ+तुमुन्। **अल्पाल्पभासम्** – अल्पा च असौ अल्पा (कर्मधा.), अल्पाल्पा भाः यस्याः ताम् (बहु.)।

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी

मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः।

श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां

या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्यैव धातुः।।19।।

अन्वयः – तत्र तन्वी, श्यामा, शिखरिदशना, पक्वबिम्बाधरोष्ठी, मध्ये क्षामा, चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः, श्रोणीभारात् अलसगमना, स्तनाभ्यां स्तोकनम्रा, युवतिविषये धातुः आद्या सृष्टिः इव या स्यात्।

प्रसङ्ग – इस काव्यांश में यक्ष मेघ से अपनी प्रिया के रूप का वर्णन करता है।

अनुवाद – वहाँ मेरे घर में कृश काय वाली, नवयौवन वाली, नुकीले दाँत वाली, पके हुए बिम्बफल के समान नीचे के ओंठ वाली, पतली कमर वाली, डरी हुई हरिणी के समान दृष्टि वाली, गहरी नाभि वाली, नितम्बों के भार के कारण मन्दगति से चलने वाली, स्तनों के कारण कुछ झुकी हुई, युवतियों के विषय में ब्रह्मा की मानो सर्वप्रथम रचना हो।

शब्दार्थ – तन्वी – पतले शरीर वाली, श्यामा – नवयौवन वाली, शिखरिदशना – नुकीले दाँतों वाली, पक्वबिम्बाधरोष्ठी – पके हुए बिम्बफल के समान नीचे के ओंठ वाली, मध्ये क्षामा – पतली कमर वाली, चकितहरिणीप्रेक्षणा – डरी हुई हरिणी के सदृश दृष्टि वाली, निम्ननाभिः – गहरी नाभि वाली, युवतिविषये – युवतियों के विषय में, धातुः – विधाता ब्रह्मा की, आद्या सृष्टिः – सर्वप्रथम रचना, स्यात् – हो।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – तन्वी – तनु+ङीष्। **पक्वबिम्बाधरोष्ठी** – पक्वम् च तत् बिम्बम् (कर्मधा.) अधरश्च असौ ओष्ठः (कर्मधा.), पक्वं बिम्बम् इव अधरौष्ठः यस्याः सा (बहु.)। **चकितहरिणीप्रेक्षणा** – चकिता च असौ हरिणी (कर्मधा.) तस्याः प्रेक्षणे इव प्रेक्षणे यस्याः (बहु.)। **प्रेक्षण** – प्र+ईक्ष्+ल्युट्। **निम्ननाभिः** – निम्ना नाभिः यस्याः सा (बहु.)। **श्रोणीभारात्** – श्रोण्याः भारः तस्मात् (ष. त.), अलसगमना – अलसं गमनं यस्याः सा (बहु.) । स्तोकनम्रा – स्तोकं यथा स्यात् तथा नम्रा (केवलस.)। युवतिविषये – युवतीनां विषये (ष.त.)। सृष्टि–सृज्+क्तिन्।

तां जानीथाः परिमितकथां जीवितं मे द्वितीयं

दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिवैकाम्।

गाढोत्कण्ठां गुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु बालां

जातां मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनीं वान्यरूपाम्।।20।।

अन्वयः – मयि सहचरे दूरीभूते चक्रवाकीम् इव एकां परिमितकथां तां मे द्वितीयं जीवितं जानीथाः। गुरुषु एषु दिवसेषु गच्छत्सु गाढोत्कण्ठां बालां शिशिरमथितां पद्मिनी वा अन्यरूपां जातां मन्ये।

प्रसङ्ग – इस श्लोक में यक्ष मेघ से अपनी प्रिया के विरह का वर्णन करता है।

अनुवाद – मुझ प्रियतम के दूर स्थित होने पर चकवी के समान अकेली, कम बोल वाली उसको मेरा दूसरा प्राण समझना। (विरह से) लम्बे इन दिनों के बीतने पर गाढ़ी उत्कण्ठा वाली उस युवती को पाले से पीड़ित कमलिनी के समान अन्य रूप वाली हुई मानता हूँ।

शब्दार्थ – सहचरे – साथी के, दूरीभूते – दूर स्थित होने पर, चक्रवाकीम् इव – चकवी सदृश, एकाम् – अकेली, परिमितकथाम् – कम बोलने वाली, जीवितम् – प्राण, गुरुषु – लम्बे, गच्छत्सु – बीतने पर, गाढोत्कण्ठाम् – गाढ़ी उत्कण्ठा वाली, बालाम् – युवती को, शिशिरमथिताम् – पाले से पीड़ित, पद्मिनीम् – कमलिनी, अन्यरूपाम् – अन्य रूप वाली, मन्ये–मानता हूँ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – जानीथाः – ज्ञा, विधि. म.पु.एकव.। **परिमितकथाम्** – परिमिता कथा यस्याः ताम् (बहु.), **परिमित** – परि+मा+क्त+टाप्। **दूरीभूते** – अदूरः दूरः भूतः तस्मिन् (गति त.), दूर+च्वि+भू+क्त (भावे सप्तमी)। **सहचरे** – सह चरतीति तस्मिन् (उप.त.)। **गाढोत्कण्ठाम्** – गाढा उत्कण्ठा यस्याः ताम् (बहु.)। **गच्छत्सु** – गम्+शतृ, स. बहुव.।

नूनं तस्याः प्रबलरुदितोच्छूननेत्रं प्रियाया

निःश्वासानामशिशिरतया भिन्नवर्णाधरोष्ठम्।

हस्तन्यस्तं मुखमसकलव्यक्ति लम्बालकत्वा–

दिन्दोर्दैन्यं त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेर्बिभर्ति।।21।।

अन्वयः – प्रबलरुदितोच्छूननेत्रं निःश्वासानाम् अशिशिरतया भिन्नवर्णाधरोष्ठं हस्तन्यस्तं लम्बालकत्वात् असकलव्यक्ति तस्याः प्रियायाः मुखं त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेः इन्दोः दैन्यं बिभर्ति नूनम्।

प्रसङ्ग – इस काव्यांश में यक्ष मेघ से अपनी प्रिया की विरहावस्था का वर्णन करता है।

अनुवाद – अधिक रोने से सूजे हुए नेत्रों वाला, लम्बे-लम्बे साँसों की गर्मी से कान्तिहीन निचले ओंठ वाला, हाथ पर रखा हुआ, लटकते हुए बालों के कारण सम्पूर्ण न दिखने वाला, मेरी प्रिया का मुख तुम्हारे आवरण से क्षीण कान्ति वाले चन्द्रमा की विवर्णता को निश्चित रूप से धारण कर रहा होगा।

शब्दार्थ – प्रबलरुदितोच्छूननेत्रम् – अधिक रोने से सूजे हुए नेत्रों वाला, निःश्वासानाम् – लम्बे-लम्बे साँसों की, अशिशिरतया – गर्मी से, भिन्नवर्णाधरोष्ठम् – कान्तिहीन निचले ओंठ वाला, हस्तन्यस्तम् – हाथ पर रखा हुआ, लम्बालकत्वात् – लटकते हुए लम्बे बालों के कारण, असकलव्यक्ति – सम्पूर्ण न दिखने वाला, त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेः – तुम्हारे आवरण से (ढाँक देने से) क्षीण कान्ति वाले, दैन्यम् – विवर्णता को, बिभर्ति – धारण कर रहा है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – प्रबलरुदितोच्छूननेत्रम् – प्रबलं च तत् रुदितम् (कर्मधा.) तेन उन्छूने नेत्रे यस्य तत् (बहु.), **रुदितः** – रुद्+क्त। **अशिशिरेतया –** न शिशिराः (नञ् त.) तेषाम् भावः तत्ता तया (तद्धित)। **भिन्नवर्णाधरोष्ठम् –** भिन्नः वर्णः यस्य सः (बहु.) अधरश्च असौ ओष्ठः (कर्मधा.) भिन्नवर्णः अधरोष्ठः यस्य तत् (बहु.)। **हस्तन्यस्तम् –** हस्ते न्यस्तम् (स. त.), **न्यस्तम् –** नि+अस्+क्त। **असकलव्यक्ति –**न सकला (नञ् त.) असकला व्यक्ति यस्य तत् (बहु.)। **लम्बालकत्वात् –** लम्बाः अलकाः यस्मिन् तत् (बहु.) तस्य भावः तस्मात्।

आलोके ते निपतति पुरा सा बलिव्याकुला वा

मत्सादृश्यं विरहतनु वा भावगम्यं लिखन्ती।

पृच्छन्ती वा मधुरवचनां सारिकां पञ्जरस्थां

कच्चिद्भर्तुः स्मरसि रसिके! त्वं हि तस्य प्रियेति।।22।।

अन्वयः – सा बलिव्याकुला वा, विरहतनु भावगम्यं मत्सादृश्यं लिखन्ती वा, मधुरवचनां पञ्जरस्थां सारिकां रसिके भर्तुः स्मरसि कच्चित् हि त्वं तस्य प्रिया इति पृच्छन्ती वा ते आलोके पुरा निपतति।

प्रसङ्ग – इस श्लोक में यक्ष मेघ से अपनी प्रिया यक्षिणी की विरहावस्था का वर्णन करता है।

अनुवाद – वह मेरी प्रिया पूजा में लगी हुई या विरह से दुबले, तथा कल्पना से ही जाने गये मेरे आकार को चित्रित करती हुई या मीठा बोलने वाली पिंजरे में बन्द मैना से– हे रसिके! क्या तुझे कभी स्वामी की याद आती है, क्योंकि तू उनकी प्यारी है या ऐसा पूछते हुई मेरी प्रिया आपकी दृष्टि में शीघ्र पड़ेगी।

शब्दार्थ – बलिव्याकुला – पूजा में लगी हुई, विरहतनु – विरह से दुबले, भावगम्यम् – कल्पना से ही जाने गये, लिखन्ती – चित्रित करती हुई, मधुरवचनाम् – मीठा बोलने वाली, पञ्जरस्था – पिंजरे में बन्द, रसिके – रसीली, आलोके – दृष्टि में, पुरा – शीघ्र, निपतति – पड़ेगी (दिखायी देंगी)।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – आलोके – आ+लोक्+घञ् (भावे स.)। **निपतति –**नि+पत्, लट् प्र. पु.एकव.। **बलिव्याकुला –** बलिषु व्याकुला (स.त.)। **विरहतनु –** विरहेण तनु (तृ.त.)। मत्सादृ श्यम् – मम सादृश्यम् तत् (ष.त.)। **भावगम्यम् –** भावेन गम्यम् (तृ.त.), **गम्यम् –** गम्+यत्। **लिखन्ती –** लिख्+शतृ+ङीप्, प्र.एकव.।

उत्सङ्गे वा मलिनवसने सौम्य! निक्षिप्य वीणां

मद्गोत्राङ्कं विरचितपदं गेयमुद्गातुकामा।

तन्त्रीमार्द्रां नयनसलिलैः सारयित्वा कथञ्चिद्

भूयो भूयः स्वयमपि कृतां मूर्च्छनां विस्मरन्ती।।23।।

अन्वयः – सौम्य! मलिनवसने उत्सङ्गे वीणां निक्षिप्य मद्गोत्राङ्कं विरचितपदं गेयम् उद्गातुकामा नयनसलिलैः आद्रा तन्त्रीं कथञ्चित् सारयित्वा भूयः भूयः स्वयं कृताम् अपि मूर्च्छनाम् विस्मरन्ती वा।

प्रसङ्ग – इस काव्यांश में यक्ष मेघ से अपनी प्रिया की विरहावस्था के विषय में कहता है।

अनुवाद – हे सौम्य (मेघ)! मैले वस्त्रों वाली गोद में वीणा को रखकर मेरे नाम के चिह्न वाले और बनाये हुए पदों वाले गीत को उच्च स्वर में गाने की इच्छुक, आँसुओं से गीले हुए तार को किसी प्रकार पोंछकर बार-बार स्वयं की भी मूर्च्छना को भूलती हुई (मेरी प्रिया तेरी दृष्टि में शीघ्र पड़ेगी)।

शब्दार्थ – मलिनवसने – मैले वस्त्रों वाली, उत्सङ्गे – गोद में, मद्गोत्राङ्कम् – मेरे नाम के चिह्न वाले, गेयम् – गीत को, उद्गातुकामा – उच्च स्वर में गाने की इच्छुक, नयनसलिलैः – आँसुओं से, तन्त्रीम् – वीणा के तार को, सारयित्वा – पोंछकर, विस्मरन्ती – भूलती हुई।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – मलिनवसने – मलिनं वसनं यस्मिन् सः तस्मिन् (बहु.)। **निक्षिप्य –** नि+क्षिप्+ल्यप्। **मद्गोत्राङ्कम् –** मम गोत्रम् (ष.त.), तदेव अङ्कं यस्मिन् तत् (बहु.)। **विरचितपदम् –** विरचितानि पदानि यस्य तत् (बहु.)। उद्गातुकामा – उद्गातुम् कामः यस्याः सा (बहु.), **उद्गातुम् –** उद्+गे+तुमुन्। **नयनसलिलैः –** नयनयोः सलिलैः (ष.त.)।

शेषान्मासान्विरहदिवसस्थापितस्यावधेर्वा

विन्यस्यन्ती भुवि गणनया देहलीदत्तपुष्पैः।

सम्भोगं वा हृदयनिहितारम्भमास्वादयन्ती,

प्रायेणैते रमणविरहेष्वङ्गनानां विनोदाः।।24।।

अन्वयः – विरहदिवसस्थापितस्य अवधेः शेषान् मासान् देहलीदत्तपुष्पैः गणनया भुवि विन्यस्यन्ती वा, हृदयनिहितारम्भं संभोगम् आस्वादयन्ती वा (ते आलोके पुरा निपतति)। प्रायेण अङ्गनानां रमणविरहेषु एते विनोदाः (भवन्ति)।

प्रसङ्ग – इस श्लोक में यक्षिणी की विरहावस्था का वर्णन किया गया है।

अनुवाद – अथवा, विरह के दिनों से निश्चित की हुई शाप की अवधि के शेष रहे महीनों को देहली पर रखे गये पुष्पों के द्वारा गिनने से पृथ्वी पर रखती हुई अथवा मनोकल्पना के द्वारा आरम्भ किये गये संभोग का आस्वादन करती हुई वह मेरी प्रिया तेरी दृष्टि में शीघ्र पड़ेगी। प्रिय स्त्रियों के प्रियतमों के वियोग के दिनों में ये ही मन बहलाने के उपाय होते हैं।

शब्दार्थ – विरहदिवसस्थापितस्य – विरह के दिन से निश्चित की गयी, देहलीदत्तपुष्पैः – देहली पर रखे गये पुष्पों के द्वारा, विन्यस्यन्ती – रखती हुई, हृदयनिहितारम्भम् – मन में कल्पना के द्वारा आरम्भ किये गये, आस्वादयन्ती – आस्वादन करती हुई, रमणविरहेषु – प्रियतमों के वियोग के दिनों में, विनोदाः – मन बहलाने के उपाय।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – विरहदिवसस्थापितस्य – विरहस्य दिवसः (ष.त.) तस्मात् स्थापितस्य (प.त.)। **अवधेः** – अव+धा+कि, ष. एकव.। **विन्यस्यन्ती** – वि, नि+अस्+शतृ+ङीप् प्र.एकव.। **देहलीदत्तपुष्पैः** – देहल्यां दत्तानि (स.त.) तानि च पुष्पाणि तैः (कर्मधा.)। **हृदयनिहितारम्भम्** – हृदये निहितः (स.त.) तादृशः आरम्भः यस्य तम् (बहु.)।

19.3 सारांश

मेघदूत महाकवि कालिदास की कविताकान्त उपाधि का एक स्पष्ट प्रमाण है। महाकवि ने काव्य को कितने सरल शब्दों में लिखकर प्रेमाभिव्यक्ति के व्यापक अर्थों और भावों को प्रकाशित किया है। यह उत्तम काव्य है, क्योंकि सहृदय पाठक पढ़ते हुए अपने भाव और अर्थ का अनुभव करने लगता है। कालिदास की रचनाओं में मेघदूत को अत्यन्त महत्त्व प्राप्त है। वास्तव में, यह प्रेम से आर्द्र एवं कातर हृदय की मधुर उद्वेजनाओं का मनोरम कोष है।

आप जानते हैं कि इस काव्य के दो खंड हैं – पूर्वमेघ और उत्तरमेघ। पूर्वमेघ में पर्वत, कानन, नगर, सरिता इत्यादि के वर्णन में दृश्य-वैविध्य का संमोहन उपलब्ध है जो प्रबन्ध का एक आवश्यक अंग है। इस खण्ड का अध्ययन आप पूर्व दो इकाईयों में कर चुके हैं। आपने पढ़ा होगा कि यक्ष किस प्रकार कभी सीधे और कभी तिरछे मार्ग को कहता है और प्रत्येक गंतव्य का वैशिष्ट्य और प्रयोजन भी बताता है। मार्ग के प्रकाशन के उपरान्त महाकवि उत्तरमेघ में यक्ष द्वारा प्रेषणीय संदेश को अभिव्यक्त करता है। निश्चित ही यह संदेश यक्ष की हृदय-वेदना और उत्कटता को अभिव्यंजित करता है। मेघ को उस वातावरण में जाना है और यक्षप्रिया को उसके व्याकुल प्रेमी की बातें सुनानी हैं। इस खण्डकाव्य में एक ओर अलका की समृद्धि और विलास वर्णित है तो दूसरी ओर यक्ष के हृदय में व्याप्त पूर्व-अनुभूतियों का मादक वातावरण। सब मिलाकर मेघदूत चिरन्तन मानव-हृदय की व्याकुल वेदना को प्रत्यक्ष कराता है। उसमें कहीं भी पुरानापन नहीं है, वह सनातन है।

19.4 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. उपाध्याय, भागवत शरण. मेघदूत कालिदास. दिल्ली : हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड. जी. टी. रोड, शाहदरा. वर्ष अप्रकाशित।

2. तिवारी, रमाशङ्कर. महाकवि कालिदास. वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन. 1961।

3. शास्त्री, प. मोहनदेवपन्त, डॉ संसारचन्द्र– मेघदूतम, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1996।

4. शास्त्री डॉ दयाशंकर– मेघदूतम्, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी 2014।

19.5 अभ्यास प्रश्न

1. अलकापुरी के वैभव को अपने शब्दों में व्यक्त कीजिए।
2. **'नीवीबन्धोच्छ्वसितशिथिलं यत्र बिम्बाधराणां'** श्लोक की व्याख्या कीजिए।
3. **'तां जानीथाः परिमितकथां जीवितं मे द्वितीयं'** श्लोक की व्याख्या कीजिए।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 20 उत्तरमेघ – श्लोक 25-52

इकाई की रूपरेखा

20.0 उद्देश्य

20.1 प्रस्तावना

20.2 उत्तरमेघ – श्लोक 25-52

20.3 सारांश

20.4 कुछ उपयोगी पुस्तकें

20.5 अभ्यास प्रश्न

20.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- महाकवि कालिदास की प्रेम की विरह अभिव्यञ्जना का अवबोध कर सकेंगे।
- शृङ्गार के विप्रलम्भ रस को उदाहरणों के साथ समझ सकेंगे।
- श्लोकों को अन्वय, प्रसङ्ग, शब्दार्थ आदि के माध्यम से समझ सकेंगे।
- श्लोकों में आये नूतन पदों की व्याकरणात्मक प्रकृति और प्रत्यय से परिचित हो सकेंगे।

20.1 प्रस्तावना

डा. राधावल्लभ त्रिपाठी ने मेघदूत : काव्यविधा के प्रश्न नामक आलेख में लिखा है कि मेघदूत कविकुलगुरु कालिदास की आकार में सबसे छोटी रचना है, किन्तु प्रतिभा के नवोन्मेष की दृष्टि से उसका गुरुत्व सर्वमान्य रहा है। मेघदूत में कालिदास ने अपने समय तक की सर्वथा अछूती परिकल्पना प्रस्तुत की थी, इसलिये छोटे से काव्य की विधा का निर्णय कोई सरल कार्य नहीं था। प्रेम विश्लेषण में महाकवि कालिदास का गीतिकाव्य मेघदूत का स्थान अद्वितीय है। मनुष्य जीवन में प्रेम की सहज अभिव्यक्ति भी कैसे उत्कट हो जाती है? इसका भावमयी प्रतिबिम्ब मेघदूत में दिखायी देता है। निश्चित यही कविताकान्त महाकवि का प्रयोजन है।

निश्चित ही मेघदूत संस्कृत साहित्य की अनुपम एवं अमोघ कृति है। ऐसी कृति जिसने सर्वदा सहृदय काव्यप्रेमियों के लिए रसास्वाद हेतु सरस और सरल आधार प्रदान किया है। प्रस्तुत इकाई में उत्तरमेघ के अन्तिम 30 काव्यांशों की व्याख्या की गई है। इन काव्यांशों में प्रधानतया यक्ष-यक्षिणी का विरह अभिव्यञ्जित हुआ है। आप इस इकाई को पढ़कर जानेंगे कि उत्कट

प्रेम और वियोगजन्य अवस्था में मानवीय संवेदना और अभिव्यक्ति को किस रीति से महाकवि ने प्रकाशित किया है।

20.2 उत्तरमेघ – श्लोक 25-52

इकाई के इस अंश में मेघदूतम् खण्डकाव्य के श्लोक संख्या 25-52 तक के काव्यांशों की व्याख्या अन्वय, प्रसङ्ग, अनुवाद, शब्दार्थ और व्याकरणात्मक टिप्पणी का अध्ययन करेंगे।

सव्यापारामहनि न तथा पीडयेन्मद्वियोगः

शङ्के रात्रौ गुरुतरशुचं निर्विनोदां सखीं ते।

मत्सन्देशः सुखयितुमलं पश्य साध्वीं निशीथे

तामुन्निद्रामवनिशयनां सौधवातायनस्थः।।25।।

अन्वयः – अहनि सव्यापारां ते सखीं विप्रयोगः तथा न पीडयेत्, रात्रौ निर्विनोदां गुरुतरशुचं शङ्के। निशीथे उन्निद्राम् अवनिशयनां साध्वीं तां मत्सन्देशैः अलं सुखयितुं सौधवातायनस्थः पश्य।

प्रसङ्ग – इस पद्यांश में यक्ष मेघ से कहता है कि उसकी विरहपीड़ित प्रिया को रात्रि में संदेश पहुँचाने के लिये महल के झरोखे से देखना।

अनुवाद – दिन में कामरता तुम्हारी भाभी को मेरा वियोग उतना नहीं सताता होगा। (परन्तु) रात में विनोदरहित तुम्हारी भाभी के अधिक दुःखी होने की आशङ्का करता हूँ। अतः अर्धरात्रि में उचटी हुई नींद वाली पृथ्वी पर लेटी हुई पतिव्रता उसको मेरे सन्देशों के द्वारा अत्यधिक सुखी करने के लिये भवन के झरोखे में बैठकर देखना।

शब्दार्थ – सव्यापाराम् – काम में लगी हुई, विप्रयोगः – वियोग, पीडयेत् – सताता होगा, निर्विनोदाम् – विनोदरहित, गुरतरशुचम् – अधिक दुःखी होने की, निशीथे – अर्धरात्रि में, उन्निद्राम् – उचटी हुई नींद वाली, अवनिशयनाम् – पृथ्वी पर लेटी हुई, साध्वीम् – पतिव्रता को, सौधवातायनस्थः – भवन के झरोखे में बैठकर।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – सव्यापाराम् – व्यापारेण सह वर्तमाना सव्यापारा ताम् (बहु.), **व्यापाराः** – वि+आ+पृ+घञ्। **पीडयेत्** – पीड्+विधिलिङ् प्र.पु.एकव.। **विप्रयोगः** – वि+प्र+युज्+घञ्। **निर्विनोदाम्** – निर्गतः विनोदः यस्याः ताम् (बहु.), निर्+वि+नुद्+घञ्। **मत्संदेशैः** – मम सन्देशैः (ष.त.), **सन्देशैः** – सम्+दिश्+घञ्। **उन्निद्राम्** – उद्गता निद्रा यस्याः सा ताम् (बहु.)।

आधिक्षामां विरहशयने सन्निषण्णैकपार्श्वां

प्राचीमूले तनुमिव कलामात्रशेषां हिमांशोः।

नीता रात्रिः क्षण इव मया सार्धमिच्छारतैर्या

तामेवोष्णैर्विरहमहतीमश्रुभिर्यापयन्तीम्।।26।।

अन्वयः – आधिक्षामां विरहशयने सन्निषण्णैकपार्श्वा प्राचीमूले कलामात्रशेषां हिमांशोः तुनुम् इव (स्थिताम्) या रात्रिः मया सार्धम् इच्छारतैः क्षणः इव नीता ताम् एव विरहमहतीम् उष्णैः अश्रुभिः यापयन्तीम् (तां साध्वीं पश्य)।

प्रसङ्ग – इस काव्यांश में कवि ने यक्षिणी की विरहावस्था का स्वाभाविक चित्रण किया है।

अनुवाद – मनोव्यथा से क्षीण हुई विरह की शय्या पर टेके हुए एक पाँव वाली, मानो पूर्व दिशा के मूल क्षितिज में एक कलामात्र अवशिष्ट चन्द्रमा की मूर्ति, तथा जो रात मेरे साथ इच्छानुसार रमण क्रियाओं के द्वारा एक क्षण के समान व्यतीत की थी, उस पतिव्रता को वियोग के कारण लम्बी हुई (रात) को गर्म आँसुओं के द्वारा बिताती हुई देखना।

शब्दार्थ – आधिक्षामाम् – मनोव्यथा से क्षीण हुई, विरहशयने – विरह की शय्या पर, प्राचीमूले – पूर्व दिशा के मूल (क्षितिज) में, कलामात्रशेषाम् – एक कला मात्र अवशिष्ट, हिमांशोः – चन्द्रमा की, तनुम् इव – मूर्ति के समान, इच्छारतैः – इच्छानुसार रमण क्रियाओं के द्वारा, क्षण इव – एक क्षण के समान, नीता – व्यतीत की, विरहमहतीम् – वियोग के कारण लम्बी (असह्य)हुई (रात्रि को), यापयन्तीम् – बिताती हुई (देखना)।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – विरहशयने – विरहे शयनं तस्मिन् (स.त.)। **प्राचीमूले** – प्राच्याः मूले (ष.त.)। **कलामात्रशेषाम्** – कला एव कलामात्रम् (तद्धित) कलामात्रशेषः यस्याः ताम् (बहु.)। **हिमांशोः** – हिमाः अंशवः यस्य तस्य (बहु.)। **नीता** – नी+क्त+टाप्। **इच्छारतैः** – इच्छया कृतानि रतानि तैः (मध्यम पदलोपी त.)। **विरहमहतीम्** – विरहेण महतीम् (तृ.त.)।

पादानिन्दोरमृतशिशिराञ्जालमार्गप्रविष्टान्

पूर्वप्रीत्या गतमभिमुखं संनिवृत्तं तथैव।

चक्षुः खेदात्सलिलगुरुभिः पक्ष्मभिश्चादयन्तीं

साभ्रेऽह्नीव स्थलकमलिनीं न प्रबुद्धां न सुप्ताम्।।27।।

अन्वयः – जालमार्गप्रविष्टान् अमृतशिशिरान् इन्दोः पादान् पूर्वप्रीत्या अभिमुखं गतं तथा एव संनिवृत्तं, चक्षु खेदात् सलिलगुरुभिः पक्ष्मभिः छादयन्तीं साभ्रे अह्नि न प्रबुद्धां न सुप्ता स्थलकमलिनीम् इव।

प्रसङ्ग – पुनः यहाँ यक्षिणी की विरहावस्था का वर्णन किया गया है।

अनुवाद – झरोखों के मार्ग से अन्दर प्रविष्ट हुई, अमृत के समान शीतल चन्द्रमा की किरणों की ओर पूर्व स्नेह के कारण गयी हुई (लेकिन) तुरन्त ही लौटी हुई दृष्टि जो दुःख के कारण

आँसुओं से भारी पलकों से ढकती हुई मेघों से आच्छन्न दिन में अविकसित और रात्रि में अमुकुलित स्थलकमलिनी के समान उस पतिव्रता को देखना।

शब्दार्थ – जालमार्गप्रविष्टान् – झरोखों (खिड़कियों) के मार्ग से अन्दर प्रविष्ट हुई, अमृतशिशिरान् – अमृत के समान शीतल, इन्दोः – चन्द्रमा की, पादान् – किरणों को, पूर्वप्रीत्या – पूर्व स्नेह के कारण, संनिवृत्तम् – लौटी हुई, खेदात् – दुःख के कारण, सलिलगुरुभिः – आँसुओं से भारी, पक्ष्मभिः – पलकों से, छादयन्तीम् – ढकती हुई को, न प्रबुद्धाम् – अविकसित।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – जालमार्गप्रविष्टान् – जालानां मार्गाः (ष.त.) तेभ्यः प्रविष्टान् (प.त.), **प्रविष्टान्** – प्र+विश्+क्त, द्वि. बहुव.। **अमृतशिशिरान्** – अमृतम् इव शिशिराः तान् (उपमित समास) अथवा अमृतेन शिशिरास्तान् (तृ.त.)। **पूर्वप्रीत्या** – पूर्वं प्रीतिः तया (केवल समास) अथवापूर्वा चा असौ प्रीतिः तया (कर्मधा.)। **गतम्** – गम्+क्त। **संनिवृत्तम्** – सम्+नि+वृत्+क्त। **सलिलगुरुभिः** – सलिलेन गुरुभिः (तृ.त.)। **न प्रबुद्धाम्** – न प्रबुद्धा ताम् (केवल स.)। **स्थलकमलिनीम्** – स्थलस्य, स्थले वा कमलिनी ताम् (ष. अथवा स.त.)।

निःश्वासेनाधरकिसलयक्लेशिना विक्षिपन्तीं

शुद्धस्नानात्परुषमलकं नूनमागण्डलम्बम्।

मत्संभोगः कथमुपनयेत्स्वप्नजोऽपीति निद्रा–

माकाङ्क्षन्तीं नयनसलिलोत्पीडरुद्धावकाशम्।।28।।

अन्वयः – शुद्धस्नानात् परुषं नूनम् आगण्डलम्बम् अलकम् अधरकिसलयक्लेशिना निःश्वासेन विक्षिपन्तीं स्वप्नजः अपि मत्संभोगः कथम् उपनयेत् इति नयनसलिलोत्पीडरुद्धावकाशां निद्राम् आकाङ्क्षन्तीम् (तां पश्य)।

प्रसङ्ग – पुनः इस काव्यांश में यक्षिणी की विरहावस्था का वर्णन है।

अनुवाद – साधारण स्नान से रूखे, निश्चय ही कपोलों तक लटकने वाले बालों की किसलय के समान निचले ओंठ को पीड़ित कर देने वाली लम्बी साँस से हिलाती हुई, तथा स्वप्न में उत्पन्न भी मेरा संभोग किसी प्रकार प्राप्त हो जाये– इस प्रकार आँखों के पानी के प्रवाह से रोके गये स्थान वाली निद्रा की इच्छा करती हुई उस पतिव्रता को देखना।

शब्दार्थ – शुद्धस्नानात् – शुद्ध जलमात्र स्नान से, परुषम् – रूखे, आगण्डलम्बम् – कपोलों तक लटकने वाले, अधरकिसलयक्लेशिना – किसलय के समान निचले ओंठ को पीड़ित (तपाने वाले) कर देने वाले, निःश्वासेन – लम्बे साँस से, विक्षिपन्तीम् – हिलाती हुई, स्वप्नजः – स्वप्न में उत्पन्न, नयनसलिलोत्पीडरुद्धावकाशाम् – आँखों के पानी के प्रवाह से रोके गये स्थान वाली, आकाङ्क्षन्तीम् – इच्छा करती हुई।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – विक्षिपन्तीम् – वि+क्षिप्+शतृ+ङीप्, द्वि. एकव.। **शुद्धस्नानात् –** शुद्धं च तत् स्नानम् (कर्मधा.) तस्मात्। **आगण्डलम् –** आगण्डाभ्यमिति आगण्डम् (अव्ययीभाव) आगण्डम् लम्ब (केवल समास)। **मत्संभोगः –** मम मया वा संभोगः (ष. अथवा तृ.त.)। **स्वप्नज –** स्वप्नात् जायते इति (उप.त.), स्वप्न+जन्+ड। **नयनसलिलोत्पीडारुद्धावकाशाम् –** नयनयोः सलिलम् (ष.त.), तस्य उत्पीडः (ष.त.), तेन रुद्धः अवकाशः यस्याः ताम् (बहु.), **उत्पीड –** उत्+पीड्+घञ्।

आद्ये बद्धा विरहदिवसे या शिखा दाम हित्वा

शापस्यान्ते विगलितशुचा तां मयोद्वेष्टनीयाम्।

स्पर्शक्लिष्टामयमितनखेनासकृत्सारयन्तीं

गण्डाभोगात्कठिनविषमामेकवेणीं करेण।।29।।

अन्वयः – आद्ये विरहदिवसे दाम हित्वा या शिखा बद्धा, शापस्य अन्ते विगलितशुचा मया उद्वेष्टनीयां स्पर्शक्लिष्टां कठिनविषमाम् एकवेणीं ताम् अयमितनखेन करेण गण्डाभोगात् असकृत् सारयन्तीम् (तां पश्य)।

प्रसङ्ग – इस पद्य में यक्षिणी की विरहावस्था का वर्णन किया गया है।

अनुवाद – विरह के पहले दिन पुष्पमाला को त्यागकर, जो चोटी बाँधी थी, शाप के अन्त होने पर नष्ट हुए शोक वाले मेरे द्वारा खोले जाने वाली, स्पर्श करने में दुःखदायी, कठोर, उलझी हुई एक वेणीरूप उस शिखा को, बिना कटे नाखूनों वाले हाथ से गालों के प्रदेश से बार-बार हटाती हुई मेरी उस पतिव्रता को देखना।

शब्दार्थ – आद्ये – पहले, विरहदिवसे – विरह के दिन, दाम – पुष्पमाला, हित्वा – त्यागकर, शिखा बद्धा – चोटी बांधी थी, विगलितशुचा – नष्ट हुए शोक वाला, उद्वेष्टनीयाम् – खोली जाने वाली, स्पर्शक्लिष्टाम् – स्पर्श करने में दुःखदायी, कठिनविषमाम् – कठोर, उलझी हुई, एकवेणीम् – एक वेणी रूप, अयमितनखेन – बिना कटे नाखूनों वाले, सारयन्तीम् – हटाती हुई।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – बद्धा – बन्ध्+क्त+टाप्। **विरहदिवसे –** विरहस्य दिवसे (ष.त.)। **हित्वा –** हा+क्त्वा। **शाप –** शप्+घञ्। **विगलितशुचा –** विगलिता शुक्, यस्य तेन (बहु.)। **उद्वेष्टनीयाम् –** उद्गतं वेष्टनं यस्याः सा उद्वेष्टना (बहु.)। **स्पर्शक्लिष्टाम् –** स्पर्श क्लिष्टा ताम् (स.त.), **क्लिष्टा –** क्लिश्+क्त+टाप्। **अयमितनखेन –** अयमिता नखाः यस्य तेन (बहु.), **एकवेणीम् –** एका वेणी (कर्मधा.) ताम्।

सा संन्यस्ताभरणमबला पेशलं धारयन्ती

शय्योत्सङ्गे निहितमसकृद् दुःखदुःखेन गात्रम्।

त्वामप्यस्रं नवजलमयं मोचयिष्यत्यवश्यं

प्रायः सर्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा।।30।।

अन्वयः – अबलां संन्यस्ताभरणम् असकृत् दुःखदुःखेन शय्योत्सङ्गे निहितं पेशलं गात्रं धारयन्ती सा अवश्यं त्वाम् अपि नवजलमयम् अस्रम् मोचयिष्यति, प्रायः आर्द्रान्तरात्मा सर्वः करुणावृत्तिः भवति।

प्रसङ्ग – यक्ष मेघ से कहता है कि मेरी प्रिया की विरहावस्था को देखकर तुम स्वयं अवश्य दुःखी हो जायोगे।

अनुवाद – दुर्बल हुई और आभूषणों का त्याग किये हुये, बार-बार कठिनाई से शय्या पर रखे हुए, कोमल शरीर को धारण करने वाली वह (तुम्हारी भाभी) अवश्य ही तुमको भी नये जल के रूप में आँसुओं को छुड़ा देगी अर्थात् रुला देगी क्योंकि प्रायः कोमल हृदय वाले सभी दयालु स्वभाव के होते हैं।

शब्दार्थ – संन्यस्ताभरणम् – आभूषणों का त्याग किये हुए, दुःखदुःखेन – कठिनाई से, शय्योत्सङ्गे – शय्या पर, पेशलम् – कोमल, नवजलमयम् – नये जल के रूप में, अस्रम् – आँसुओं को, मोचयिष्यति – छुड़ा देगी, करुणावृत्तिः – दयालु स्वभाव के।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – संन्यस्ताभरणम् – संन्यस्तानि आभरणानि यस्मात् तत् (बहु.)। **अबला** – अविद्यमानं बलं यस्याः सा (नञ् बहु.)। **धारयन्ती** – धृ+णि+शतृ+ङीप्। **शय्योत्सङ्गे** – शय्यायाः उत्सङ्गे (ष.त.), उत्सङ्ग – उद्+सञ्ज+घञ्। **असकत्** – न सकृत् (नञ् त.)। **नवजलमयम्** – नवं च तत् जलम् (कर्मधा.)।

जाने सख्यास्तव मयि मनः संभृतस्नेहमस्मा–

दित्थंभूतां प्रथमविरहे तामहं तर्कयामि।

वाचालं मां न खलु सुभगंमन्यभावः करोति

प्रत्यक्षं ते निखिलमचिराद् भ्रातरुक्तं मया यत्।।31।।

अन्वयः – तव सख्याः मनः मयि संभृतं स्नेहं जाने, अस्मात् अहं तां प्रथमविरहे इत्थं भूतां तर्कयामि, सुभगंमन्यभावः मां वाचालं न करोति खलु। हे! भ्रातः मया यत् उक्तम् (तत्) निखिलम् अचिरात् ते प्रत्यक्षम् (भविष्यति)।

प्रसङ्ग – यक्ष मेघ से कहता है कि जिस विरहावस्था का वर्णन किया है, वह तुम्हें प्रत्यक्ष होगा।

अनुवाद – (मैं) तुम्हारी सखी (भाभी) के मन को अपने प्रति स्नेह से भरा हुआ जानता हूँ, इसलिए मैं उसे प्रथम विरह में इस प्रकार (अति दुर्बल) हुई सोचता हूँ, अपने को सौभाग्यशाली

समझने का भाव मुझे मुखर नहीं बना रहा है। हे भाई! मैंने जो कुछ कहा है, (वह) शीघ्र ही तुम्हें प्रत्यक्ष हो जायेगा।

शब्दार्थ – सख्याः – सखी के (भाभी के), संभृतस्नेहम् – स्नेह से भरा हुआ, अस्मात् – इसलिए, प्रथमविरहे – प्रथम विरह में, इत्थंभूतम् – इस प्रकार (अति दुर्बल) हुई, सुभगंमन्यभावः – सौभाग्यशाली समझने का भाव, वाचालम् – मुखर, अचिरात् शीघ्र ही।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – संभृतस्नेहम् – संभृतः स्नेहः यस्मिन् तत् (बहु.), **संभृतः** – सम्+भृ+क्त। **स्नेहः** – स्निह+घञ्। **प्रथमविरहे** – प्रथमश्च असौ विरहः तस्मिन् (कर्मधा.)। **तर्कयामि** – तर्क्, लट् उ. पु. एकव.।

रुद्धापाङ्गप्रसरमलकैरञ्जनस्नेहशून्यं

प्रत्यादेशादपि च मधुनो विस्मृतभ्रूविलासम्।

त्वय्यासन्ने नयनमुपरिस्पन्दि शङ्के मृगाक्ष्या

मीनक्षोभाच्चलकुवलयश्रीतुलामेष्यतीति।।32।।

अन्वयः – अलकैः रुद्धापाङ्गप्रसरम् अञ्जनस्नेहशून्यम् अपि च मधुनः प्रत्यादेशात् विस्मृतभ्रूविलासं त्वयि आसन्ने (सति) उपरिस्पन्दि मृगाक्ष्याः नयनं मीनक्षोभात् चलकुवलयश्रीतुलाम् एष्यति इति शङ्के।

प्रसङ्ग – यक्ष मेघ से कहता है कि तुम्हारे यक्षिणी के समीप पहुँचने पर उसकी नेत्र की शोभा कमल के समान होगी।

अनुवाद – बालों से रोकी गयी कोरों की गति वाला, काजल की चिकनाई से रहित और मदिरा के त्याग से भौंहों के विलास को भूला हुआ तुम्हारे समीप आने पर ऊपर के भाग में फड़कने वाला, मृगनयनी का नेत्र मछली की हलचल से चञ्चल कमल की शोभा की समानता को प्राप्त करेगा– ऐसी मेरी संभावना है।

शब्दार्थ – अलकैः – बालों से, रूद्धापाङ्गप्रसरम् – रोकी गयी कोरों की गति वाला, अञ्जनस्नेहशून्यम् – काजल की चिकनाई से रहित, मधुनः – मदिरा के, प्रत्यादेशात् – त्याग से, विस्मूतभ्रूविलासम् – भौंहों के विलास को भूला हुआ, उपरिस्पन्दि – ऊपर के भाग में फड़कने वाला, मीनक्षोभात् – मछली की हलचल के कारण, एष्यति – प्राप्त करेगा।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – रुद्धापाङ्गप्रसरम् – अपाङ्गयोः प्रसराः (प्र.त.) रुद्धा अपाङ्गप्रसराः यस्य तत् (बहु.), **रुद्ध** – रुध्+क्त। **अञ्जनस्नेहशून्यम्** – अञ्जनस्य स्नेहः (ष.त.) तेन शून्यम् (तृ.त.)। **प्रत्यादेशात्** – प्रति+आङ्+दिश्+घञ्, प.एकव.। **आसन्ने** – आ+सद्+क्त, स. एकव.। **उपरिस्पन्दि** – उपरि स्पन्दते इति (उपपद त.)। **मृगाक्ष्याः** – मृगस्य अक्षिणी इव अक्षिणी यस्याः तस्याः (बहु.)।

वामश्चास्याः कररुहपदैर्मुच्यमानो मदीयै–

र्मुक्ताजालं चिरपरिचितं त्याजितो दैवगत्या।

संभोगान्ते मम समुचितो हस्तसंवाहनानां

यास्यत्यूरुः सरसकदलीस्तम्भगौरश्चलत्वम्।।33।।

अन्वयः – मदीयैः कररुहपदैः मुच्यमानः दैवगत्या चिरपिरिचितं मुक्ताजालं त्याजितः, संभोगान्ते मम हस्तसंवाहनानां समुचितः सरसकदलीस्तम्भगौरः अस्याः वामः ऊरुः च चलत्वं यास्यति।

प्रसङ्ग – यक्ष मेघ से कहता है कि जब वह (मेघ) यक्षिणी के समीप पहुँचेगा तो यक्षिणी की बायीं जंघा फड़कने लगेगी।

अनुवाद – मेरे नखों के चिह्नों से छोड़ी जाती हुई, दुर्भाग्यवश बहुत समय से जानी पहचानी मोतियों की लड़ी को छोड़ देने वाली, संभोग के अन्त में मेरे हाथों से दबाई जाने योग्य, सरस केले के तने के समान गौर वर्ण, इस मेरी प्रिया की बायीं जंघा फड़क उठेगी।

शब्दार्थ – कररुहपदैः – नखों के चिह्नों से, मुच्यमानः – छोड़ी जाती हुई, चिरपरिचितम् – बहुत समय से जानी पहचानी, मुक्ताजालम् – मोतियों की लड़ी को, हस्तसंवाहनानाम् – हाथ से दबाये जाने के, समुचितः – योग्य, चलत्वम् – फड़कने को, यास्यति – प्राप्त करेगी।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – कररुहपदैः – मुकरे करात् वा रोहन्ति इति (उपपद त.) कररुहाणां पदैः (ष.त.)। **मुच्यमानः** – मुच्+शानच्। **मुक्ताजालम्** – मुक्तानां जालम् (ष.त.)। **चिरपरिचितम्** – चिरः परिचितः तम् (केवल स.)। **त्याजितः** – त्यज्+णिच्+क्त। **दैवगत्या** – दैवस्य गत्या (ष.त.)। सम्भोगान्ते – सम्भोगस्य अन्ते (ष.त.)। **हस्तसंवाहनानाम्** – हस्ताभ्याम् संवाहनानि (तृ. त.) तेषाम्, **संवाहनम्** –सम्+वह्+णिच्+ल्युट्।

तस्मिन्काले जलद! यदि सा लब्धनिद्रासुखा स्या–

दन्वास्यैनां स्तनितविमुखो याममात्रं सहस्व।

मा भूदस्याः प्रणयिनि मयि स्वप्नलब्धे कथञ्चित्

सद्यःकण्ठच्युतभुजलताग्रन्थि गाढोपगूढम्।।34।।

अन्वयः – (हे) जलद, तस्मिन् काले यदि सा लब्धानिद्रासुखा स्यात् एनाम् अन्वास्य स्तनितविमुखः याममात्रं सहस्व। अस्याः मयि प्रणयिनि कथञ्चित् स्वप्नलब्धे (सति) गाढोपगूढं सद्यः कण्ठच्युतभुजलताग्रन्थि मा भूत्।

प्रसङ्ग – यक्ष मेघ को कहता है कि यदि तुम्हारे वहाँ पहुँचने पर वह प्रिया सो रही हो तो सन्देश देने के लिये उसके जगने तक प्रतीक्षा करना।

अनुवाद – हे मेघ! उस समय यदि वह प्रिया निद्रा का सुख प्राप्त कर रही हो तो उसके पास बैठकर गर्जन से विमुख होकर प्रहर भर तक प्रतीक्षा करना। (ताकि) इस (प्रिया) का मुझ प्रिय के किसी प्रकार स्वप्न में मिलने पर (किया गया) गाढ़ आलिङ्गन शीघ्र ही कण्ठ से शिथिल हुए लताजैसी भुजाओं के बन्धन वाला न हो जाये।

शब्दार्थ – लब्धनिद्रासुखा – निद्रा के सुख को प्राप्त, अन्वास्य – समीप बैठकर, स्तनितविमुखः – गर्जन से विमुख होकर, गाढोपगूढम् – गाढ आलिङ्गन, कण्ठच्युतभुजलताग्रन्थि – कण्ठ से शिथिल हुए लता–जैसी भुजाओं के बन्धन वाला।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – लब्धनिद्रासुखा – निद्रायाः सुखम् (ष.त.), लब्धं निद्रासुखं यया सा (बहु.), **लब्ध** – लभ+क्त। **स्तनितविमुखः** – स्तनितात् विमुखः (ष.त.)। **याममात्रम्** – यामः एव याममात्रम् (तद्धित)। **प्रणयिनि** – प्रणय+इनि, स.एकव.। **स्वप्नलब्धे** – स्वप्ने लब्धः (स.त.) तस्मिन्। **गाढोपगूढम्** – गाढं च तत् उपगूढम् (कर्मधा.)।

तामुत्थाप्य स्वजलकणिकाशीतलेनानिलेन

प्रत्याश्वस्तां सममभिनवैर्जालकैर्मालतीनाम्।

विद्युद्गर्भः स्तिमितनयनां त्वत्सनाथे गवाक्षे

वक्तुं धीरः स्तनितवचनैर्मानिनीं प्रक्रमेथाः।।35।।

अन्वयः – विद्युद्गर्भः धीरः स्वजलकणिकाशीतलेन अनिलेन तां मानिनीम् उत्थाप्य मालतीनाम् अभिनवैः जालकैः समं प्रत्याश्वस्तां त्वत्सनाथे गवाक्षे स्तिमितनयनां स्तनितवचनैः वक्तुं प्रक्रमेथाः।

प्रसङ्ग – यहाँ यक्ष मेघ से कहता है कि प्रहर भर प्रतीक्षा करना और फिर तुम मेरी उस प्रिया को धीरे से जगाकर ये संदेश देना।

अनुवाद – मध्य में बिजली वाले (और) धीर हुए (तुम) अपने जल की बूँदो से शीतल वायु द्वारा उस मनस्विनी को उठाकर चमेली की नयी कलियों के साथ आश्वस्त हुई तथा तुमसे युक्त झरोखे पर निश्चल दृष्टि लगायी हुई के साथ गर्जन रूपी वचनों से बोलना प्रारम्भ करना।

शब्दार्थ – विद्युद्गर्भः – मध्य में बिजली वाले, स्वजलकणिकाशीतलेन – अपने जल की बूंदों से शीतल, मानिनीम् – मनस्विनी को, उत्थाप्य – उठाकर, जालकैः – कलियों के साथ, प्रत्याश्वस्ताम् – आश्वस्त हुई, त्वत्सनाथे – तुमसे युक्त, गवाक्षे – झरोखे पर, स्तनितवचनः – गर्जन रूपी वचनों पर, प्रक्रमेथाः – प्रारम्भ करना।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – उत्थाप्य – उत्+स्था+णिच्+ल्यप्। **स्वजलकणिकाशीतलेन** – स्वं च तत् जलम् (कर्मधा.), तस्य कणिका. (ष.त.) ताभिः शीतलेन (तृ.त.)। **स्तिमितनयनाम्** –

स्तिमिते नयने यस्याः ताम् (बहु.)। **त्वत्सनाथे** – त्वया सनाथे (तृ.त.)। **स्तनितवचनैः** – स्तनितानि एव वचनानि तैः (कर्मधा.)। **मानिनीम्** – मानोऽस्या अस्तीति मानिनी ताम्।

भर्तुर्मित्रं प्रियमविधवे! विद्धि मामम्बुवाहं

तत्संदेशैर्हृदयनिहितैरागतं त्वत्समीपम्।

यो वृन्दानि त्वरयति पथि श्रम्यतां प्रोषितानां

मन्द्रस्निग्धैर्ध्वनिभिरबलावेणिमोक्षोत्सुकानि।।36।।

अन्वयः – हे अविधवे! मां भर्तुः प्रियं मित्रं हृदयनिहितैः, तत्संदेशैः त्वत्समीपम् आगतम् अम्बुवाहं विद्धि, यः मन्द्रस्निग्धैः ध्वनिभिः अबलावेणिमोक्षोत्सुकानि पथि श्राम्यतां प्रोषितानां वृन्दानि त्वरयति।

प्रसङ्ग – यहाँ यक्ष मेघ को समझाता है कि वहाँ पहुँचने पर वह सबसे पहले यक्षिणी को अपना परिचय दे।

अनुवाद – हे सौभाग्यवति! मुझे अपने पति का प्रिय मित्र और हृदय में रखे हुए उसके संदेशों के साथ तुम्हारे समीप आया हुआ मेघ जानो, जो मेघ अपनी गम्भीर और मधुर ध्वनियों से अबलाओं की चोटियों को खोलने को उत्सुक तथा मार्ग में थके हुए प्रवासियों के समूहों को घर लौटने के लिये प्रेरित करता है।

शब्दार्थ – अविधवे – सौभाग्यवति, हृदयनिहितैः – हृदय में रखे हुए, तत्संदेशैः – उसके संदेशों के साथ, अम्बुवाहम् – मेघ, विद्धि–जानो, मन्द्रस्निग्धैः – गम्भीर और मधुर, अबलामोक्षोत्सुकानि – अबलाओं की चोटियों को खोलने को उत्सुक, श्राम्यताम् – थके हुए, प्रोषितानाम् – प्रवासियों के, त्वरयति – प्रेरित करता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अविधवे – विगतः धवः (पति) यस्याः सा विधवा (बहु.) न विधवा अविधवा (नञ् त.), सम्बोधन एकव.। **विद्धि** – विद् लोट् म.पु.एकव.। अम्बुवाहम् – अम्बु वहति इति (उपपद त.), तम्। **तत्संदेशैः** – तस्य सन्देशैः (ष.त.), **संदेश** – सम्+दश्+घञ्। **हृदयनिहितैः** – हृदये निहितैः (स.त.), **निहित** – नि+धा+क्त। **त्वरयति** – त्वरां करोति इति। **अबलावेणिमोक्षोत्सुकानि** – अबलानां वेणयः (ष.त.) तासां मोक्षः (ष.त.) तस्मिन् उत्सुकानि (ष. त.)।

इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा

त्वामुत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया वीक्ष्य सम्भाव्य चैव।

श्रोष्यत्यस्मात्परमवहिता सौम्य! सीमन्तिनीनां

कान्तोदन्तः सुहृदुपनतः सङ्गमात्किञ्चिदूनः।।37।।

अन्वयः – इति एवम् आख्याते उन्मुखी उत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया सा, पवनतनयं मैथिलीव, त्वां वीक्ष्य संभाव्य च अस्मात् परम् अवहिता (सती) श्रोष्यति, सौम्य, सीमन्तिनीनां सुहृदुपनतः कान्तोदन्तः सङ्गमात् किञ्चिदूनः (भवति)।

प्रसङ्ग – यक्ष मेघ से कहता है कि तुम्हारा परिचय हो जाने पर जिस प्रकार सीता जी ने हनुमान का सत्कार किया था, उसी प्रकार मेरी प्रिया भी तुम्हारा सत्कार करेगी।

अनुवाद – इस प्रकार कहा जाने पर ऊपर की ओर मुख किये हुए और उत्कण्ठा से विकसित चित्त होकर, वह मेरी प्रिया पवन पुत्र हनुमान को सीता के समान, तुम्हें देखकर और तुम्हारा आदर करके आगे सावधान होकर सुनेगी। क्योंकि हे सौम्य! स्त्रियों को पति के मित्र द्वारा लाया गया पति का सन्देश मिलन से कुछ ही कम होता है।

शब्दार्थ – इति एवम् आख्याते – इस प्रकार कहा जाने पर, उन्मुखी – ऊपर की ओर मुख किए हुए, उत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया – उत्कण्ठा से विकसित चित्त होकर, संभाव्य – आदर करके, अवहिता – सावधान, सीमन्तिनीनाम् – स्त्रियों को, सुहृदुपनतः – मित्र द्वारा लाया गया, कान्तोदन्तः – पति का सन्देश, सङ्गमात् – मिलन से।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – **आख्याते** – आ+ख्या+क्त, स. एकव.। **पवनतनयम्** – पवनस्य तनय (ष.त.) तम्। **मैथिली** – मिथिला+अण्+ङीप्। **उन्मुखी** – उद्गतं मुखं यस्याः सा (बहु.)। **उत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया** – उत्कण्ठया उच्छ्वसितं (तृ त.), तादृशं हृदयं यस्या सा (बहु.)। **वीक्ष्य** – वि+ईक्ष्+ल्यप्। **संभाव्य** – सम्+भू+णिच्+ल्यप्। **कान्तोदन्तः** – कान्तस्य उदन्तः (ष.त.)।

तामायुष्मन् मम च वचनादात्मनश्चोपकर्तुं

ब्रूया एवं तव सहचरो रामगिर्याश्रमस्थः।

अव्यापन्नः कुशलमबल! पृच्छति त्वां वियुक्तः

पूर्वाभाष्यं सुलभविपदां प्राणिनामेतदेव।।38।।

अन्वयः – आयुष्मन् मम वचनात् च आत्मनः उपकर्तुं च ताम् एवं ब्रूयाः (यत्) अबले, तव सहचरः रामगिर्याश्रमस्थः अव्यापन्नः, वियुक्तः त्वां कुशलं पृच्छति। सुलभविपदां प्राणिनाम् एतद् एव पूर्वाभाष्यम्।

प्रसङ्ग – यक्ष मेघ से कहता है कि विपत्ति में पड़ने वाले प्राणियों से मिलने पर सबसे पहले क्या पूछना चाहिये?

अनुवाद – हे आयुष्मन्! मेरी ओर से और अपने को उपकृत करने के लिए उससे इस प्रकार कहना– हे अबले! तुम्हारा साथी (पति) रामगिरि आश्रम में रहता हुआ जीवित है, बिछुड़ा हुआ (वह) तुम्हारा कुशल पूछता है। सहज ही विपत्ति में पड़ने वाले प्राणियों से यह ही पहले पूछना चाहिये।

शब्दार्थ – उपकर्तुम् – उपकार करने के लिए, ब्रूयाः – कहना, रामगिर्याश्रमस्थः – रामगिरि आश्रम में रहता हुआ, अव्यापन्नः – जीवित, सुलभविपदाम् – सहज ही विपत्ति में पड़ने वाले, पूर्वाभाष्यम् – पहले पूछना चाहिये।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – आयुष्मन् – आयुः अस्य अस्ति इति, आयुष्+मतुप्, सम्बोधन एकव. । **वचनात्** – वच्+ल्युट्, प. एकव.। **सहचरः** – सह चरति इति (उपपद त.)। **रामगिर्याश्रमस्थः** – रामगिरेः आश्रमाः (प.त.) तेषु तिष्ठति इति (उपपद त.), रामगिर्याश्रम+स्था+क। **अबले** – अविद्यमानं बलं यस्याः सा अबला (बहु.) सम्बोधन एकव.। **पूर्वाभाष्यम्** – पूर्वम् आभाष्यम् (केवल स.)।

अङ्गेनाङ्गं प्रतनु तनुना गाढतप्तेन तप्तं

सास्रेणास्त्रुद्रुतमविरतोत्कण्ठमुत्कण्ठितेन।

उष्णोच्छ्वासं समधिकतरोच्छ्वासिना दूरवर्ती

सङ्कल्पैर्तैर्विशति विधिना वैरिणा रुद्धमार्गः।।39।।

अन्वयः – हे सुन्दरि! वैरिणा विधिना रुद्धमार्गः दूरवर्ती तव सहचरः तनुना गाढतप्तेन, सास्रेण, उत्कण्ठितेन समधिकतरोच्छ्वासिना अङ्गेन प्रतनु, तप्तम् अश्रुद्रुतम् अविरतोत्कण्ठम् उष्णोच्छ्वासं अङ्ग तैः सङ्कल्पैः विशति।

प्रसङ्ग – यक्ष मेघ को कहता है कि वह कुशल क्षेम बताकर मेरी विरहावस्था को भी प्रकट कर दे।

अनुवाद – विपरीत भाग्य द्वारा रोके गये मार्ग वाला और तुमसे दूर रहने वाला, (तेरा पति) दुर्बल, अत्यन्त तपे हुए, आँसुओं से युक्त, उत्कण्ठित, लम्बे-लम्बे उच्छ्वासों को लेने वाले शरीर से अत्यधिक कृश, तपे हुए, बहुत उच्छ्वासों से भरे हुए, निरन्तर उत्कण्ठित (और) गर्म उच्छ्वासों वाले शरीर से उन-उन मनोरथों के साथ मिलता है।

शब्दार्थ – विधिना – भाग्य द्वारा, तनुना – दुर्बल, गाढतप्तेन – अत्यन्त तपे हुए, समधिकतरोच्छ्वासिना – लम्बे-लम्बे उच्छ्वासों को लेने वाले, अविरतोत्कण्ठम् – निरन्तर उत्कण्ठित, उष्णोच्छ्वास – गर्म उच्छ्वासों वाले, सङ्कल्पैः – मनोरथों के साथ, विशति – मिलता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – गाढतप्तेन – गाढं यथा स्यात् तथा तप्तेन (केवल स.), **तप्त** – तप्+क्त। **अविरतोत्कण्ठम्** – न विरता (नञ् त.) अविरता उत्कण्ठा यस्य तत् (बहु.)। **उत्कण्ठितेन** – उत्+कण्ठ+क्त, तृ. एकव.। उष्णोच्छ्वासम् – उष्णाः उच्छ्वासाः यस्य तत् (बहु.)। **समधिकतरोच्छ्वासिना** – समिधिकतरं यथा स्यात् तथा उच्छ्वसिति इति (उपपद त.) तेन, समधिकतर+उत्+श्वस्+णनि, तृ.एकव.। **दूरवर्ती** – दूरे वर्तते इति (उपपद त.)।

शब्दाख्येयं यदपि किल ते यः सखीनां पुरस्तात्

कर्णे लोलः कथयितुमभूदाननस्पर्शलोभात्।

सोऽतिक्रान्तः श्रवणविषयं लोचनाभ्यामदृष्य–

स्त्वामुत्कण्ठाविरचितपदं मन्मुखेनेदमाह।।40।।

अन्वयः – यः ते सखीनां पुरस्तात् शब्दाख्येयम् अपि यत्, (तत्) आननस्पर्शलोभात् कर्णे कथयितुं लोलः अभूत् किल, श्रवणविषयम् अतिक्रान्तः लोचनाभ्याम् अदृश्यः स त्वाम् उत्कण्ठाविरचितपदम् इदं मन्मुखेन आह।

प्रसङ्ग – इस काव्यांश में यक्ष मेघ से यक्षिणी के प्रति संदेश को कहता है।

अनुवाद – जो (मेरा प्रिय) तेरी सखियों के सामने शब्दों से कहने योग्य भी जो (होता था), उसे सचमुच (तेरे) मुख के स्पर्श के लोभ से कान में कहने के लिए लालायित रहता था, कानों की पहुंच से बाहर हुआ (तथा) नेत्रों से न दिखाई पड़ने वाला वह (तेरा प्रिय) उत्सुकता से रचे गये शब्दों वाले इस (सन्देश) को मेरे मुख से तुमसे कहता है।

शब्दार्थ – पुरस्तात् – सामने, शब्दाख्येयम् – शब्दों से कहने योग्य, आननस्पर्शलोभात् – मुख के स्पर्श के लोभ से, लोलः – लालायित, श्रवणविषयम् – कानों की पहुँच से, अतिक्रान्तः – बाहर, उत्कण्ठाविरचितपदम् – उत्सुकता से रचे गये शब्दों वाले।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – शब्दाख्येयम् – शब्देन आख्येयम् (तृ.त.), **आख्येयम्** – आ+ख्या+यत्। **कथयितुम्** – कथ्+तुमुन्। **आननस्पर्शलोभात्** – आननस्य स्पर्शः (ष.त.) तस्य लोभात् (ष.त.), हेतु के अर्थ में पञ्चमी वि.। **श्रवणविषयम्** – श्रवणस्य विषयः (ष.त.) तम्। **अदृश्यः** – न दृश्य (नञ् त.)। **उत्कण्ठाविरचितपदम्** – उत्कण्ठया विरचितानि पदानि यस्य तत् (बहु.)।

श्यामास्वङ्गं, चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातं,

वक्त्रच्छायां शशिनि, शिखिनां बर्हभारेषु केशान्।

उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्,

हन्तैकस्मिन्क्वचिदपि न ते चण्डि! सादृश्यमस्ति।।41।।

अन्वयः – (हे प्रिये!) श्यामासु अङ्गं चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातं, शशिनि वक्त्रच्छायां, शिखिनां बर्हभारेषु केशान्, प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान् उत्पश्यामि। हन्त चण्डि, क्वचिदपि एकस्मिन् ते सादृश्यं न अस्ति।

प्रसङ्ग – इस काव्यांश में यक्ष मेघ से यक्षिणी के प्रति संदेश को कहता है।

अनुवाद – प्रियङ्गु लताओं में (तुम्हारे) शरीर की, भयभीत हुई हरिणियों की चितवन में (तुम्हारे) मुख की कान्ति की, मयूरों के पलों के समूहों में (तुम्हारे) केशों की (और) हल्की-हल्की नदियों की तरङ्गों में (तुम्हारे) भ्रूभङ्गों की कल्पना किया करता हूँ। खेद है कि हे कोप करने वाली! किसी भी एक (वस्तु) में तेरी समानता नहीं है।

शब्दार्थ – श्यामासु – प्रियङ्गु लताओं में, चकितहरिणीप्रेक्षणे – भयभीत हुई हरिणियों की चितवन में, दृष्टिपातम् – चितवन को, शिखिनाम् – मयूरों के, प्रतनुषु – हल्की-हल्की, नदीवीचिषु – नदियों की तरङ्गों में, उत्पश्यामि – कल्पना करता हूँ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – **चकितहरिणीप्रेक्षणे** – चकिताश्च ताः हरिण्यः (कर्मधा.) तासाम् प्रेक्षणे (ष.त.)। **दृष्टिपातम्** – दृष्ट्याः पातः (ष.त.) तम्, **दृष्टि** – दृश्+क्तिन्। **वक्त्रच्छायाम्** – वक्त्रस्य छाया (ष.त.) ताम्। **बर्हभारेषु** – बर्हाणां भारेषु (ष.त.)। **नदीवीचिषु** – नदीनां वीचिषु (प.त.)।

त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलाया–

मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम्।

अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे

क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सङ्गमं नौ कृतान्तः।।42।।

अन्वयः – (हे प्रिये!) प्रणयकुपितां त्वां धातुरागैः शिलायाम् आलिख्य यावत् आत्मानं ते चरणपतित कर्तुम् इच्छामि तावत् मुहुः उपचितैः अस्रैः मे दृष्टिः आलुप्यते क्रूरः कृतान्तः तस्मिन् अपि नौ सङ्गमं न सहते।

प्रसङ्ग – इस काव्यांश में यक्ष मेघ से यक्षिणी के प्रति संदेश को कहता है।

अनुवाद – हे प्रिय! प्रणय में रूठी हुई तुमको गेरू के रंग से पत्थर पर चित्रित कर जैसे ही मैं स्वयं को तेरे चरणों में गिरा हुआ बनाना चाहता हूँ, वैसे ही बार-बार उमड़े हुए आँसुओं से मेरी दृष्टि लुप्त हो जाती है। निर्दय दैव, उस चित्र में भी हम दोनों के मिलने को नहीं सहता है।

शब्दार्थ – प्रणयकुपिताम् – प्रणय में रूठी हुई, धातुरागैः – गेरू के रंग से, शिलायाम् – पत्थर पर, आलिख्य – चित्र बनाकर, तावत् – वैसे ही, उपचितैः – उमड़े हुए, आलुप्यते – लुप्त हो जाती है, कृतान्तः – विधाता (दैव)।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – आलिख्य – आ+लिख्+ल्यप्। **प्रणयकुपिताम्** – प्रणयेन कुपिताम् (तृ.त.), **कुपिता** – कुप्+क्त+टाप्। **धातुरागैः** – धातवः एव रागाः तैः (कर्मधा.)। **चरणपतितम्** – चरणयोः पतितम् (स. त.)।

मामाकाशप्रणिहितभुजं निर्दयाश्लेषहेतो–

र्लब्धायास्ते कथमपि मया स्वप्नसन्दर्शनेषु।

पश्यन्तीनां न खलु बहुशो न स्थलीदेवतानां

मुक्तास्थूलास्तरुकिसलयेष्वश्रुलेशाः पतन्ति।।43।।

अन्वयः – (हे प्रिये!) स्वप्नसंदर्शनेषु मया कथमपि लब्धायाः ते निर्दयाश्लेषहेतोः आकाशप्रणिहितभुजं मां पश्यन्तीनां स्थलीदेवतानां मुक्तास्थूलाः अश्रुलेशाः तरुकिसलयेषु बहुशः न पतन्ति खलु न।

प्रसङ्ग – इस काव्यांश में यक्ष मेघ से यक्षिणी के प्रति संदेश को कहता है।

अनुवाद – स्वप्न के ज्ञान में मेरे द्वारा किसी तरह कठिनाई से प्राप्त की गयी तेरे गाढ़ आलिङ्गन के लिए आकाश में भुजा फैलाये हुए, मुझे देखती हुई वन देवियों की मोतियों के समान मोटी आँसुओं की बूँदें वृक्षों की कोपलों पर बहुत बार न गिरती हों, ऐसी बात नहीं अर्थात् अवश्य गिरती हैं।

शब्दार्थ – स्वप्नसंदर्शनेषु – स्वप्न के ज्ञान में, लब्धायाः – प्राप्त की गयी, निर्दयाश्लेषहेतोः – गाढ़ आलिङ्गन के लिए, आकाशप्रणिहितभुजम् – आकाश में भुजा फैलाये हुए, स्थलीदेवतानाम् – वन देवियों के, मुक्तास्थूलाः – मोतियों के समान मोटी, तरुकिसलयेषु – वृक्षों की कोपलों पर।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – आकाशप्रणिहितभुजम् – आकाशे प्रणिहितौ भुजौ येन् तम् (बहु.), **प्रणिहितो** – प्र+नि+धा+क्त। **निर्दयाश्लेषहेतोः** – निर्गता दया यस्मात् सः (बहु.) निर्दयः आश्लेषः (कर्मधा.) स एव हेतुः (कर्मधा.), **आश्लेष** – आ+श्लिष्+घञ्। **स्वप्नसंदर्शनेषु** – स्वप्नानां सन्दर्शनेषु (ष.त.)। **स्थलीदेवतानाम्** – स्थलीनां देवताः (ष.त.) तासाम्। **मुक्तास्थूलाः** – मुक्ता इव स्थूलाः (उपमित त.)।

भित्त्वा सद्यः किसलयपुटान्देवदारुद्रुमाणां

ये तत्क्षीरस्त्रुतिसुरभयो दक्षिणेन प्रवृत्ताः।

आलिङ्ग्यन्ते गुणवति! मया ते तुषाराद्रिवाताः

पूर्वं स्पृष्टं यदि किल भवेदङ्गमेभिस्तवेति।।44।।

अन्वयः – हे गुणवति! देवदारुद्रुमाणां किसलयपुटान् सद्यः भित्त्वा तत्क्षीरस्त्रुतिसुरभयः ये दक्षिणेन प्रवृत्ताः मया ते तुषाराद्रिवाताः एभिः यदि तव अङ्गं पूर्व स्पृष्टं भवेत् किल इति आलिङ्ग्यन्ते।

प्रसङ्ग – इस काव्यांश में यक्ष मेघ से यक्षिणी के प्रति संदेश को कहता है।

अनुवाद – हे गुणशालिनि, देवदारु वृक्षों की कोपलों की परतों को शीघ्र ही भेदकर उनके दूध के स्राव से सुगन्धित जो (पवन) दक्षिण दिशा की ओर चलते हैं, मैं उन हिमालय पर्वत

के पवनों का इन्होंने सम्भवतः तेरे शरीर का पहले स्पर्श किया होगा ऐसा सोचकर आलिङ्गन करता रहता हूँ।

शब्दार्थ – गुणवति – गुणशालिनि, किसलयपुटान् – कोपलों की परतों को, सद्यः – शीघ्र, दक्षिणेन – दक्षिण की ओर, तुषाराद्रिवाताः – हिमालय पर्वत के पवन, सृष्टम् – स्पर्श, आलिङ्ग्यन्ते –आलिङ्गन करता हूँ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – भित्वा – भिद्+क्त्वा। **किसलयपुटान्** – किसलयानां पुटाः (ष.त.) तान्। **देवदारुद्रुमाणाम्** – देवदारवश्च ते द्रुमाश्च तेषाम् (कर्मधा.)। **प्रवृत्ताः** – प्र+वृ+क्त, प्र. बहुव.। **आलिङ्ग्यन्ते** – आ+लिङ्ग् (कर्मवा.) लट् प्र. पु. एकव.। **तुषाराद्रिवाताः** – तुषारस्य अद्रिः (ष.त.) तस्य वाताः (ष.त.)। **स्पृष्टम्** – स्पृश्+क्त।

संक्षिप्येत क्षण इव कथं दीर्घयामा त्रियामा

सर्वावस्थास्वहरपि कथं मन्दमन्दातपं स्यात्।

इत्थं चेतश्चटुलनयने! दुर्लभप्रार्थनं मे

गाढोष्माभिः कृतमशरणं त्वद्वियोगव्यथाभिः।।45।।

अन्वयः – दीर्घयामा त्रियामा क्षणः इव कथं संक्षिप्येत, अहः अपि सर्वावस्थासु मन्दमन्दातपं कथं स्यात्। चटुलनयने, इत्थं दुर्लभप्रार्थनं मे चेतः गोढोष्माभिः त्वद्वियोगव्यथाभिः अशरणं कृतम्।

प्रसङ्ग – इस काव्यांश में यक्ष मेघ से यक्षिणी के प्रति संदेश को कहता है।

अनुवाद – लम्बे प्रहरों वाली रात्रि क्षण के समान किस प्रकार छोटी हो जाये और दिन सभी अवस्थाओं में मन्द-मन्द धूप वाला कैसे हो? हे चञ्चल नेत्रों वाली! इस प्रकार दुर्लभ अभिलाषा वाले मेरे मन को अतीव ताप वाली तेरे वियोग की पीड़ाओं ने अनाथ बना दिया है।

शब्दार्थ – दीर्घयामा – लम्बे प्रहरों वाली, त्रियामा – रात्रि, संक्षिप्येत – छोटी हो जाये, सर्वावस्थासु – सभी अवस्थाओं में, मन्दमन्दातपम् – मन्द-मन्द धूप वाला, चटुलनयने – चञ्चल नेत्रों वाली, दुर्लभप्रार्थनम् – दुर्लभ अभिलाषा वाले, गाढोष्माभिः – अति तीव्र ताप वाली, त्वद्वियोगव्यथाभिः – तेरे वियोग की पीड़ाओं ने, अशरणम् – अनाथ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – संक्षिप्येत – सम्+क्षिप्, विधिलिङ्, प्र.पु.एकव.। **दीर्घयामा** – दीर्घाः यामाः यस्यां सा (बहु.)। **त्रियामा** – तिस्रः यामाः यस्यां सा (बहु.)। **सर्वावस्थासु** – सर्वासु अवस्थासु (कर्मधा.)। **मन्दमन्दातपम्** – मन्दः मन्दः आतपो यस्मिन् तत् (बहु.)। **चटुलनयने** – चटुलेनयने यस्याः सा (बहु.)।

नन्वात्मानं बहु विगणयन्नात्मनैवावलम्बे

तत्कल्याणि! त्वमपि नितरां मा गमः कातरत्वम्।

कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा

नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण।।46।।

अन्वयः – ननु बहु विगणयन् (अहम्) आत्मना एव आत्मानम् अवलम्बे। कल्याणि! तत् त्वम् इपि नितरां कातरत्वं मा गमः। अत्यन्तं सुखम् एकान्ततः दुःखं वा कस्य उपनतम्? दशा चक्रनेमिक्रमेण नीचैः उपरि च गच्छति।

प्रसङ्ग – इस काव्यांश में यक्ष मेघ से यक्षिणी के प्रति संदेश को कहता है।

अनुवाद – हे प्रिय! बहुत विचार करता हुआ (मैं) अपने आप ही अपने को सहारा दिये रहता हूँ। हे सुभगे! इसलिए तुम भी बहुत अधिक व्याकुल मत होओ। अत्यन्त (लगातार) सुख अथवा लगातार दुःख किसे प्राप्त होता है? (लोगों की दशा) पहिये के धार के क्रम से नीचे और ऊपर जाती रहती है।

शब्दार्थ – बहु विगणयन् – बहुत विचार करते हुए, आत्मना – अपने आप, आत्मानम् – अपने को, अवलम्बे – सहारा दिये रहता हूँ, कल्याणि – हे सुभगे, नितराम् – बहुत अधिक, कातरत्वम् – व्याकुल, एकान्ततः – लगातार, उपनतम् – प्राप्त होता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – विगणयन् – वि+गण+णिच्+शतृ, प्रथमा एकव.। **अवलम्बे** – अव+लम्ब (आत्मनेपद) लट् उ.पु.एकव.। **कल्याणि** – कल्याण+ङीप् सम्बो. एकव.। **नितरां** – नि+तरप्+आम्। **उपनतम्** – उप+नम्+क्त। **चक्रनेमिक्रमेणचक्रस्य** – नेमिः (ष.त.) तस्याः क्रमेण (प.त.)।

शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ

शेषान्मासान्गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा।

पश्चादावां विरहगुणितं तं तमात्माभिलाषं

निर्वेक्ष्यावः परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु।।47।।

अन्वयः – शार्ङ्गपाणौ भुजगशयनाद् उत्थिते मे शापान्तः, शेषान् चतुरः मासान् लोचने मीलयित्वा गमय। पश्चात् आवां विरहगणितं तम् आत्माभिलाषं परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु निर्वेक्ष्यावः।

प्रसङ्ग – इस काव्यांश में यक्ष मेघ से यक्षिणी के प्रति संदेश को कहता है।

अनुवाद – भगवान् विष्णु के शेषनागरूपी शय्या से उठ जाने पर मेरे शाप का अन्त होगा। अतः तू शेष चार महीने आँख मींचकर बिता ले। फिर हम दोनों विरह में विचारी गयी उन-उन अपनी इच्छाओं को ढली हुई शरद् ऋतु की चाँदनी वाली रात्रियों में भोगेंगे।

शब्दार्थ – शाङ्र्गपाणौ – भगवान् विष्णु के, भुजगशयनाद् – शेषनाग रूपी शय्या से, शापान्तः – शाप का अन्त, मीलयित्वा – मींचकर, गमय – बिता ले, विरहगणितम् – विरह में विचारी गयी, आत्माभिलाषम् – अपनी इच्छाओं को, परिणतशरच्चन्द्रिकासु – ढली हुई शरद् ऋतु की चाँदनी वाली, क्षपासु – रात्रियों में।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – शापान्तः – शापस्य अन्तः। **उत्थिते** – उद्+स्था+क्त (भावे सप्तमी)। **शाङ्र्गपाणौ** – शाङ्र्गपाणौ यस्य तस्मिन् (बहु.)। **विरह गणितम्** – विरहे गणितम् (स.त.)। **आत्माभिलाषम्** – आत्मनः अभिलाषः (ष.त.) तम्, **अभिलाषः** – अभि+लष्+घञ्। **परिणतशरच्चन्द्रिकासु** – शरदः चन्द्रिका (ष.त.), परिणताः शरदः चन्द्रिकाः यासु तासु (बहु.), **परिणत** – परि+नम्+क्त।

भूयश्चाहं त्वमपि शयने कण्ठलग्ना पुरा मे

निद्रां गत्वा किमपि रुदती सस्वनं विप्रबुद्धा।

सान्तर्हासं कथितमसकृत्पृच्छतश्च त्वया मे

दृष्टः स्वप्ने कितव! रमयन्कामपि त्वं मयेति।।48।।

अन्वयः – भूयः च आह पुरा शयने मे कण्ठलग्ना अपि त्वं निद्रां गत्वा किमपि सस्वनं रुदती विप्रबुद्धा, त्वया च असकृत् पृच्छतः मे सान्तर्हासं कथितं मया स्वप्ने त्वं कामपि रमयन् दृष्टः इति।

प्रसङ्ग – यक्ष मेघ से कहता है कि वह प्रामाणिकता के लिए रहस्य की यह बात यक्षिणी से कहे।

अनुवाद – तुम्हारे पति ने फिर आगे कहा– पहले कभी शय्या पर मेरे गले लगी हुई तुम नींद में पड़कर किसी कारण जोर से रोती हुई जाग गयीं और तुमने बार-बार पूछने वाले मुझसे मन ही मन हंसी के साथ कहा था– हे धूर्त! मैंने स्वप्न में तुम्हें किसी के साथ रमण करते देखा है।

शब्दार्थ – भूयः – फिर, कण्ठलग्ना – गले लगी हुई, सस्वनम् – जोर से, विप्रबुद्धा – जाग गयी, असकृत् – बार-बार, कितव – धूर्त, कामपि – किसी (स्त्री) के साथ, रमयन् – रमण करते हुए।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – कण्ठलग्ना – कण्ठे लग्ना (स.त.)। **रुदती** – रुद्+शतृ+ङीप्। **सस्वनम्** – स्वनेन सहितम् यथा स्यात् तथा (बहु.)। विप्रबुद्धा – वि+प्र+बुध्+क्त+टाप्। **सान्तर्हासम्** – अन्तर्गतः हासः (प्रादि. त.), अन्तहासेन सह यथा स्यात्तथा (बहु.)।

एतस्मान्मां कुशलिनमभिज्ञानदानाद्विदित्वा

मा कौलीनादसितनयने! मय्यविश्वासिनी भूः।

स्नेहेनाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगा–

दिष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशीभवन्ति।।49।।

अन्वयः – हे असितनयने! एतस्मात् अभिज्ञानदानात् मां कुशलिनं विदित्वा कौलीनात् मयि अविश्वासिनी मा भूः। स्नेहान् विरहे ध्वंसिनः किमपि आहुः। ते तु अभोगात् इष्टे वस्तुनि उपचितरसाः प्रेमराशीभवन्ति।

प्रसङ्ग – यक्ष कहता है कि अभिज्ञान के कारण मुझे सकुशल जानना।

अनुवाद – हे काले नेत्रों वाली! इस पहचान के बताने से मुझे सकुशल जानकर लोकापवाद के कारण मेरे प्रति अविश्वासिनी न हो। (लोग) विरह में स्नेह भाव नष्ट हो जाते हैं, ऐसा व्यर्थ ही कहते हैं। वे (स्नेह भाव) तो भोगे न जाने के कारण प्रिय वस्तु के प्रति प्रेम रस के बढ़ जाने पर प्रेमपुञ्ज बन जाते हैं।

शब्दार्थ – असितनयने – काले नेत्रों वाली, अभिज्ञानदानात् – पहचान के बताने से, कौलीनात् – लोकापवाद के कारण, स्नेहान् – स्नेह भावों को, ध्वंसिनः – नष्ट हो जाने वाले, किमपि – व्यर्थ ही, उपचितरसाः – बढ़े हुए प्रेम रस वाला, प्रेमराशीभवन्ति – प्रेम पुञ्ज बन जाते हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अभिज्ञानदानात् – अभिज्ञानस्य दानात् (ष.त.), **अभिज्ञान** – अभि+ज्ञा+ल्युट्। **विदित्वा** – विद्+क्त्वा। **कौलीनात्** – कुलेभवम् कौलीनम् (तद्धित) तस्मात्। **असितनयने** – न सिते (नञ् त.) असिते नयने यस्याः सा (बहु.)। **अविश्वासिनी** – न विश्वासितीति (उपपद स.)। **अभोगात्** – न भोगः अभोगः (नञ् त.) तस्मात्। **उपचितरसाः** – उपचितः रसः येषु ते (बहु.), **उपचित** – उप+चि+क्त। **प्रेमराशीभवन्ति** – प्रेम्णां राशयः (ष. त.) न प्रेम राशयः प्रेमराशयो भवन्तीति प्रेमराशीभवन्ति (गति त. पु.)।

आश्वास्यैवं प्रथमविरहोदग्रशोकां सखीं ते

शैलादाशु त्रिनयनवृषोत्खातकूटान्निवृत्तः।

साभिज्ञानप्रहितकुशलैस्तद्वचोभिर्ममापि

प्रातः कुन्दप्रसवशिथिलं जीवितं धारयेथाः।।50।।

अन्वयः – प्रथमविरहोदग्रशोकां ते सखीम् एवम् आश्वास्य त्रिनयनवृषोत्खातकूटात् शैलात् आशु निवृत्तः (सन् त्वम्) साभिज्ञानप्रहितकुशलैः तद्वेचोभिः प्रातः कुन्दप्रसवशिथिलं मम अपि जीवितं धारयेथाः।

प्रसङ्ग – यक्ष मेघ से अनुरोध करता है कि वह यक्षिणी का भी सन्देश लेकर आये।

अनुवाद – प्रथम वियोग के कारण तीव्र दुःख वाली, अपनी सखी (भाभी) को पूर्वोक्त प्रकार से आश्वासन देकर तीन नेत्रों वाले (शिव) के बैल द्वारा उखाड़े गये शिखरों वाले, (कैलाश) पर्वत से शीघ्र ही लौटकर तुम पहचान के साथ भेजे गये कुशल से युक्त उस प्रिया के वचनों से प्रातःकालीन कुन्द पुष्प के समान शिथिल हुए मेरे भी प्राणों को धारण कराना।

शब्दार्थ – आश्वास्य – आश्वासन देकर, त्रिनयनवृषोत्खातकूटात् – त्रिनयन (शिव) के बैल द्वारा उखाड़े गये शिखरों वाले, आशु – शीघ्र, साभिज्ञानप्रहितकुशलैः – पहचान के साथ भेजे गये कुशल से युक्त, तद्वचोभिः – उस (प्रिया) के वचनों से, कुन्दप्रसवशिथिलम् – कुन्द पुष्प के समान शिथिल हुए, जीवितम् – प्राणों को, धारयेथाः – धारण कराना।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – त्रिनयनवृषोत्खातकूटात् – त्रीणि नयनानि यस्य सः (बहु.) तस्य वृषः (ष.त.) तेन उत्खाताः कूटाः यस्य (बहु.) तस्मात्, **उत्खात्** – उत्+खन्+क्त। **निवृत्तः** – नि+वृत्+क्त। **साभिज्ञानप्रहितकुशलैः** – अभिज्ञायते अनेति अभिज्ञानम्, अभि+ज्ञा+ल्युट्, अभिज्ञानेन सहितम् (बहु.)। **तद्वचोभिः** – तस्याः वचोभिः (ष.त.)।

कच्चित्सौम्य! व्यवसितमिदं बन्धुकृत्यं त्वया मे

प्रत्यादेशान्न खलु भवतो धीरतां कल्पयामि।

निःशब्दोऽपि प्रदिशसि जलं याचितश्चातकेभ्यः

प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव।।51।।

अन्वयः – सौम्य! त्वया मे इदं बन्धुकृत्यं व्यवसितं कच्चित्? प्रत्यादेशात् भवतः न धीरतां कल्पयामि खलु, याचितः (त्वम्) निःशब्दः अपि चातकेभ्यः जलं प्रदिशसि। हि सताम् ईप्सितार्थक्रिया एव प्रणयिषु उत्तरम्।

प्रसङ्ग – यक्ष मेघ से प्रार्थना करता है कि वह उसकी प्रार्थना निश्चित रूप से स्वीकार करे।

अनुवाद – हे सज्जन! तुमने मुझ मित्र का यह कार्य (करना) निश्चित कर लिया है न? निश्चित ही आपने अस्वीकार नहीं किया, इससे मैं आपके धैर्य की कल्पना कर रहा हूँ। क्योंकि मांगने पर चुपचाप रहकर भी चातकों को जल देते हो। सज्जनों का अभिलषित कार्यों को पूरा करना ही याचकों के लिए उत्तर होता है।

शब्दार्थ – बन्धुकृत्यम् – मित्र का कार्य, व्यवसितम् – निश्चित कर लिया, कल्पयामि – सम्भावना करता हूँ, याचितः – माँगने पर, निःशब्दः – चुपचाप, ईप्सितार्थक्रिया – अभिलषित कार्यों को पूरा करना, प्रणयिषु – याचकों के विषय में।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – व्यवसितम् – वि+अव+सो+क्त। **बन्धुकृत्यम्** – बन्धोः कृत्यम्। **प्रत्यादेशात्** – प्रति+आ+दिश्+घञ्, प. एकव.। **निःशब्दः** – नास्ति शब्दः यस्मिन् सः (बहु.)। **याचितः** – याच्+क्त। **ईप्सितार्थक्रिया** – ईप्सितश्च असौ (कर्मधा.) तस्य क्रिया (ष.त.)।

एतत्कृत्वा प्रियमनुचितप्रार्थनावर्तिनो मे

सौहार्दाद्वा विधुर इति वा मय्यनुक्रोशबुद्ध्या।

इष्टान्देशान् विचर जलद! प्रावृषा सम्भृतश्री–

र्मा भूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगः।।52।।

अन्वयः – जलद! सौहार्दात् वा विधुरः इति मयि अनुक्रोशबुद्ध्या वा अनुचितप्रार्थनावर्तिनः मे एतत् प्रियं कृत्वा प्रावृषा संभृतश्रीः (त्वम्) इष्टान् देशान् विचर। एवं च क्षणम् अपि ते विद्युता विप्रयोगः मा भूत्।

प्रसङ्ग – अन्त में, यक्ष मेघ से अपने (यक्ष के) कार्य को करने की तथा अपनी पत्नी से न बिछुड़ने की प्रार्थना करता है।

अनुवाद – हे मेघ! प्रेम के कारण वह दुःखी है, इसलिए मेरे प्रति दयाभाव के कारण मुझ अनुचित प्रार्थना करने वाले का यह प्रिय करके वर्षा ऋतु से बढी हुई शोभा वाले (तुम) इच्छित देशों में विचरण करना और इस प्रकार क्षण भर के लिए भी तेरा बिजली से वियोग न होवे।

शब्दार्थ – सौहार्दात् – प्रेम के कारण, विधुर – दुःखी है, अनुक्रोशबुद्ध्या – दयाभाव के कारण, अनुचितप्रार्थनावर्तिनः – अनुचित प्रार्थना करने वाला, प्रावृषा – वर्षा ऋतु से, संभृतश्रीः – बढ़ी हुई शोभा वाला, इष्टान् – इच्छित, विचर – विचरण करना, विद्युता –बिजली से, विप्रयोगः – वियोग।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अनुचितप्रार्थनावर्तिनः – न उचिता अनुचिता (नञ् त.) अनुचिता च असौ प्रार्थना (कर्मधा.) तत्र वर्तते इति (उपपद त.) षष्ठी, एकव.। **सौहार्दात्** – सुहृदो भावः सौहार्द, सुहृद्+अण् प. एकव.। **अनुक्रोशबुद्ध्या** – अनुक्रोशस्य बुद्ध्या (प.त.)। **जलद** – जलम् ददाति इति (उप.त.) सम्बोधन एकव.। **संभृतश्रीः** – संभृता श्रीः यस्य सः (बहु.)।

20.3 सारांश

काव्यांशों की व्याख्या से हम जान गए है कि उत्तरमेघ की विषय-वस्तु में प्रेम की विरह-वेदना के साथ करुण रुदन का स्वर भी ध्वनित होता है। प्रतिक्षण स्मृतियों का उभरना और सदय मृदु संवाद में आत्मव्यथा की अभिव्यक्ति सममुच अद्भुत है। महाकवि ने जिस कल्पनाशीलता से अपने काव्य का सर्जन किया है, वह उनकी अद्वितीयता को प्रकट करता है। यद्यपि मेघदूत कविकुलगुरु कालिदास की आकार में सबसे छोटी रचना है, किन्तु प्रतिभा

के नवोन्मेष की दृष्टि से उसका गुरुत्व सर्वमान्य रहा है। मेघदूत में कालिदास ने अपने समय की सर्वथा अछूती परिकल्पना को प्रस्तुत किया।

कालिदास की रचनाओं में मेघदूत को अत्यन्त महत्त्व प्राप्त है। वास्तव में, यह प्रेम से आर्द्र एवं कातर हृदय की मधुर उद्वेजनाओं का कोष है। मनुष्य एवं प्रकृति का जो अद्वैत इसमें स्थापित हुआ है, वह साहित्य में एकदम निराला है। मेघदूत इतना संपन्न, इतना गेय, इतना मधुर, प्रौढ़ और सुरुचि-सौरभ से भरा काव्य है कि यदि कालिदास ने सिवा इसके और कुछ न छोड़ा होता तब भी उनका स्थान संस्कृत कवियों की पहली पंक्ति में होता।

आपने इस इकाई के अध्ययन से जाना कि प्रेम की विरहाभिव्यक्ति में इतनी वेदना, इतना औत्सुक्य, इतनी ध्वनि निहित है कि पढ़ते हुये सहृदय का हृदय द्रवित हो जाता है। संक्षेप में प्रेम विश्लेषण में महाकवि कालिदास का गीतिकाव्य मेघदूत का स्थान अद्वितीय है मनुष्य जीवन में प्रेम की सहज अभिव्यक्ति भी कैसे उत्कट हो जाती है? इसका भावमयी प्रतिबिम्ब मेघदूत में दिखायी देता है। निश्चित यही कविताकान्त महाकवि का प्रयोजन है। उत्तरमेघ के अन्तिम 30 काव्यांशों की व्याख्या के अध्ययन से आपने निश्चित ही यह जान लिया होगा कि उत्कट प्रेम और वियोगजन्य अवस्था में मानवीय संवेदना और अभिव्यक्ति करने के लिए महाकवि कालिदास की प्रतिभा अतुलनीय है।

20.4 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. उपाध्याय, भागवत शरण. मेघदूत कालिदास. दिल्ली : हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड. जी. टी. रोड, शाहदरा. वर्ष अप्रकाशित।

2. तिवारी, रमाशङ्कर. महाकवि कालिदास. वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन. 1961।

3. शास्त्री, प. मोहनदेवपन्त, डॉ संसारचन्द्र– मेघदूतम, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1996।

4. शास्त्री डॉ दयाशंकर– मेघदूतम्, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी 2014।

20.5 अभ्यास प्रश्न

1. महाकवि कालिदास द्वारा वर्णित वियोगजन्य प्रेमाभिव्यक्ति को अपने शब्दों में लिखिए।

2. **'तामायुष्मन् मम च वचनादात्मनश्चोपकर्तुं'** श्लोक की व्याख्या कीजिए।

3. महाकवि ने अपनी कल्पनाशक्ति का उच्चतम स्तर पर उपयोग किया है – कतिपय काव्यांशों के आधार पर स्पष्ट कीजिए।

4. महाकवि कालिदास ने प्रेमाभिव्यक्ति को नई दिशा दी – इस उक्ति को इस इकाई में पठित अंश के आधार पर प्रमाणित कीजिए।